भक्त-चरितावली

प्रथम भाग

अनुवादक

लल्लीप्रसाद पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

[प्र]थमावृत्ति] १९२६ [मूल्य १॥)

निवेदन

इस पुस्तक में भारत के पूर्वतन भक्तों की मधुमय जीवनी संक्षेप में लिखी गई है। माना कि इनके जीवन का आदर्श वर्तमान समय के लिए सोलहों आने उपयोगी नहीं है, फिर भी इनका वैराग्य, स्वार्थत्याग और अपूर्व भगवद्भक्ति का सजीव दृष्टान्त सदा नर-नारियों के प्राणों को एक-रसस्वरूप मङ्गलमय देव की ओर आकर्षित करेगा और जीवन की सारी घटनाओं के बीच चित्त को धैर्य, क्षमा तथा शान्ति-धारण करने की शिक्षा देगा। श्रीयुक्त योगीन्द्रनाथ वसु महाशय ने तुकाराम-चरित नामक उपादेय ग्रन्थ के एक अंश में भगवद्भक्तों के जीवनचरित की आलोचना के सम्बन्ध में लिखा है "अतीतकाल के प्रस्तरीभूत जीव को प्राण-दान करके पृथिवी में दुबारा ले आने की चेष्टा करना जिस प्रकार निष्फल है उसी प्रकार पूर्वकालीन सर्वत्यागी साधुओं को अनुकरण-द्वारा पुनरुज्जीवित करने की चेष्टा भी व्यर्थ है। हाँ, देश-काल और पात्र के अनुसार उन साधुओं के सद्गुणों को हम जिस परिमाण में ग्रहण कर सकें उतना ही अच्छा है।"

इस पुस्तक में जिन चरितों का सङ्कलन किया गया है उनके लिए मूल लेखक श्रीयुक्त बाबू शशिभूषण वसु महोदय ने चैतन्य-चरितामृत, चैतन्यभागवत, भक्तमाल, अद्वैतप्रकाश और नरोत्तम-विलास प्रभृति (बँगला के) वैष्णव ग्रन्थों से उपादान सङ्ग्रह किया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय के श्रीयुक्त अघोरनाथ चट्टोपाध्याय, श्रीयुक्त योगीन्द्रनाथ वसु, श्रीयुक्त सत्येन्द्रनाथ ठाकुर और परलोकगत बाबू शिशिरकुमार घोष प्रभृति की लिखी पुस्तकों आदि से भी विशेष सहायता प्राप्त हुई है। एतदर्थ इन सबको अनेक हार्दिक धन्यवाद हैं।

हिन्दी भाषा-भाषी समाज को नाभाजी के भक्तमाल ग्रन्थ में जिन भक्तों की लीला पढ़ने को मिलती है उनके अतिरिक्त बङ्गदेशीय श्री गौराङ्ग महाप्रभु के वैष्णव-सम्प्रदाय में जो भक्त और सन्त महन्त हो गये हैं उनकी जीवन-लीला जानने का कोई उपाय न था। इसी आवश्यकता पर ध्यान देकर इस पुस्तक का अनुवाद किया गया है। द्वितीय भाग में जगद्गुरु शङ्कराचार्य और रामानुजाचार्य प्रभृति महापुरुषों का संक्षिप्त चरित भी दे दिया गया है। इस दृष्टि से, आशा है, यह पुस्तक सभी धर्मानुरागियों को प्रिय होगी।

सागर,
जन्माष्टमी, सं० १९७९

अनुवादक

सूची-पत्र

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

जीवन-चरित-लेखक ईशान नागर लिखते हैं—लाभा देवी ने गर्भावस्था में एक बार रात को स्वप्न में देखा कि दिव्य लावण्य-युक्त हरिहर-मूर्त्ति उनकी गोद में विराजमान है। उस मूर्त्ति के अङ्ग की छटा से चारों दिशाएँ आलोकित हो रही हैं और वह मूर्त्ति हाथ उठाकर हरि-ध्वनि करते-करते नृत्य कर रही है।

धीरे धीरे दस महीने बीते। माघ महीने की सप्तमी को आचार्य-पत्नी के गर्भ से नवकुमार ने जन्म ग्रहण किया। गाँव की स्त्रियाँ कुबेर पण्डित के घर जाकर आनन्द मनाने और सोहर गाने लगीं। भला कुबेर के आनन्द का आज पूछना ही क्या है। देश की रीति के अनुसार उन्होंने यथासमय पुत्र का नाम-करण किया। पुत्र का नाम रक्खा गया कमलाक्ष, किन्तु यहाँ पर हम उनके परिचित नाम अद्वैत का ही उल्लेख करेंगे। जब अद्वैत को पाँचवाँ वर्ष लगा तब कुबेर पण्डित ने उनको विद्यारम्भ करा दिया।

ज्योतिष आदि के ग्रन्थों का अध्ययन, मन लगाकर, करने लगे। इन सभी विषयों में वे विशेष रूप से व्युत्पन्न हो गये।

अद्वैत अभी बालक थे। किन्तु इसी बाल्यावस्था में उनके हृदय में तत्त्वज्ञान का सञ्चार हो गया। एक दिन काली देवी की विशेष पूजा के उपलक्ष्य में किसी जगह बहुत लोगों का समागम हुआ। साज़िन्दे बाजे बजाने लगे और नर्तकियाँ तथा नर्तक नाचने लगे। इस उत्सव में कमलाक्ष भी गये थे। काली देवी को प्रणाम किये बिना ही वे सभा में जा बैठे। कमलाक्ष का यह बर्ताव देखकर दिव्यसिंह चकरा गये। उन्होंने पूछा—"कमलाक्ष, तुमने यह क्या किया! काली माता को तुमने प्रणाम क्यों नहीं किया?" कमलाक्ष ने उत्तर दिया—परमेश्वर तो एक ही है, अतएव उसी की पूजा होनी चाहिए। लोग जो अनेक देवी-देवताओं को पूजते हैं सो यह उनका भ्रम है।

दर्शक-मण्डली पिता के साथ पुत्र कमलाक्ष की धर्मतत्त्व-विषयक आलोचना सुन रही थी। किन्तु अन्त में सभी ने कमलाक्ष की बुद्धिमत्ता देख उनकी बहुत-बहुत प्रशंसा की।

२

बालक अद्वैत जब बारह वर्ष के हुए तब बिना ही माता-पिता से कहे-सुने शान्तिपुर में चले आये और वहाँ से किसी के द्वारा उन्होंने माता-पिता के पास सँदेसा भेज दिया। इधर पुत्र को न देख लाभा देवी और कुबेर पण्डित बहुत ही व्याकुल हुए। अन्त में जब अद्वैत की चिट्ठी पहुँची तब कहीं वे शान्त हुए। पुत्र को छोड़कर वे लाउड़ में अकेले न रह सके। झटपट शान्तिपुर चले आये और पुत्र का मुँह देखकर अपार आनन्द का अनुभव करने लगे। अद्वैत की ज्ञान-पिपासा बहुत ही प्रबल थी। शान्तिपुर आकर वे षड्दर्शन पढ़ने में प्रवृत्त हुए। जब वे दर्शनशास्त्र पढ़ चुके तब कुबेर पण्डित ने उनसे वेदों का अध्ययन करने के लिए कहा।

एक गाँव का नाम पूर्णवाटी था। वहाँ वेदान्तवागीश नामक एक पण्डित रहते थे। पिता की आज्ञा लेकर अद्वैत, उन्हीं के यहाँ, वेद पढ़ने को गये। वेदान्तवागीश सुपण्डित थे। उनकी प्रशान्त मूर्त्ति देखने से दर्शक के मन में उनके प्रति श्रद्धा का उदय होता था। अद्वैत ने उस गाँव में जाकर बड़ी भक्ति से उनके चरणों में सिर रक्खा। अद्वैत की

प्रशान्त मूर्त्ति देखते ही वेदान्त-वागीश बड़े सुखी हुए। उन्होंने अद्वैत के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और शिष्य रूप में उन्हें ग्रहण कर लिया। पाठ का आरम्भ करने से पूर्व छात्र की बुद्धि की जाँच करने के लिए वेदान्तवागीशजी उनके साथ शास्त्रालोचना में प्रवृत्त हुए। इस आलोचना में अद्वैत की प्रखर बुद्धि देखकर वे अत्यन्त सुखी हुए। वेदान्तवागीश ताड़ गये कि यह छात्र भविष्यत् में असाधारण व्यक्ति होगा।

इस समय आचार्य कुबेर की अवस्था नब्बे वर्ष के लगभग थी। धीरे-धीरे उनके परलोक-गमन का समय उपस्थित हुआ। लाभा देवी की अवस्था भी कुबेर आचार्य के अनुरूप हो गई थी। अब कुबेर पण्डित की अन्तिम घड़ी उपस्थित हुई। देहान्त के समय उन्होंने पुत्र को घर बुलवाकर कहा — जब हमारा देहान्त हो जाय तब तुम गयाधाम में जाकर पिण्ड-दान करना।

पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए अद्वैत आचार्य यथासमय गयाधाम को गये और वहाँ गदाधर के चरण-कमलों में स्वर्ग-गत पितृदेव के उद्धार के लिए उन्होंने पिण्ड-दान किया।

प्राकृतिक सौन्दर्य का दर्शन और अनेक तीर्थों का भ्रमण करना साधु लोग अपने जीवन का प्रधान कार्य समझा करते हैं। गयाधाम की यात्रा के पश्चात् अद्वैत आचार्य रेणुमा,

सेतुबन्ध, शिवकाञ्ची, मदुरा, और धनुतीर्थ प्रभृति स्थानों का दर्शन करके मध्वाचार्य के आश्रम में पहुँचे। आश्रमवासियों ने अद्वैत का अनुराग देखकर उनसे भक्ति-सूत्र की व्याख्या सुननी चाही। व्याख्या करते-करते आचार्य भाव में विभोर हो गये; फिर आनन्द में उन्मत्तप्राय होकर नृत्य करते-करते अचेत होकर गिर पड़े। वहाँ पर माधवेन्द्र पुरी उपस्थित थे। उन्होंने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर कहा—"भविष्यत् में यही बालक भक्ति-मार्ग का पथिक बनेगा और नर-नारियों के उद्धार का साधक होगा।" इसके पश्चात् वे भागवत के श्लोक की व्याख्या करके सुनाने लगे। अद्वैत साधारण बालक नहीं हैं। उन्होंने जो कुछ सुना, कण्ठस्थ कर लिया। उनकी स्मरण-शक्ति का परिचय पाकर सभी आश्रमवासी विस्मित हो गये।

एक दिन अद्वैत ने देश की दशा का उल्लेख करके माधवेन्द्र पुरी से कहा—"मनुष्य वास्तविक धर्म से हीन होकर यथेच्छाचार करने लगे हैं; कृपा करके बतलाइए कि उनका उद्धार क्योंकर होगा।" संन्यासी ने कहा—"तुम तो जीवों के उद्धार की बात सदा सोचते रहते हो। भगवत्कृपा हुए बिना साधारण मनुष्यों में ऐसी शुभ बुद्धि का उदय नहीं होता। परब्रह्म का साक्षात् आविर्भाव हुए बिना जीव का उद्धार होना सम्भव नहीं। श्रीभगवान्, इसी युग में, धरा धाम में अपने स्वरूप को प्रकट करके जीवों का उद्धार करेंगे;

अनन्त संहिता उसका साक्ष्य प्रदान कर रही है।" अनन्त संहिता की बात सुनकर उस संहिता को पढ़ने के लिए अद्वैत की प्रबल वासना हुई। तब संन्यासी ने अद्वैत को वह पोथी दी। इस भक्ति-पूर्ण ग्रन्थ के देखने से अद्वैत के भाव-प्रवण हृदय में मानो भक्ति की तरङ्ग उठने लगी। माधवेन्द्र पुरी की बातों की सत्यता का अनुभव उन्होंने विशेष रूप से किया। किन्तु उनके मन में यह धारणा जम गई थी कि भगवान् गौर रूप में अवतीर्ण होकर हरि-प्रेम द्वारा जगत् का उद्धार करेंगे, और इस अधम की मनोवाञ्छा पूर्ण करेंगे। अद्वैत के प्राणों में उस समय एक आनन्द का स्रोत बहने लगा। वे हाथ उठाकर गौर के गुणों का कीर्तन करते-करते नाचने लगे।

माधवाचार्य के आश्रम में इस प्रकार कुछ दिन तक निवास करके वे दण्डकारण्य, प्रभास, और बदरिकाश्रम प्रभृति स्थानों का दर्शन करते हुए भक्ति और प्रेम के लीलाक्षेत्र मथुरा वृन्दावन धाम के दर्शन करने गये। लिखा है कि उस समय श्रीकृष्ण ने स्वप्न में दर्शन देकर भक्ति-धर्म का प्रचार करने के लिए उनके प्राणों को अनुप्राणित कर दिया था। चन्द्रोदय के समय सागर के जलोच्छ्वास की भाँति उनका भक्ति-प्रवण हृदय उच्छ्वसित हो गया। उनका चित्त प्रेम से गद्गद हो गया। अब वे शान्तिपुर को लौट आये।

कुछ दिनों के पश्चात् भक्त माधवेन्द्र पुरी शान्तिपुर में आये और अद्वैत के घर ठहरे। दोनों भक्तों ने एक स्थान में रह-

कर कुछ दिन भगवत्प्रसङ्ग में बिताये। जाते समय वे अद्वैत से विवाह करने के लिए अनुरोध कर गये।

अद्वैत निरे भक्त ही नहीं हैं प्रत्युत चारों ओर सुपण्डित समझे जाते हैं। तर्क-पञ्चानन नामक एक दिग्विजयी पण्डित, अद्वैत का सुयश सुनकर, उनसे शास्त्रार्थ करने आये। दोनों पण्डितों के बीच खासा शास्त्रार्थ छिड़ गया। अन्त में अद्वैत ही विजयी हुए। दिग्विजयी पण्डित ने ज्ञान-गर्व छोड़कर अद्वैत को अपना मन्त्र-गुरु कर लिया। दिग्विजयी के साथ शास्त्रार्थ में अद्वैत के यशस्वी होने का समाचार चारों ओर फैल गया। यह संवाद पाकर लाउड़ के अधिपति राजा दिव्यसिंह अद्वैत से भेंट करने को आये। राजा शैव थे, किन्तु अद्वैत का भक्तिभाव देखकर उन्होंने उनसे विष्णुमन्त्र ग्रहण कर लिया। दीक्षा ले चुकने के पश्चात् उन्होंने दस वर्ष तक बड़ी निष्ठा के साथ भक्तिशास्त्र का अध्ययन किया और एक तरु-लता-वेष्टित निर्जन कानन में हरिनाम का कीर्तन करते-करते जीवन का अवशिष्ट समय बिता दिया। वे अपनी अन्तिम अवस्था में अद्वैत के बाल्यजीवन की कथा को संस्कृत में लिख गये।

३

अद्वैत जिस समय शान्तिपुर में रहते थे उस समय एक अल्पवयस्क बालक उनके पास आया। इसका नाम

था हरिदास। इस यवन-बालक की निष्ठा और भक्ति देखकर अद्वैत विमुग्ध हो गये। इस बालक को उन्होंने व्याकरण और साहित्य पढ़ाया। इसके सिवा हरिदास ने अद्वैत से कुछ दर्शनशास्त्र भी पढ़ा। इन सब विषयों में व्युत्पन्न होकर हरिदास ने श्रीमद्भागवत पढ़ने में मन लगाया। इन्हें अद्वैत बहुत चाहते थे। वे प्रतिदिन भागवत का पाठ करते और हरिदास भक्तिपूर्वक श्रवण करते थे। अद्वैताचार्य के घर के पास ही हरिदास रहते और उन्हीं के घर भोजन किया करते थे। इसलिए कुलीन ब्राह्मणों ने आचार्य को जातिच्युत करने के लिए कमर बाँधी। किन्तु आचार्य ने इस बँदरघुड़की की रत्ती भर भी परवा नहीं की।

एक दिन शान्तिपुर में, किसी ब्राह्मण के घर, श्राद्ध के उपलक्ष में अनेक ब्राह्मणों का निमन्त्रण था। इसी समय उसके यहाँ हरिदास भी पहुँचे। अद्वैताचार्य ने सब लोगों के आगे यवन हरिदास के हाथ में सबसे पहले श्राद्धपात्र दिया। अद्वैत के इस व्यवहार से अन्यान्य ब्राह्मण चिढ़ गये। इस पर अद्वैत ने कहा कि एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो फल मिलता है वही फल मैं एक हरिदास को भोजन कराने में मानता हूँ।

अद्वैत एक दिन गङ्गास्नान करने गये। उसी समय नारायणपुर-निवासी नृसिंह भादुड़ी नामक एक कुलीन ब्राह्मण अपनी दो रूपवती बेटियों के साथ स्नान करने आये। बेटियों का

नाम सीता और श्रीठाकुरानी था। अद्वैत की सौम्य मूर्त्ति और रूप-लावण्य देखकर भादुड़ी की सुन्दरी बेटियाँ विमुग्ध हो गईं। उनके साथ परिणय-सूत्र में आबद्ध होने के लिए वे उत्सुक हो गईं। नृसिंह ने भी, ऐसे सुपात्र को दोनों कन्याओं का दान करना परम सौभाग्य समझकर, इसके लिए अद्वैत से प्रस्ताव किया। उन लड़कियों को देखकर अद्वैत भी उनके प्रति आकृष्ट हुए थे। विवाह का प्रस्ताव सुनकर उन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। श्रीवास पण्डित प्रभृति सभी गण्य मान्य व्यक्ति इस प्रस्ताव से प्रसन्न हुए। अद्वैत केवल पण्डित और भक्त ही न थे, प्रत्युत वे धनवान् भी थे। उनका घर सुन्दर और बड़ा था। उनकी नई दुलहिनें गृहस्थी में आकर पति की सेवा और उनके धर्म-जीवन में सहायक होकर परम सुख से रहने लगीं।

अद्वैताचार्य गृहस्थाश्रमी हुए सही किन्तु उनका चित्त सदा भगवत्प्रेम में निमग्न रहता था। हरिदास के साथ, पहले की भाँति, वे धर्मचर्चा में अपना अधिक समय अतिवाहित किया करते थे। वे बड़ी व्याकुलता से चित्त लगाकर भगवान् से प्रार्थना किया करते कि भगवन्, बङ्गाल के सभी स्थानों में वैष्णव-धर्म किस प्रकार फैलेगा और शुष्क भाव किस प्रकार दूर हटेगा तथा लोगों का हृदय किस प्रकार मधुमय होगा। एक दिन हरिदास ने उनके आगे आक्षेप के साथ कहा—"मुसलमानों ने धर्म पर अत्यन्त अत्याचार

करना आरम्भ कर दिया है; वे लोग हिन्दुओं के मन्दिरों में घुसकर देव-देवियों की मूर्त्तियाँ तोड़-फोड़ डालते हैं; भागवत आदि धर्मग्रन्थों को ज़बरदस्ती छीनकर आग में जला डालते हैं; और भक्त साधुओं को पागल बताकर उनका उपहास करते तथा उनके साथ बुरा व्यवहार करते हैं। ऐसे दुःसमय में यदि स्वयं भगवान् अवतार न लेंगे तो देश की सद्गति का कोई उपाय नहीं है।'' हरिदास की यह बात सुनकर अद्वैत ने कहा—''हरिदास, भगवान् इसका उपाय करेंगे, तुम चिन्ता मत करो।'' अद्वैत के मुँह से यह अभयवाणी सुनकर हरिदास दोनों हाथ उठाकर आनन्द से नृत्य करने लगे।

अद्वैत आचार्य को दृढ़ विश्वास हो गया था कि नवद्वीप में गौरचन्द्र जन्म लेकर भक्ति की बाढ़ में नर-नारियों को प्लावित करेंगे और उनकी कामना पूर्ण होगी। इसके लिए वे उस पुण्यभूमि नवद्वीप में रहने के लिए गये। उस समय अद्वैत आचार्य अनेक विषयों में व्युत्पन्न हो चुके थे। ज्ञान-शिक्षा देना उस समय ब्राह्मण-पण्डितों के जीवन का एक प्रधान व्रत था। अद्वैताचार्य को दाल-रोटी की चिन्ता न थी। उन्होंने ज्ञान-शिक्षा देने के लिए नवद्वीप में चतुष्पाठी स्थापन करके विद्या-दान करना आरम्भ कर दिया। वे छात्रों को श्रीमद्भागवत, गीता, वेद और स्मृतिशास्त्र की शिक्षा देने लगे। दिन को तो वे पढ़ाने-लिखाने में निरत रहते और सायङ्काल को हरिदास के साथ हरि-गुण-कथन और हरिसङ्कीर्तन करते थे।

अद्वैताचार्य के पाण्डित्य और भगवद्भक्ति की ख़बर चारों ओर फैल गई। कितने ही लोग उनकी चतुष्पाठी में नियम-पूर्वक शिक्षा प्राप्त करने लगे। कितने ही धर्म-पिपासु व्यक्तियों ने व्याकुल हृदय से भक्ति-मन्त्र की दीक्षा लेकर नूतनतर जीवन प्राप्त किया—वैष्णव धर्म का आश्रय ग्रहण किया।

नवद्वीप में उस समय जगन्नाथ मिश्र नाम के एक सुपण्डित रहते थे। उनके सन्तान न थी, इस कारण विषण्ण चित्त से वे आचार्य के समीप आये। अपने हृदय की वासना उन्होंने आचार्य को कह सुनाई। अद्वैताचार्य ने उन्हें उस दिन यह कहकर बिदा किया कि हम आपके घर आवेंगे। दूसरे दिन आचार्य स्वयं उनके घर पहुँचे। जगन्नाथ मिश्र और उनकी पत्नी ने अद्वैत के आगमन से परम पुलकित होकर उनका यथोचित सम्मान किया और उनको आसन पर बिठाया। जगन्नाथ मिश्र की पत्नी शची देवी के आचार्य को प्रणाम करने पर उन्होंने कहा—"देवी, तुम पुत्रवती होओ।" आचार्य का यह वाक्य सुनकर पति-पत्नी दोनों अत्यन्त पुल-कित हुए। कुछ समय के उपरान्त शची देवी के एक पुत्र हुआ। इसका नाम विश्वरूप रक्खा गया। विश्वरूप बचपन में अद्वैत की पाठशाला में अध्ययन करने जाते थे। किन्तु वे बाल्यावस्था में ही घर-द्वार छोड़कर संन्यासी हो गये।

विश्वरूप का जन्म हो चुकने पर एक दिन शची देवी गङ्गा नहाने गईं। उस समय वहाँ स्नान करने को अद्वैताचार्य भी

पहुँचे। शची देवी नहा-धोकर जब किनारे आई तब उन्होंने भक्ति के साथ आचार्य के चरणों पर माथा रक्खा। उस समय शची गर्भवती थीं। आचार्य ने मिश्र-पत्नी को आशीर्वाद देकर कहा—देवी, इस गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म होगा।

वृद्ध अद्वैत की बात मिथ्या नहीं हो सकती—इस आशा को हृदय में धारण कर शची देवी अपने घर गईं। यह शुभ संवाद उन्होंने अपने पति को भी सुना दिया।

४

शके १४०७ के फाल्गुन की पौर्णिमा को गौरचन्द्र ने जन्म ग्रहण किया। जब यह समाचार अद्वैत ने सुना तब आनन्द से उनका हृदय ताथेई-ताथेई करने लगा—उनका विश्वास था कि यह नवजात शिशु उनकी बहुत पुरानी अभिलाषा को पूर्ण करेगा। मनुष्यों को यह मुक्तिमार्ग की ओर ले जायगा। भला ऐसे शिशु के जन्म-समय वे स्थिर कैसे रह सकते थे? वे आनन्द में उन्मत्त होकर हरिदास के साथ नृत्य करने लगे।

इसके पश्चात् वे गङ्गा-स्नान करने गये और इस शुभ दिन के उपलक्ष्य में उन्होंने ब्राह्मणों को विविध द्रव्य प्रदान किये। आज उनके आनन्द की सीमा नहीं है। वे मानो दिव्यदृष्टि से देखने लगे कि अब कुछ ही वर्षों के पश्चात् इसी शिशु के द्वारा बङ्गाल में भक्ति-गङ्गा प्रवाहित होगी।

जिस समय गौर ने जन्म ग्रहण किया उस समय विश्वरूप कोई बारह वर्ष के होंगे। बालक विश्वरूप अद्वैत की चतुष्पाठी में अध्ययन करने जाते थे। जब गौर पाँच-छ: वर्ष के हुए तब एक दिन विश्वरूप को घर आने में विलम्ब देख शची ने उन्हें बुलाने के लिए गौर को चतुष्पाठी में भेजा। गौर ने वहाँ पहुँचकर कहा—"भैया, घर चलो, अम्मा ने बुलाया है।" उस समय अद्वैत उस सलोनी मूर्त्ति के दर्शन से विमुग्ध होकर एकटक कुछ देर तक उनकी ओर देखते रहे और उनके छात्र भी इस बालक की ओर से थोड़ी देर के लिए नज़र न हटा सके।

नवद्वीप में शिक्षा प्राप्त करके गौराङ्ग अध्यापन-कार्य करने लगे। किन्तु कुछ दिनों के अनन्तर उनकी दशा एकदम बदल गई। वे नाम-सङ्कीर्तन में मग्न हो गये। इस समय बहुतेरे लोग उनके शिष्य हुए। अब वे शिष्यों के साथ नाम-कीर्तन करने लगे।

जब उनके यश:सौरभ से दिशा-विदिशाएँ आमोदित हुईं तब अद्वैत के आनन्द की सीमा न रही। वे समझ गये कि हमारी आशा शीघ्र ही पूर्ण होगी। भक्तों की व्याकुलता-पूर्ण प्रार्थना से ही देश में धर्म का और मङ्गल का वायु बहने लगता है। देश से शुष्कता को दूर करने और सुशीतल भक्ति-धर्म का प्रचार करने के लिए वे हृदय के साथ भगवान् से प्रार्थना किया करते थे। इसके लिए कभी-कभी वे उपवास करके

मन की वेदना को अपने इष्टदेव से निवेदन करते थे। एक दिन भागवत के एक श्लोक का अर्थ उनकी समझ में ठीक-ठीक न आया। इस कारण उन्हें दुःख हुआ। वे बिछौने पर लेट रहे। लेटते ही क्षण भर में गाढ़ी नींद में सो गये। उस समय उन्होंने देखा कि एक सुन्दर युवा पुरुष ने उनके सामने आकर कहा—भागवत के जिस श्लोक का अर्थ न समझ सकने के कारण तुम बिना ही व्यालू किये सो रहे हो उस श्लोक का अर्थ सुनो। यह कहकर उन्होंने उक्त श्लोक की ठीक व्याख्या कर दी। इसके बाद कहा कि तुम जिनके आगमन के लिए सदा व्याकुल अन्तःकरण से प्रार्थना किया करते हो उनका अवतार हो गया,—उठो, अब डर की कोई बात नहीं है।

स्वप्न में दर्शन होते ही अद्वैत की नींद टूट गई। उन्होंने देखा कि उस श्लोक का अर्थ स्पष्ट हो गया। और जिस सौम्यमूर्त्तिवाले युवा पुरुष ने उनके सन्मुख उपस्थित होकर उनकी आशा के पूर्ण होने का आश्वासन दिया उसकी सूरत-शकल गौर के रूप-रङ्ग से मिलती-जुलती है। अपने शिष्यों को स्वप्न-वृत्तान्त सुनाकर, और गौराङ्ग को कृष्णावतार समझ-कर उनके प्रति वे आकृष्ट हो गये। अद्वैत उस समय शान्ति-पुर में रहते थे। गौर के इस सङ्कीर्तन का समाचार उन्होंने भी सुना। इसलिए वे सीता देवी के साथ नवद्वीप में पहुँचे। जिस आनन्द-चित्र को देखने के लिए वे अब तक बड़ी उत्सु-

कता से दिन गिन रहे थे उसको आज उन्होंने प्रत्यक्ष देखा। उन्होंने देखा कि शची-तनय नवद्वीप में अवतीर्ण हुए हैं। लिखा है कि अद्वैताचार्य जब शान्तिपुर से चलकर नवद्वीप में पहुँचे तब उन्होंने यह निश्चय किया कि यदि गौर सचमुच श्रीभगवान् के प्रतिनिधि होंगे तो वे हमारे माथे पर अपने चरण-युगल स्थापित करेंगे। सो गौर ने सचमुच यही किया। अपनी कामना को पूर्ण होते देख आचार्य के आनन्द की सीमा न रही। जब वे भक्त-मण्डली में पहुँचे तब सभी भक्त मस्त होकर कीर्त्तन करने लगे।

कुछ समय बीतने पर गौर ने संन्यास-धर्म ग्रहण कर लिया। संन्यास ले चुकने पर वे नित्यानन्द प्रभृति के साथ कई बार शान्तिपुर पधारे। उस समय अद्वैत के घर शची देवी भी आ जाती थीं। अद्वैत और सीता देवी दोनों, भक्तों की सेवा और भोजन आदि का ख़ासा प्रबन्ध करते थे। अनेक प्रकार की तरकारियाँ, दूध, दही और लड्डू आदि भक्तों को खिलाये जाते थे। भक्तों का आवागमन होते रहने के कारण आचार्य का भवन उत्सवमय देख पड़ता था।

गौराङ्ग जिन दिनों श्रीजगन्नाथपुरी में रहते थे उन दिनों अद्वैत-प्रमुख बहुतेरे भक्त गौड़ देश से हर साल, रथयात्रा के अवसर पर, वहाँ जाया करते थे। उनकी इस यात्रा का प्रधान उद्देश्य श्रीकृष्ण चैतन्य के दर्शन करना ही था। अद्वैत और नित्यानन्द प्रभृति के साथ गौर कई महीने कीर्तन और श्रीहरि की चर्चा में बिताते थे।

यहाँ पर अद्वैत के सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख करने की आवश्यकता है। एक बार नित्यानन्द को साथ लेकर श्रीचैतन्य शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर पधारे। आचार्य ने उन्हें बड़ी आव-भगत से लिया। किन्तु उस समय गौराङ्ग ने देखा कि आचार्य अपने शिष्यों के साथ शास्त्र की व्याख्या कर रहे हैं। उनकी व्याख्या सुनकर श्री-चैतन्य ने अद्वैत से पूछा—"ज्ञान बड़ा है या भक्ति?" अद्वैत ने उत्तर दिया—"भक्ति के मुक़ाबले में तो ज्ञान ही श्रेष्ठ है।" इस उत्तर को सुनकर श्रीचैतन्य ने बहुत ही क्रुद्ध होकर आचार्य की पीठ में ज़ोर-ज़ोर से मुक्के लगाये। श्रीचैतन्य को अद्वैत बहुत ही चाहते थे। मुक्कों की मार खाकर उन्होंने कुछ भी न कहा, किन्तु उनकी पत्नी सीता देवी ने वहाँ आकर गौर से कहा—"यह क्या करते हो! बूढ़े आदमी पर अब हाथ न उठाना।" इसके अनन्तर अद्वैत ने बड़े प्रेम से गौर को गले लगाकर कहा—"तुमने मुझे मारा, यह बहुत ही अच्छा किया।" गौर को अद्वैत और सीता देवी दोनों बहुत चाहते थे। जान पड़ता है, गौर के मन की परीक्षा करने के लिए ही अद्वैत ने भक्ति की अपेक्षा ज्ञान को श्रेष्ठ बतलाया था। भक्तों की लीला को समझना कठिन काम है।

अक्सर ऐसा होता है कि मनुष्य किसी के महत्त्व, धर्म-विश्वास और निःस्वार्थ भाव को देखकर उस पर अवतार

का आरोप करने लगते हैं। सबसे पहले अद्वैत ने ही गौर को अवतार कहा था। एक बार जगन्नाथपुरी में रथयात्रा के समय, अद्वैत के डेरे पर, सन्ध्यासमय सब लोग सङ्कीर्तन करने के लिए एकत्र हुए। कीर्तन आरम्भ हो गया। गौर के अवतार होने के सम्बन्ध में अद्वैत ने एक नया गीत बनाया था। उस दिन भक्तों ने उसी, नये बनाये गये, गीत को मृदङ्ग और कर-ताल की ध्वनि के साथ गाना आरम्भ किया। सभी लोग ज़ोर-ज़ोर से कीर्तन करने लगे। वहाँ पर गौर भी उपस्थित थे। अपने अवतारत्व-विषयक सङ्कीर्तन को सुनकर वे अपने डेरे को लौट गये। सङ्कीर्तन समाप्त होने पर गौर के शिष्य जब उनके पास गये तब उन्हों ने अद्वैत-रचित इस सङ्कीर्तन का प्रतिवाद किया। किन्तु शिष्यों ने इस सङ्कीर्तन की प्रशंसा करके उनके अवतारत्व को प्रमाणित करने की चेष्टा की। इसी समय गौर के डेरे पर सिलहट-निवासियों का एक दल उक्त गीत को गाता हुआ पहुँचा। तब गौर के शिष्यों ने कहा—"प्रभो, सूर्य का प्रभाव क्या उँगली से रोका जा सकता है?" उसी समय से उस सङ्गीत का प्रभाव चारों ओर फैल गया। अद्वैताचार्य ने ही सबसे पहले गौर के अवतारत्व की घोषणा की थी।

अद्वैताचार्य जिस समय गौड़ देश में रहते थे उस समय वे सदा गौर की ख़बर लेते रहते थे। एक बार शिवानन्द

सेन शान्तिपुर से श्री जगन्नाथपुरी को गये। तब अद्वैताचार्य ने उनसे कहा—"तुम गौर को हमारा कुशल समाचार सुनाना।" उनको सुनाने के लिए आचार्य ने एक पद्य भी बना दिया था।

शिवानन्द सेन ने पुरी में पहुँचकर अद्वैत-रचित पहेली श्रीगौर को सुना दी। उसे सुनकर उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। इसके कुछ दिनों बाद उनका तिरोभाव हुआ था।

गौर के तिरोभाव का समाचार जब अद्वैत ने सुना तब शोक के मारे वे मृतप्राय हो गये। उन्हें चारों ओर सिवा अन्धकार के और कुछ न देख पड़ा। उनका शरीर शिथिल हो गया। एक दिन शोकाकुल हृदय से उन्होंने अपने साथी और चरित-लेखक ईशान नागर से कहा—ईशान, गौर के बिना मेरे प्राण विदीर्ण हो रहे हैं! मैं बहुत शीघ्र इस संसार से चला जाऊँगा। तुम सर्वदा गौर-गुण-गान करना, और मेरा परलोक-वास हो चुकने पर, मेरे जन्मस्थान में गौर की नाम-घोषणा करना।

परम भक्त अद्वैताचार्य ने शरीर छोड़ते समय अपने प्रिय शिष्य नागर से जो-जो अनुरोध किया था उसको शिरोधार्य करके उन्होंने पूरा किया।

श्रीचैतन्य

१

पूर्वी बङ्गाल में नवद्वीप बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ संस्कृत-ग्रन्थों की विशेष रूप से चर्चा हुआ करती थी। बड़े-बड़े अध्यापक अपनी-अपनी चतुष्पाठियों में छात्रों को साहित्य, न्याय और दर्शन आदि की शिक्षा दिया करते थे। संस्कृत-साहित्य के इसी लीला-क्षेत्र में, शके १४०७ के फागुन की पौर्णिमा को, श्रीचैतन्य ने जन्म ग्रहण किया। उनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र और माता का शची देवी था। ये दोनों सभी के विशेष रूप से भक्ति-भाजन थे। जिस समय चैतन्य का जन्म हुआ उस समय अद्वैताचार्य की पत्नी सीता देवी और श्रीवास पण्डित की पत्नी मालिनी ने वहाँ आकर बालक को बहुत कुछ नज़राना दिया; और अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियों ने जगन्नाथ मिश्र के घर को मङ्गल-ध्वनि से मुखरित कर दिया। शची-कुमार का जन्म होने पर शान्तिपुर में अद्वैताचार्य भक्त हरिदास का हाथ पकड़कर आनन्द से नृत्य करने और इस उपलक्ष्य में गङ्गा-स्नान करके ब्राह्मणों को पैसा, चावल प्रभृति दान करने लगे। आचार्य का विश्वास था कि इसी

बालक के द्वारा भविष्यत् में वैष्णवधर्म चारों ओर विस्तृत होगा—भगवद्भक्ति की धारा प्रवाहित होकर मानवों के शुष्क हृदय को सरस करेगी।

शची देवी ने अपने इस बालक का नाम निमाई रक्खा था। किन्तु यह बालक इतना सुन्दर था कि अन्यान्य स्त्रियाँ इसे गौर कहा करती थीं। इस कारण बचपन में इस बालक को कोई निमाई कहता था और कोई गौर। अधिकांश लोग निमाई ही कहते थे। संन्यास लेने पर इनका नाम चैतन्य हो गया।

वैष्णव-लेखकों ने इनके बाल्य-जीवन की अनेक अलौकिक घटनाओं का उल्लेख किया है। शची देवी अपने बालक को चबैना, बताशा आदि खाने को देती थीं। किन्तु एक दिन उन्होंने क्या देखा कि निमाई खाद्य वस्तुएँ इधर-उधर फैलाकर मिट्टी खा रहे हैं। यह देखकर माता ने पूछा—"बेटा, लाई और बताशे फेंककर मिट्टी क्यों खा रहे हो?" इस पर निमाई ने तत्त्वज्ञानी की तरह उत्तर दिया—"मा, मीठी चीज़ें तो सभी मिट्टी का विकार मात्र हैं, इसलिए मेरे मिट्टी खाने पर तुम खेद क्यों करती हो?" माता ने जब समझाया कि मिट्टी खाने से शरीर में विकार होता है, तबीअत बिगड़ जाती है तब निमाई ने कहा—"मुझे पहले से यह बात मालूम होती तो मैं मिट्टी न खाता।" 'सभी तो मिट्टी का विकार है' यह निःसन्देह तत्त्वज्ञान की बात है। एक दिन जगन्नाथ

मिश्र के घर एक ब्राह्मण भोजन करने आया। वह बाल-गोपाल का उपासक था। मिश्रजी के घर रसोई बनाकर वह ब्राह्मण भोजन करने ही वाला था कि निमाई ने उसकी थाली में से भात उठाकर अपने मुँह में रख लिया। अब ब्राह्मण देवता ने दुबारा रसोई बनाकर भोजन करना चाहा तो निमाई ने फिर पहले की भाँति ब्राह्मण की थाली में से एक ग्रास उठा लिया। मिश्र और शची देवी दो-दो बार अपने पुत्र का यह कार्य देखकर अत्यन्त दुखी हुए। बेटे के इस बर्ताव से असन्तुष्ट होकर मिश्रजी उसे मारना चाहते थे किन्तु अतिथि ने उन्हें रोक दिया। अब उस अतिथि के लिए तीसरी बार रसोई बनाने की तैयारी की गई। किन्तु इस बार चावल कच्चे रह गये। कहा जाता है कि ब्राह्मण के आगे अपनी मूर्त्ति बदलकर निमाई बाल-गोपाल-रूप में प्रकट हो गये थे।

बचपन में निमाई बहुत ही चञ्चल थे। लोग जब गङ्गा-स्नान करने जाते तब निमाई भी वहाँ पहुँचकर अनेक प्रकार के उत्पात करते थे। गोता लगाकर कभी किसी का पैर खींचते और किसी के ऊपर जल उलीच देते थे। स्त्रियाँ जब घाट पर बैठकर पूजा-पाठ करने लगतीं तब निमाई उनके समीप जाकर कहते "फूल चन्दन से तुम हमारी ही पूजा करो।" क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी को निमाई चिढ़ाते थे परन्तु उन्हें सभी चाहते थे। मिश्र के पुत्र में ऐसी अपूर्व सुन्दरता थी कि उन पर प्रेम किये बिना किसी से रहा न जाता था।

अब निमाई के विद्यारम्भ का समय उपस्थित हुआ। जगन्नाथ मिश्र ने पुत्र का विद्यारम्भ संस्कार कराकर उसकी शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया। बचपन में ही निमाई की प्रतिभा का परिचय मिल गया था। जो बात वे एक बार सीख लेते उसे कभी भूलते न थे। थोड़े ही समय में उन्होंने पाठशाला की प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर ली और अब संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया। इसी समय मिश्र-परिवार में एक विषाद की घटना हुई। निमाई के बड़े भाई का नाम विश्वरूप था। इस बालक ने बहुत छोटी अवस्था से ही संसार के प्रति विराग प्रकट किया। ऐसा वैराग्य-प्रवण हृदय संसार की चकाचौंध में मुग्ध होकर जीवन के महत्कर्त्तव्य कर्म को कैसे भूल सकता है? विश्वरूप किसी से कुछ कहे-सुने बिना ही, एक बार रात को, पिता-माता को छोड़कर चलते हुए। कोई न बतला सका कि वे किस ओर चले गये। इस निदारुण घटना के कारण पिता-माता ने हिम्मत हार दी। जब निमाई ने सुना कि विश्वरूप घर-द्वार छोड़कर चले गये हैं तब वे अचेत होकर गिर पड़े। उनका हृदय मानों फटने लगा।

विश्वरूप ने इस छोटी उम्र में ही यथारीति संस्कृत की शिक्षा प्राप्त कर ली थी। किन्तु जब वे घर-द्वार छोड़कर चले गये तब जगन्नाथ मिश्र ने सोचा कि लिखाने-पढ़ाने से मनुष्य तत्त्वज्ञानी हो जाता है और तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाने से

वह संसार से विरक्त हो जाता है। विश्वरूप की यही दशा हुई। इससे उन्होंने निमाई का पढ़ाना-लिखाना बन्द कर दिया। निमाई की शिक्षा-प्राप्ति में विघ्न होते देख शची ने स्वामी को समझाया-बुझाया किन्तु वे किसी तरह उनसे अपनी बात न मनवा सकीं।

निमाई एक तो योंही नटखट थे और अब लिखना-पढ़ना बन्द हो जाने से सदा खेल-कूद में मगन रहने लगे। पहले से दूनी चञ्चलता करके उन्होंने लोगों को हैरान करना आरम्भ कर दिया। एक दिन निमाई घूरे पर जा खड़े हुए। पुत्र को ऐसे अशुद्ध स्थान में खड़ा देखकर शची हाथ में लाठी लेकर मारने चलीं। निमाई ने कहा—"मुझे जब लिखने-पढ़ने न दोगी तब मैं और करूँगा ही क्या! यदि अब मेरे पढ़ने-लिखने का प्रबन्ध कर दो तो मैं यहाँ से हटूँ नहीं तो यहाँ से न हटूँगा।" लड़के की युक्ति-सङ्गत बात का पालन करना उन्होंने स्वीकार कर लिया। निमाई के घूरे से हट आने पर माता ने उन्हें स्नान करा दिया। मिश्रजी ने सब बाते सुनीं और पुत्र के पढ़ने की फिर व्यवस्था कर दी। उन दिनों नवद्वीप में गङ्गादास नामक एक प्रधान व्याकरणी, शाला स्थापन कर, छात्रों को विद्या-दान करते थे। जगन्नाथ मिश्र ने अपने पुत्र को इन्हीं पण्डितजी के यहाँ पढ़ने को भेजा। निमाई को बड़े आदर से शिष्यरूप में ग्रहण कर गङ्गादास पढ़ाने लगे। थोड़े ही दिनों में निमाई व्याकरण

में विशेष रूप से व्युत्पन्न होकर अच्छे व्याकरणी कहलाने लगे। केवल व्याकरण ही नहीं, बल्कि न्याय और स्मृति आदि विषयों में भी उन्होंने थोड़ी ही अवस्था में पारदर्शिता प्राप्त कर ली जिससे सर्वत्र उनकी प्रशंसा होने लगी।

विश्वरूप जब से घर-द्वार छोड़कर विरक्त हो गये थे तभी से जगन्नाथ मिश्र के जी में एक आशङ्का बनी रहती थी। वह यही कि शायद एक दिन निमाई भी हमें छोड़कर संन्यासी हो जायगा। इस चिन्ता ने उनके मन पर यहाँ तक अधिकार कर लिया था कि एक दिन उन्होंने स्वप्न में देखा कि निमाई संन्यासी होकर घर से जा रहा है। यह स्वप्न-वृत्तान्त शची को सुनाकर जगन्नाथ मिश्र आँसू बहाने लगे। निमाई की माता ने समझा-बुझाकर मिश्रजी को सान्त्वना दी सही किन्तु यह घटना उनकी दृष्टि में मानो सच जँचने लगी। उनकी हिम्मत टूट गई। इसके कुछ दिन बाद जगन्नाथ मिश्र का शरीरान्त हो गया। निमाई ने यथाविधि पिता की अन्त्येष्टि क्रिया की। पति-हीन होने पर शची देवी बहुत ही व्यथित हुईं—पितृ-शोक में निमाई यद्यपि सन्तप्त थे तथापि जब माता रोने लगती तब वे उसे ढाढ़स बँधाते थे। निमाई अब अपनी माता के आदर की एकमात्र वस्तु थे।

अब वे मन लगाकर गङ्गाधर की पाठशाला में अध्ययन करने लगे। किन्तु जैसे-जैसे उनकी अवस्था बढ़ती गई वैसे-वैसे मानो उनकी चञ्चलता और क्रोध भी बढ़ने लगा। वे

ज्ञानाभिमानी की तरह वैष्णवों के प्रति असम्मान व्यक्त करते थे,—अन्यान्य पाठशालाओं के विद्यार्थियों का उपहास करके और उनको चिढ़ाकर बहुत ही तङ्ग करते थे। शची देवी निमाई को बहुत ही चाहती थीं। इस लाड़ के कारण वे ज़रा सी बात में बिगड़ उठते और घर की चीज़-वस्तुओं को तोड़-फोड़कर ख़राब कर देते थे। बेचारी शची देवी सब सह लेती थीं।

गङ्गादास की पाठशाला में अध्ययन करते समय ही निमाई की बुद्धिमत्ता की चर्चा चारों ओर फैल गई थी। प्रसिद्ध व्याकरणी गङ्गादास से शिक्षा प्राप्त करके वे उस समय नवद्वीप भर की शालाओं के छात्रों से श्रेष्ठ हो गये। व्याकरण के तो वे पण्डित थे ही परन्तु चतुष्पाठी में नियम के साथ न्याय, दर्शन और अलङ्कार आदि विषयों का अध्ययन न करने पर भी केवल अध्यापकों के मुँह से इन सब विषयों को सुनकर, प्रतिभा के बल से, इन सब शास्त्रों में व्युत्पन्न हो गये थे। और इसमें वे यहाँ तक कुशल हो गये थे कि उक्त विषयों के पारदर्शी छात्रों को भी प्रश्नोत्तर में परास्त कर देते थे।

२

गङ्गादास की शाला की पढ़ाई समाप्त करके निमाई ने स्वयं एक पाठशाला स्थापित की। उनका सुयश सुनकर छात्रों के दल उनके यहाँ पढ़ने के लिए आने लगे। वे बड़ी

कुशलता से सबको विद्या पढ़ाने लगे। निमाई दिन भर अध्ययन और अध्यापन-कार्य करते थे। सन्ध्या-समय छात्रों के बीच घिरकर गङ्गा-किनारे जाया करते और वहाँ शास्त्र की चर्चा किया करते थे। उनके टोल (पाठशाला) में एक सहस्र छात्र विद्याध्ययन करते थे।

चटगाँव-निवासी सुगायक मुकुन्द दत्त किसी अन्य टोल के छात्र थे। उन्होंने रीति के अनुसार अलङ्कारशास्त्र का अध्ययन करके उसमें विशेष रूप से पारदर्शिता प्राप्त की थी। निमाई सभी से प्रत्येक विषय में प्रश्न करते और परास्त कर देते थे। एक दिन मार्ग में मुकुन्द दत्त से निमाई की भेट होने पर मुकुन्द ने सोचा कि अलङ्कार विषय में निमाई कुछ भी नहीं जानते इसलिए आज इसी विषय में इनसे दो-एक प्रश्न करके इन्हें परास्त करेंगे। यह सोचकर उन्होंने अलङ्कार विषय में निमाई से प्रश्न किया। निमाई ने उसका ऐसा बढ़िया उत्तर दिया कि मुकुन्द दत्त सुनकर चकित हो गये। उन्होंने कहा "ऐसा पण्डित नहीं देखा था जिसे सभी विषयों की अभिज्ञता हो।" एक दिन न्यायशास्त्र के सुपण्डित गदाधर से उनकी भेट हुई। निमाई ने कहा—"तुम न्यायशास्त्र की आलोचना किया करते हो। बतलाओ, मुक्ति किसे कहते हैं?" गदाधर के मुक्ति की व्याख्या करने पर निमाई ने उसकी अनेक प्रकार की व्याख्या करके गदाधर को परास्त कर दिया। न्यायशास्त्र में निमाई की ऐसी दक्षता देखकर गदाधर भी दङ्ग हो गये।

जब-तब निमाई की उद्धत प्रकृति का परिचय मिलता था। उस समय शान्तिपुर में अद्वैताचार्य और नवद्वीप में श्रीवास पण्डित ही क्षीण भाव से वैष्णव धर्म का प्रचार करने में निरत थे। इन अनुरागी वैष्णवों को निमाई चिढ़ाते थे और कहते थे कि हम तो शास्त्र के पठन-पाठन में चित्त लगाये रहेंगे, हमको और कुछ अच्छा नहीं लगता। एक दिन नवद्वीप के प्रमुख वैष्णव श्रीवास पण्डित को मार्ग में देखकर उन्होंने व्यङ्ग्य करने में सङ्कोच नहीं किया। उस समय उन्होंने यह नहीं सोचा कि आज हम जिनका उपहास कर रहे हैं, एक दिन उन्हीं के नेता बनकर वैष्णव धर्म के रस-पूर्ण मार्ग पर उन्हीं लोगों को परिचालित करेंगे।

इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर वल्लभाचार्य की बेटी लक्ष्मी देवी के साथ उनका विवाह हुआ। क्या रूप और क्या गुण सभी बातों में लक्ष्मी देवी लक्ष्मी-सदृश थीं। पुत्र और पुत्र-वधू के साथ शची देवी आनन्द से गृहस्थाश्रम में रहने लगीं। निमाई भी बड़े आदर के साथ अध्यापन-कार्य में नियुक्त रहे।

कुछ दिनों के पश्चात् कुमारहाट-निवासी माधवेन्द्र पुरी के शिष्य ईश्वर पुरी नवद्वीप में आये। वे परम वैष्णव होने के अतिरिक्त धुरन्धर पण्डित भी थे। नवद्वीप में आकर वे उस समय के वैष्णव समाज के शीर्षस्थानीय अद्वैताचार्य के घर गये। संन्यासी को देखते ही अद्वैताचार्य समझ गये

कि यह कोई परम भक्त है। उन्होंने संन्यासी के साथ भक्ति-तत्त्व-प्रसङ्ग में कुछ दिन बिताकर परम प्रीति प्राप्त की। उक्त संन्यासीजी एक दिन मार्ग में चले जा रहे थे कि निमाई के साथ उनका साक्षात्कार हो गया। रूप-लावण्य देखते ही संन्यासी ने समझ लिया कि यही निमाई पण्डित हैं। निमाई ने भी उन्हें परम भागवत समझकर उनके चरणों पर माथा रखकर प्रणाम किया और उनसे अनुरोध किया कि मेरे घर पर चलकर भिक्षा ग्रहण कीजिए। संन्यासीजी ने निमाई के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। वे उनके घर पधारे। निमाई पण्डित को लोग-बाग दाम्भिक-शिरोमणि समझते थे। वे सदा विद्या के रस में मग्न रहते थे, भक्तिपन्थवालों के प्रति उनकी विशेष श्रद्धा तो थी ही नहीं, उलटा वे उन्हें प्रायः घृणा की दृष्टि से देखा करते थे। किन्तु ईश्वर पुरी के दर्शन होते ही उनका वह भाव मानो तिरोहित हो गया। वे चित्त लगाकर इस भक्त के मुँह से निकली हुई मधुर भक्ति की बातें सुनने लगे। संन्यासीजी "कृष्णलीलामृत" ग्रन्थ के प्रणेता थे और निमाई को व्याकरण का प्रसिद्ध पण्डित जानते थे। इस कारण उन्होंने निमाई के हाथ में अपना ग्रन्थ देकर कहा—"इसमें यदि कोई भूल-चूक देख पड़े तो मुझे बतलाइए।" निमाई ने उत्तर दिया—"भक्ति-ग्रन्थ के दोष का उल्लेख करना अपराध है।" किन्तु संन्यासीजी के विशेष अनुरोध करने पर निमाई ने उक्त ग्रन्थ को पढ़ा और बड़े विनीत

भाव से उसके एक अंश में छन्दोभङ्ग और व्याकरण का दोष दिखला दिया। सुपण्डित ईश्वर पुरी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ, निमाई की बतलाई हुई, अपनी भूल मान ली। आगे चलकर यही संन्यासीजी शची-नन्दन के दीक्षा-गुरु हुए।

कुछ समय के पश्चात् नवद्वीप में केशव कशमीरी नामक एक दिग्विजयी पण्डित आये। ये अनेक स्थानों में घूम-फिरकर बड़े-बड़े पण्डितों को परास्त किया करते थे। नवद्वीप में आकर इन्होंने घोषणा कर दी कि हम सभी शास्त्रों में शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हैं। यदि पण्डित-मण्डली शास्त्रार्थ न करना चाहे तो हमें जय-पत्र लिखकर दे दे। किन्तु नवद्वीप के प्रधान पण्डितों में से कोई भी शास्त्रार्थ करने को तैयार न हुआ। सभी ने सोचा कि यदि इसके साथ शास्त्रार्थ करने में नवद्वीप परास्त हो गया तो फिर उसके यश-सूर्य को कलङ्क के मेघ छिपा लेंगे। इस समय निमाई पण्डित अपनी पाठशाला में छात्रों के बीच बैठे अध्यापन-कार्य कर रहे थे। वहाँ एक छात्र ने कहा—"प्रभो, एक दिग्विजयी पण्डित नवद्वीप में आये हैं। वे सभी शास्त्रों के ज्ञाता सुपण्डित हैं और शास्त्रार्थ करना चाहते हैं किन्तु उनके साथ शास्त्रार्थ करने का किसी को साहस नहीं होता।" निमाई ने मुसकुराकर कहा—घमण्डी के अभिमान को भगवान् चूर्ण कर देते हैं। यदि दिग्विजयी पण्डित को अपने पाण्डित्य का इतना अभिमान हो गया है तो उनके घमण्ड को भगवान् न रहने देंगे।

होनहार की बात तो देखिए। एक दिन दिग्विजयी पण्डित अपने साथियों को लेकर गङ्गा-किनारे जा निकले। वहाँ क्या देखा कि निमाई पण्डित अपने बहुत से शिष्यों की सभा बनाये बैठे हुए हैं। चन्द्र की निर्मल चाँदनी छिटकी हुई है। गङ्गा की धवल जल-राशि पर चन्द्र-किरणों की अपूर्व शोभा हो रही है। केशव कशमीरी निमाई की सभा में उपस्थित हुए। सभी ने उनकी यथोचित अभ्यर्थना की। निमाई ने आदर-पूर्वक उनसे बैठने के लिए कहा। दिग्विजयी ने निमाई से पूछा—तुम्हारा ही नाम निमाई है?

निमाई ने विनीत भाव से कहा—जी हाँ।

दिग्विजयी—सुना है, नवद्वीप में तुम प्रधान वैयाकरण हो?

निमाई—व्याकरणशास्त्र को मैं पढ़ाता तो हूँ किन्तु अभी तक उस शास्त्र में विशेष अभिज्ञता नहीं हुई।

दिग्विजयी ने निमाई की बात सुनकर कहा—नहीं, मैंने सुना है कि तुम व्याकरण में अद्वितीय हो।

इस प्रकार थोड़ी देर तक बातचीत होने पर दिग्विजयी ने दम्भ के साथ निमाई से कहा—"तुम्हें कुछ पूछना है? चाहे जिस विषय में तुम हमसे प्रश्न कर सकते हो।" निमाई ने बड़ी नम्रता के साथ कहा—"मैं तो अपने छात्रों के लिए भी उपयुक्त नहीं हूँ; किसी भी विषय पर मेरा विशेष अधिकार

नहीं है, इत्यादि ।" उन्होंने विनम्रता प्रकट करके कहा—"सुना है, आप अद्वितीय पण्डित हैं। अच्छा, ये जो सामने गङ्गाजी विराजमान हैं इनकी महिमा का वर्णन यदि आप हम लोगों को सुनावें तो हम अत्यन्त सुखी हों।" केशव कशमीरी ने उसी दम गङ्गा की महिमा के वर्णन में सौ श्लोक बना दिये। नवीन श्लोकों को सुनकर सभी मुग्ध हो गये। गौरचन्द्र ने दिग्विजयी पण्डित की कवित्व-शक्ति की विशेष रूप से प्रशंसा करके कहा—"आपने अभी जो श्लोक सुनाये हैं उनमें से दो-एक की व्याख्या सुनने की इच्छा है।" दिग्विजयी ने पूछा कि किस-किस श्लोक की व्याख्या सुनना चाहते हो। इस पर गौर ने कुछ श्लोकों का उल्लेख कर दिया। दिग्विजयी को यह जानकर अचम्भा हुआ कि इतने श्लोकों में से इन्होंने इन श्लोकों को किस तरह याद कर लिया। फिर उन्होंने निमाई की अद्भुत स्मरण-शक्ति की प्रशंसा करके पूछा कि मैंने जो अभी श्लोक बनाये हैं इनमें कहीं पर कुछ दोष तो नहीं जान पड़ता। तब निमाई ने बड़े विनीत भाव से कहा—"यदि आप अपराध क्षमा करें तो मैं इस विषय में कुछ निवेदन करूँ।" अब उन्होंने उन श्लोकों में व्याकरण, अलङ्कार और छन्दोभङ्ग के दोष दिखला दिये। दिग्विजयी ने देखा कि निमाई ने जिन दोषों का उल्लेख किया है वे यथार्थ हैं। इससे उनका चेहरा उतर गया। निमाई के बहुसंख्यक छात्र हँसने लगे। इस पर गौर ने उनको डपटकर दिग्विजयी से कहा—

"पण्डितजी, आपमें असाधारण कवित्व-शक्ति है, आप जो लगातार नये सौ श्लोक बनाकर धड़ाधड़ सुना गये इससे हमें आपकी असाधारण कवित्व-शक्ति का परिचय मिला। भूल किससे नहीं होती ? भवभूति और कालिदास जैसे प्रसिद्ध कवियों की कविता में भी दोष वर्तमान हैं। इसके लिए आप मन में खेद न करें। यही आपसे हमारा अनुरोध है।" दिग्विजयी ने इन्हें केवल प्रसिद्ध व्याकरणी ही समझा था, किन्तु अब अलङ्कार प्रभृति शास्त्रों में भी उनकी अपूर्व दक्षता का परिचय पाकर वे विस्मित हुए। कहा जाता है कि उसी रात को शारदा ने स्वप्न में दर्शन देकर दिग्विजयी पण्डित से कहा कि गौर तो ईश्वर का अवतार है। दूसरे ही दिन दिग्विजयी ने गौर का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया।

दिग्विजयी का पराभव करने के अनन्तर निमाई का सुयश सर्वत्र फैल गया। चारों ओर से पढ़ने की इच्छा रखने-वाले छात्र आने लगे। पाठशाला विद्यार्थियों से भर गई। निमाई पण्डित ने केवल पाण्डित्य में ही सुयश अर्जित न किया था, किन्तु उनकी दयाशीलता भी विख्यात थी। उनके घरवालों के अतिरिक्त बीस-बाईस आदमी उनके घर प्रतिदिन भोजन किया करते थे। गौर की माता शची देवी अपनी लक्ष्मी-स्वरूपा पुत्र-वधू सहित सदा रसोई के कार्य में लगी रहती थीं। जो लोग मिश्र-परिवार के यहाँ अतिथि होते थे वे इनके कार्य से बहुत ही तृप्त होते थे।

३

कुछ दिन के अनन्तर माता से अनुमति लेकर निमाई पूर्वी बङ्गाल में गये। स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि पूर्वी बङ्गाल में वे कहाँ-कहाँ गये थे। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ उनके पहुँचने से एक आन्दोलन उपस्थित हो गया था। वे जहाँ कहीं जाते वहीं बहुसंख्यक छात्र उनके पास जाकर शिक्षा प्राप्त करते थे। इस समय उन्होंने व्याकरण पर एक टिप्पणी लिखी। इसी की सहायता से अध्यापक लोग छात्रों को शिक्षा देने लगे। अब उक्त टिप्पणी ग्रन्थ अलभ्य है। किसी-किसी की राय है कि शिक्षा का विस्तार करने के लिए ही निमाई पूर्व वङ्ग में गये थे। जब वे स्वदेश की ओर लौटे तब बहुत लोगों ने उन्हें द्रव्य और अनेक प्रकार की वस्तुएँ समर्पित कीं। उनके टोल में अध्ययन करने के लिए पूर्वी बङ्गाल से बहुतेरे छात्र उनके साथ-साथ नवद्वीप में आये।

किन्तु जब निमाई यात्रा में थे तब उनके घर एक दुर्घटना हो गई। इसकी ख़बर उनको नहीं मिली। वह दुर्घटना यह थी कि उनकी पत्नी का, साँप के डसने से, स्वर्गवास हो गया। बहू के न रहने से शची माता शोक-कातर हो गईं।

निमाई बड़े आनन्द के साथ विदेश से लौटकर घर आये। उक्त दुर्घटना का समाचार उन्हें सुनाने का साहस किसी को भी न हुआ। वे घर आकर, बाहरवाले कमरे में बैठ-

कर, इष्टमित्रों से देश-भ्रमण की बातचीत करने लगे। उनके मधुर वाक्यों को सब लोग आनन्द-पूर्वक सुनने लगे। इसके पश्चात् निमाई ने घर के भीतर जाकर देखा कि माता बहुत ही उदास बैठी हैं। पहले वे उदासी का कारण न समझ सके, किन्तु उसी समय किसी व्यक्ति ने लक्ष्मी देवी के परलोक-गमन का उल्लेख कर दिया। इस दुःसंवाद को सुनकर निमाई घर में एक तरफ़ खड़े-खड़े सोचने लगे। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। शची माता भी ज़ोर से रोने लगीं। निमाई ने माता को समझा-बुझाकर ढाढ़स बँधाया।

निमाई के विदेश-भ्रमण के समय पाठशाला का कार्य बन्द था। अब उनके घर आने पर पाठशाला का काम फिर पहले की तरह होने लगा। पत्नी-वियोग के शोक की तीव्रता धीरे-धीरे निमाई के मन से हट गई। अब माता बेटे का दूसरा विवाह करने के लिए उद्योग करने लगीं। नवद्वीप में उस समय एक सधन पण्डित रहते थे। उनका नाम सनातन था। उनके विष्णुप्रिया नाम की एक सुन्दरी कन्या थी। शची देवी ने इस कन्या के साथ बेटे के विवाह की बातचीत लगाई। सनातन पण्डित ने इस प्रस्ताव को बड़े आनन्द से स्वीकार कर लिया। गौर भी राज़ी हो गये। बुद्धिमन्त ख़ाँ नामक एक धनवान् व्यक्ति ने इस विवाह में अपनी तरफ़ से बहुत रुपया ख़र्च किया था। वे निमाई

पण्डित को बहुत चाहते थे। उनका यह दूसरा विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ।

निमाई कभी-कभी अपने छात्रों के साथ बाज़ार में सैर करने निकल जाते थे। उनके स्वभाव में ऐसी आकर्षणी शक्ति थी कि जो व्यक्ति उन्हें एक बार देख लेता वह फिर उनकी ओर आकृष्ट हुए बिना न रह सकता था। वे जिस समय बाज़ार जाते उस समय कितने ही दूकानदार अपनी दूकानों का सामान उन्हें सेंत-मेंत दे दिया करते थे। नवद्वीप के बाज़ार में श्रीधर नामक एक व्यक्ति तरकारी बेचा करते थे। वे निमाई को बहुत चाहते थे; और रसिक पुरुष की भाँति उनके साथ तमाशा करते थे। एक दिन निमाई ने उनसे कहा—श्रीधर, हमने सुना है कि तुम्हारे यहाँ बहुत रुपये ज़मीन में गड़े हैं।

श्रीधर ने कहा—प्रभो, मेरे यहाँ भला रुपये कहाँ से आये? मुझे जैसी कुछ तकलीफ़ है, वह आपसे क्या कहूँ।

निमाई ने मुसकुराकर कहा—श्रीधर, हमको मालूम है कि तुम श्रीहरि का भजन किया करते हो। तो हरि का नाम लेने से क्या मनुष्य दुःख पाता है?

इतने में ही निमाई ने श्रीधर से केले के पेड़ का गूदा और पत्ते आदि लेकर कहा कि श्रीधर, इसके दाम ले लो।

श्रीधर ने कहा—महाराज, मैं आपसे दाम नहीं लेना चाहता। जब आप बाज़ार आया करें तब मेरे पास से कुछ न कुछ वस्तु ले जाया कीजिए।

निमाई ने हँसकर कहा—अच्छी बात है। तो फिर अब तुमसे बहुत बातचीत करने की क्या ज़रूरत है। हमें तो केले के पेड़ का गूदा, केला और जड़ मिलनी चाहिए।

अब निमाई ने पितरों की सद्गति की कामना से गयाधाम की यात्रा करने के लिए माता से अनुमति माँगी। शची देवी यद्यपि बेटे को दूर देश में भेजना पसन्द न करती थीं तथापि उन्होंने अनुमति दे दी। निमाई कुछ शिष्यों के साथ गयाजी को गये।

शिष्यों के साथ चलते-चलते निमाई ने एक ब्राह्मण के यहाँ डेरा किया। एक स्थान में, ज्वर आ जाने के कारण, वे कई दिन तक ठहरे रहे। इसमें उन्हें बहुत कष्ट सहना पड़ा। ज्वर जब किसी तरह न हटा तब उनके शिष्य बहुत ही चिन्तित हुए। अन्त में निमाई ने एक ब्राह्मण का चरणोदक पीकर ज्वर से छुटकारा पाया। इसके पश्चात् चङ्गे होने पर शिष्यों के साथ वे फिर गया की ओर चले।

अन्त में रास्ता चलते-चलते वे गयाजी जा पहुँचे। भारत की इस प्रसिद्ध पुण्यभूमि में पदार्पण करके निमाई ने मस्तक झुकाकर इस स्थान के माहात्म्य को स्मरण किया और साष्टांग दण्डवत् की। फिर स्नान आदि करके विष्णु के चरण-कमल के दर्शन करने के लिए मन्दिर में गये। गयासुर के मस्तक पर विष्णु के पदाघात का चिह्न दिखाकर पण्डा लोग उस चरण के गुणों का कीर्तन करने लगे। उन गुणों को सुनते-सुनते निमाई भाव में मग्न हो गये। उनकी आँखों से आँसुओं

की धारा वहने लगी, उनका अङ्ग कण्टकित हो गया और ओंठ काँपने लगे। दैवयोग से उस समय वहाँ ईश्वर पुरी उपस्थित थे। वे टकटकी लगाकर निमाई के भाव को देखते हुए सोचने लगे कि गौर साधारण मनुष्य नहीं है। यह परम सुन्दर युवा-पुरुष साधारण मनुष्यों से बाहर है। ईश्वर पुरी ठहर न सके, उन्होंने लपककर निमाई को हृदय से लगा लिया। अभी तक निमाई की दृष्टि ईश्वर पुरी पर न पड़ी थी। अब उन्हें देखते ही वे उनके चरणों पर लोट गये। संन्यासीजी ने उनके माथे पर हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

गयाधाम में रहते समय निमाई ने ईश्वर पुरी से मन्त्र ग्रहण करने की आवश्यकता का अनुभव किया और अपना अभिप्राय संन्यासी बाबा पर प्रकट किया। यह सुनकर उन्होंने कहा—"तुम्हें मन्त्र-दीक्षा दूँगा, इसमें कुछ विचित्रता नहीं है। तुम्हें तो मैं अपने प्राण तक दे सकता हूँ।" निमाई की आशा पूर्ण हुई। ईश्वर पुरी ने उन्हें मन्त्रोपदेश कर दिया। दीक्षा होने के अनन्तर निमाई के जीवन की गति बदल गई। वे कृष्ण के प्रेम में मस्त हो गये। अधिकतर एकान्त में बैठकर श्रीकृष्ण के ध्यान और उनके गुण-गान में समय बिताने लगे। एक दिन वे यहाँ तक व्याकुल हो गये कि "हे कृष्ण, हे पिता, दर्शन देकर तुम कहाँ चले गये?" कहकर रोने लग गये। निमाई पण्डित का यह अभूतपूर्व परिवर्तन देखकर साथी लोग बहुत ही विस्मित हुए।

४

निमाई नवद्वीप में लौट आये। उनके लौट आने का समाचार सर्वत्र फैल गया। उन्हें देखने के लिए बहुत लोग आने लगे। विदेश से घर आये हुए पुत्र को पाकर शची माता के आनन्द का ठिकाना न रहा। विष्णु-प्रिया के आनन्द का क्या कहना है। निमाई ने माता को प्रणाम किया और विष्णुप्रिया से मधुर सम्भाषण। दिन डूबने पर श्रीमान् पण्डित प्रभृति कुछ भक्त निमाई से मिलने को आये। उन्हें गयाधाम के विष्णुपद-मन्दिर की बातें सुनाते-सुनाते निमाई भाव में विभोर हो गये। आँसुओं से उनका वक्ष:-स्थल भीग गया। गला रुक जाने के कारण वे चुप हो गये। अन्त में धैर्य धरने में असमर्थ होकर वे "कृष्ण कृष्ण" कह-कर रोने लगे।

निमाई पण्डित का यह भाव देखकर वैष्णव लोग बहुत ही विस्मित हुए। वे लोग सोचने लगे कि उद्धत-शिरोमणि, ज्ञान-गर्वी निमाई पण्डित क्या विष्णु-भक्त हो गये! निमाई के इस भाव को देखने से उन लोगों को अपार आनन्द हुआ। इधर श्रीकृष्ण के चरण-कमल की चर्चा करते-करते निमाई भक्ति-रस में डूबकर अचेत हो गये। चेत होने पर उन्होंने श्रीमान् पण्डित से कहा—"मैं आप लोगों को अपने मन की बात सुनाना चाहता हूँ, इसलिए आप लोग कल शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी

के घर मिलिएगा।" निमाई की बातें सुनकर भक्त वैष्णव लोग बड़े आनन्द से अपने-अपने घर गये।

गङ्गा-किनारे शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी की कुटी थी। निमाई के प्रस्ताव के अनुसार दूसरे दिन सब लोग उक्त ब्रह्मचारी के घर एकत्र हुए। इसी समय निमाई वहाँ पर भागवत का श्लोक पढ़ते हुए पहुँचे। वे मानों भक्ति-सुधापान करके ही वहाँ पहुँचे, और रोते-रोते अचेत हो गये। भाव की इस धारा में वे भक्त लोग बहने लगे जो कि ब्रह्मचारी के घर उस समय उपस्थित थे। सभी की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। हरि-हरि की ध्वनि होने लगी। विष्णु-भक्तों ने कहा "निमाई पण्डित जब हमारे दल में आ गये हैं तब पाषण्डियों का अभिमान नष्ट हुए बिना न रहेगा।" किसी-किसी ने यह भी कहा कि श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं गौररूप में तो अवतीर्ण नहीं हुए हैं!

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर की सभा विसर्जित हुई और निमाई अपने गुरु गङ्गादास पण्डित के दर्शन करने गये। गङ्गादास ने उन्हें देखकर अपने हृदय से लगाया और कहा—तुम जब से बाहर गये हो तभी से तुम्हारे विद्यार्थी किसी और पण्डित के यहाँ पढ़ना नहीं चाहते। अब पाठशाला का कार्य आरम्भ करके नियमित रूप से विद्यार्थियों को पढ़ाने लगो।

गौर अब पहले के गौर नहीं रहे; अब वे कृष्ण के प्रेम में मतवाले हो गये हैं। उन्होंने पाठशाला का कार्य आरम्भ तो

कर दिया किन्तु अपरा-विद्या की शिक्षा देने में अब उनका मन नहीं लगता। नवद्वीप में स्नेह, ममता, पाण्डित्य और शिक्षा देने की सरल प्रणाली जैसी कुछ उनमें थी वैसी और किसी में न देखी जाती थी। गयाधाम से लौटने पर जब उन्होंने कार्य आरम्भ किया तब बहुत से छात्र उत्सुक होकर पाठशाला में भर्ती हुए और सभी गुरुदेव को अभिवादन करके हरि-ध्वनि करते हुए अपने अपने बस्ते खोलने लगे। छात्रों ने जब अपने अध्ययन के विषय में प्रश्न किया तब गौर ने कहा—"हरि ही सब शास्त्रों के मूल हैं; आगम, निगम प्रभृति सभी शास्त्र श्रीकृष्ण की महिमा का कीर्तन करते हैं। वे ही जगत् के जीवन-स्वरूप हैं। जिस व्यक्ति की मति-गति श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में नहीं है वह सब शास्त्रों का ज्ञाता होकर भी शास्त्र के प्रकृत रस का आस्वादन नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण का भजन छोड़कर जो व्यक्ति शास्त्र की आलोचना में ही कुशल है वह निरे गदहे की भाँति बोझ को लादे हुए है। श्रीकृष्ण के पवित्र नाम से संसार पवित्र हो जाता है।" गौर ने अनेक प्रकार से हरिनाम के माहात्म्य का वर्णन करके छात्रों से कहा कि हरि के चरणों की वन्दना करो। उन्होंने यह भी कहा कि नवद्वीप में ऐसा कौन है जो मेरी इस व्याख्या का खण्डन कर सके।

छात्र विमुग्ध होकर उनकी बातचीत सुनने लगे। अब गौर ने पूछा—"तुम लोगों ने आज हमारी व्याख्या कैसी सुनी ?"

छात्रों ने उत्तर दिया—"प्रश्न की व्याख्या हमारी समझ में बिल-कुल ही नहीं आई।" इस पर गौर ने कहा—"आज अब पाठ न होगा, चलो सब लोग गङ्गास्नान कर आवें।" छात्र लोग बस्ता बाँधकर, कृष्ण-प्रेमी गुरु के साथ गङ्गा नहाने गये। नहा-धोकर गौर जब भोजन करने बैठे तब शची ने पूछा—"बेटा, आज विद्यार्थियों को कैसा क्या पढ़ाया?" उन्होंने कहा—"माता, आज मैंने उन लोगों के आगे हरि-नाम के माहात्म्य का ही वर्णन किया है। तुम भी हरि का ध्यान और उनके नाम का स्मरण किया करो। इसी में जीवन सार्थक है।" मन ही मन माता ने सब कुछ समझ लिया।

उस दिन पाठशाला में और कुछ काम न हुआ। अगले दिन सबेरे विद्यार्थी लोग पढ़ने के लिए एकत्र हुए। छात्रों ने पूछा—"सिद्धवर्ण का समन्वय क्या है?"—उत्तर मिला—"श्रीकृष्ण की कृपा-दृष्टि में ही सिद्धवर्ण का समन्वय होता है।" निमाई पण्डित सारे पाण्डित्य को जलाञ्जलि देकर, अब सनकी आदमी की तरह, श्रीकृष्ण के मधुर भाव की चर्चा करने लगे। छात्रों ने समझ लिया कि अब इन पण्डितजी से सबक़ न मिल सकेगा। इसलिए उन्होंने उदास होकर पोथी लपेटकर रख ली। निमाई ने छात्रों से कहा—"आज तुम लोग दिन के तीसरे पहर आना।" छात्रों ने गुरुदेव को यथोचित अभिवादन करके गङ्गादास के घर जाकर उन्हें

अपने गुरु का सब हाल कह सुनाया। गङ्गादास निमाई के गुरु थे और उनको बहुत चाहते थे। निमाई भी शिक्षागुरु गङ्गादास की श्रद्धा करते थे। गङ्गादास ने गौर के शिष्यों से सब हाल सुनकर निमाई को बुलवा भेजा। निमाई के आने पर उन्होंने बड़ी शिष्टता से कहा—"निमाई, जी लगाकर विद्यार्थियों को पढ़ाया करो। यह बहुत बड़ा कार्य है, और तुम्हारे वंश के सभी पण्डित होते आये हैं। ज्ञान के मार्ग को छोड़ देना ठीक नहीं। ज्ञान न हो तो मनुष्य नहीं सोच सकता कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है। मेरी बात मानो और जी लगाकर काम करो।" गौर ने सब कुछ सुना किन्तु सुन लेने से ही क्या होगा। अब तो उनका मन एक नवीन राज्य में विचरण कर रहा है। गौर ने सिर झुकाकर गङ्गादास की बातें सुनीं और फिर घर चले आये।

उनके कथनानुसार दिन के तीसरे पहर पाठशाला में विद्यार्थी एकत्रित हुए। पाठशाला के समीप रत्नगर्भ नामक एक व्यक्ति बड़े ही मधुर स्वर से भागवत का पाठ किया करते थे। उस दिन भी वे मधुर स्वर में भागवत पढ़ रहे थे। रत्नगर्भ के भागवत-पाठ की ध्वनि से निमाई की हृदय-तन्त्री के तार झनझनाने लगे। वे भक्ति के आवेग में अभिभूत हो गये। उस दिन फिर भी वे छात्रों को न पढ़ा सके। छात्र उठकर अपने-अपने घर को चले गये।

दूसरे दिन सूर्योदय होने पर कृष्ण-भक्त निमाई पण्डित के छात्र चतुष्पाठी में एकत्र हुए। किसी छात्र ने एक शब्द की धातु पूछी। इस पर गौर ने कहा—"एकमात्र श्रीकृष्ण ही सब धातुओं और पदार्थों के बीच रहकर सारी वस्तुओं को सजीव रखते हैं। उनके अतिरिक्त और धातु नहीं है।" गौर ने और भी कहा—"नवद्वीप में ऐसा कौन है जो मेरी इस व्याख्या का खण्डन कर सके?" छात्रों ने कहा—"गुरु-देव, आप जो कुछ कहते हैं सो तो सत्य है, किन्तु हम लोग यहाँ जिस उद्देश्य से आये हैं वह सिद्ध नहीं हो रहा है।" इस पर गौर ने रोते-रोते कहा—"भाई, मेरे हृदय में एक साँवले रङ्ग का बालक मधुर सुर में वंशी बजाकर मेरे चित्त को उन्मत्त कर देता है,—उस रूप के दर्शन करने और उस मधुर शब्द के सुनने से मैं सुध-बुध भूल गया हूँ।" ये बातें कहते समय मानो उनके अङ्गों से दिव्य ज्योति प्रकट होने लगी। छात्रों ने देख लिया कि निमाई पण्डित अब मरणशील संसार के मानव नहीं हैं। अतएव उन्होंने आँखों में आँसू भरकर कहा—"आशीर्वाद दीजिए जिससे हम लोगों की मति भी श्रीकृष्ण में बनी रहे; आज से हम लोग अब और किसी के यहाँ पढ़ने न जायँगे।" यह कहकर सभी ने हरि-ध्वनि करते हुए अपनी पोथियों को बस्तों में बाँध दिया। गौर ने रोदन करते-करते सबको हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया। छात्रों ने गुरु के चरण छूकर नीची निगाह कर ली। निमाई पण्डित

का अध्यापन-कार्य समाप्त हुआ—नवद्वीप की बहुत बढ़िया पाठशाला का कार्य समाप्त हो गया।

बहुतेरे छात्रों ने गुरु के मार्ग का अनुसरण किया। वे सब लोग जब एकत्र हुए तब निमाई अपने आँगन में ताली बजाकर यह कीर्तन करने लगे—

"हरये नमः यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राय श्रीमधुसूदन॥"

दिग्विजयी-विजेता निमाई पण्डित भाव में मग्न होकर नृत्य और कीर्तन करने लगे। उस नृत्य को देखने और कीर्तन को सुनने से पत्थर के सदृश कठोर प्राण भी पसीजने लगे। यह नया चमत्कार देखने के लिए चारों ओर से दर्शक टूट पड़े। जो अद्वैताचार्य बहुत दिन से एक महापुरुष के आविर्भाव और प्रेम के प्लावन के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे उनके यहाँ भी यह समाचार भेजा गया। उस समय वे शान्तिपुर में रहते थे। उनका पहले से ही विश्वास था कि निमाई भक्ति-धर्म के प्रवर्तक होंगे; धीरे-धीरे उनके विश्वास का आधार और भी दृढ़ होने लगा। उल्लिखित समाचार पाते ही वे नवद्वीप में आ गये। धीरे-धीरे गौर का दल बढ़ने लगा, दलवालों का भाव भी सघन होने लगा। इस समय से नवद्वीप के सुविख्यात वैष्णव श्रीवास पण्डित के घर सब लोगों ने सङ्कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। रात्रि होते ही भक्त लोग एकत्र होकर कीर्तन करने लग जाते थे। भाव के

प्रबल आवेश में वे लोग निद्रा के सुख को भूलकर सारी रात बिता देते थे। जिस समय वे कीर्तन आरम्भ करते थे उस समय नवद्वीप के बहुतेरे मनुष्य श्रीवास पण्डित के घर को इधर-उधर से घेर लेते थे।

इस समय गौर में श्रीकृष्ण-विरह का भाव यहाँ तक बढ़ा कि लोग-बाग उस भाव को सनक समझने लगे। किन्तु श्रीवास पण्डित जब गौर के घर आये तब उनसे उन्होंने पूछा—"पण्डितजी, सब लोग मुझे पागल कहते हैं, तो क्या मैं सच-मुच पागल हो गया हूँ ?" श्रीवास ने कहा—"निमाई, तुम पागल नहीं हो; तुम्हें जो रोग है वह यदि मुझे हो जाय तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ।" गौर ने कहा—यदि आप मुझे पागल बतलाते तो मैं गङ्गा में कूदकर जीवन को विसर्जित कर देता।

इन दिनों अद्वैताचार्य शान्तिपुर में रहा करते थे। निमाई उनसे भेंट करने शान्तिपुर गये। वहाँ पर जब श्रीहरि की चर्चा छिड़ी तब निमाई के हृदय में भाव-प्रवाह प्रवाहित होने लगा। अन्त में वे अचेत होकर नीचे गिर पड़े। अद्वैता-चार्य उनको श्रीकृष्ण का अवतार मानते थे। निमाई जब अचेत होकर गिर पड़े तब अद्वैताचार्य उनके मुँह की ओर देर तक टकटकी लगाये देखते रहे, अन्त में मन के आवेग से उन्होंने फूल और तुलसीदल चढ़ाकर निमाई के चरणों की पूजा की। चेत होने पर निमाई ने अपनी पूजा का प्रतिवाद करके अद्वैत के चरणों की रज अपने मस्तक में लगा ली और

कहा—आज आपके दर्शन करने से मेरा जीवन सफल हुआ। आपके दर्शन से श्रीकृष्ण का भाव मन में उदित होता है।

भक्तों को साथ लेकर निमाई हरि-नाम की चर्चा और सङ्कीर्तन में समय बिताने लगे। जहाँ जितने भक्त थे सभी को नवद्वीप के इस महाप्लावन का समाचार मिलने लगा। नित्यानन्द, हरिदास और अद्वैताचार्य प्रभृति सभी एकत्रित हुए। श्रीवास के घर मानों आनन्द का बाज़ार लग गया। मनुष्यों के हृदय में भगवत्प्रेम का झरना बहने लगने पर उनके दिव्य चक्षु भी उज्ज्वल हो जाते हैं। जो लोग गुप्त रहस्य का मर्म समझने में असमर्थ रहते हैं वे उसी को समझने लग जाते हैं। एक दिन सब लोग प्रेमोन्माद में कीर्तन कर रहे थे कि निमाई ज़ोर से "पुण्डरीक पिता" कहकर रोने लगे। मण्डली के अन्यान्य लोग पुण्डरीक का नाम सुनकर अकचका गये। इसके पश्चात् पूछा कि ये पुण्डरीक कौन हैं? निमाई ने उनका यह संक्षिप्त परिचय दिया—"सिलहटनिवासी पुण्डरीक विद्यानिधि सुपण्डित, ऐश्वर्यशाली और परमभक्त हैं; वे यहाँ आवेंगे।" कहा जाता है कि निमाई के प्रेम के आकर्षण से विद्यानिधिजी नवद्वीप में पधारे। जब वे निमाई के दर्शन करने के लिए नवद्वीप में आये तब उनके धनैश्वर्य और विलासिता को देखने से निमाई के अन्यतम शिष्य चिरकुमार गदाधर को विद्यानिधि के भक्ति-भाव में सन्देह उत्पन्न हुआ। किन्तु उनका वह भ्रम बहुत शीघ्र दूर हो गया। गदाधर

एक दिन सुगायक मुकुन्द दत्त को साथ लेकर पुण्डरीक विद्यानिधि के घर गये। जाकर देखा कि वे दुग्ध-फेन-सदृश अमल शय्या पर बैठे धूम-पान कर रहे हैं। उनकी शय्या पर सुन्दर-सुन्दर तकिये रक्खे हुए हैं और डिब्बे में पान के बीड़े लगे रक्खे हैं। विद्यानिधि ने निमाई के दोनों शिष्यों की यथोचित अभ्यर्थना की। कुछ देर में मुकुन्द ने भगवद्विषयक एक गीत गाया। सङ्गीत सुनते ही भाव में विद्यानिधि के प्राण उछलने लगे। उस आवेग में वे शय्या से नीचे लोटकर "गावो गावो" कहते हुए अचेत हो गये। गदाधर समझ गये कि निमाई ने इन्हें बखूबी पहचान लिया था। चिरकुमार गदाधर ने इन ऐश्वर्यशाली भक्त-शिरोमणि से कृष्ण-मन्त्र की दीक्षा ली। निमाई ने पुण्डरीक विद्यानिधि का "प्रेम-निधि" नाम रक्खा था।

५

निमाई एक दिन प्रातःकाल नित्यानन्द को साथ लेकर श्रीवास के घर गये। धीरे-धीरे उनके सभी अनुगत भक्त वहाँ पहुँच गये। निमाई ने उनसे सङ्कीर्तन करने के लिए कहा। सङ्कीर्तन आरम्भ होते ही उन्होंने ठाकुरजी के सिंहासन पर बैठकर कहा "तुम लोग हमारा अभिषेक करो।" उनके मुँह से यह बात निकलते ही शिष्य लोग कर्पूर-सुवासित जल को घड़ों में भर-भरकर उनके मस्तक पर ढालने

लगे। धूप इत्यादि जलाकर वह स्थान सुगन्धित कर दिया गया। मुकुन्द दत्त अच्छे स्वर में गीत गाने लगे। अभिषेक का कार्य पूर्ण होने पर निमाई ने हाथ फैलाकर सबसे कहा "हमें कुछ खाने को दो।" शिष्यों ने उसी दम अनेक प्रकार के फल और मिष्टान्न लाकर उन्हें दिया। इसके पश्चात् वे अपने एक-एक शिष्य को बुलाकर उनके जीवन की अतीत बातें सुनाने और उन्हें आशीर्वाद देने लगे। श्रीवास पण्डित, अद्वैताचार्य और हरिदास प्रभृति उनके प्रधान-प्रधान अधेड़ शिष्य उनके समीप आकर खड़े हुए। निमाई ने उनमें से प्रत्येक के जीवन की अतीत घटनाओं की बातें सुनाकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

इस समय एक बड़ी ही अच्छी घटना हुई। इस महान् भाव के समय निमाई ने बाज़ार में तरकारी बेचनेवाले श्रीधर को बुलाने की आज्ञा दी। फलतः श्रीधर बुलाकर उपस्थित किये गये। निमाई ने जब श्रीधर के अनेक गुणों का उल्लेख किया तब उन्होंने बड़े ही विनीत भाव से कहा—"प्रभो, मैं नितान्त साधारण मनुष्य हूँ, मैं आपके कुत्ते के योग्य होऊँ तो होऊँ।" निमाई ने कहा—तुम्हारा यह वाक्य ही हमारी स्तुति है। लो, अब हमसे कुछ वरदान माँग लो।

श्रीधर ने कहा—"बाज़ार में जो ब्राह्मण-तनय मुझसे केले के पेड़ का गूदा और पत्ते माँगा करते थे वही जन्म-

जन्मान्तर में मेरे प्रभु हों।" निमाई ने उनसे और कुछ धन-सम्पत्ति माँग लेने के लिए कहा, तब श्रीधर ने उत्तर दिया—प्रभो, मैं आपसे और किसी वस्तु के लिए प्रार्थना नहीं करता; मेरी तो यही प्रार्थना है कि मैं आप के नाम को गाकर जीवन बिता सकूँ, ऐसा आशीर्वाद दो।

इस महानन्द के अवसर पर उन्होंने मुकुन्द को कुछ वर-दान न दिया। इसलिए श्रीवास ने निमाई से पूछा—"मधुर गान के द्वारा मुकुन्द तुम्हारे चित्त को मुग्ध किया करता है, उस पर तुम इतने उदासीन क्यों हो गये?" निमाई ने कहा—"मुकुन्द जब जहाँ रहता है तब उसी भाव में अपने को प्रकट करता है, (गङ्गा गये गङ्गादास, जमना गये जमनादास) उसकी मति स्थिर नहीं है।" गौरचन्द्र की बात सुनकर मुकुन्द निराश हो, भग्न हृदय से, रोदन करने लगा। कोमल-हृदय निमाई ने उसके रोने से व्यथित होकर कहा—"अच्छा, तुम्हें हमारे दर्शन मिलेंगे, किन्तु करोड़ जन्मों के अनन्तर।" भक्त के प्राण एक अपूर्व भाव से गठित होते हैं। निमाई का यह आश्वास-वाक्य सुनकर मुकुन्द ने उत्फुल्ल-हृदय से दोनों हाथ ऊँचे करके नृत्य करते-करते कहा—मेरा यही परम पुरुषार्थ है कि मैं करोड़ जन्मों के अनन्तर प्रभु के दर्शन करूँगा।

निमाई अपने थोड़े से भक्तों के साथ हरिनामामृत-पान करके तृप्त न रह सके। नवद्वीप के घर-घर में मधुर हरिनाम सुनाने के लिए वे व्याकुल हो उठे। इसके लिए उन्होंने

हरिदास और नित्यानन्द को बुलाकर कहा—"सब लोगों के द्वार पर जाकर तुम हरि-नाम का गान करो, और शाम को दिन भर का विवरण हमें सुनाया करो।" आज्ञा पाते ही हरिदास और नित्यानन्द हरि-नाम का प्रचार करने लगे। अनेक लोगों ने उनका उपहास करके उन्हें चिढ़ाया फिर भी उन्होंने अपने अङ्गीकृत कार्य से घड़ी भर के लिए भी मुँह न मोड़ा। वे जानते थे कि नाम से ही जीवों को शान्ति मिलेगी और नाम से ही उनकी मुक्ति होगी। जगाई और मधाई दोनों भाई थे। दोनों ही बड़े उद्दण्ड थे। ये नवद्वीप की सड़कों पर सुरा-पान किये पड़े रहते और बिना ही कारण मनुष्यों को सताते थे। इनकी प्रकृति को पशु के तुल्य कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। ये लोग एक दिन शराब के नशे में चूर हुए रास्ते में पड़े थे कि वहाँ हरि-नाम की मधुर वार्ता सुनाने के लिए नित्यानन्दजी पहुँचे। मधाई ने क्रोधान्ध होकर नित्यानन्द की छाती में घड़े का ओठ फेंककर मारा। चोट लगने के कारण नित्यानन्द के वक्ष:स्थल से रुधिर की धारा बहने लगी। किन्तु इससे उन्होंने खिन्न न होकर प्रेम-पूर्वक मधाई को आलिङ्गन किया। उस स्थान पर उपस्थित होकर गौर ने उन लोगों को अपने आश्रय में कर लिया। नित्यानन्द की अपूर्व क्षमा देखकर और भक्तों के मधुर सङ्कीर्तन से विमुग्ध होकर दोनों भाइयों ने भक्ति-मार्ग को ग्रहण कर लिया—उन लोगों के जीवन की गति एकाएक बदल गई।

६

उस समय बङ्गाल के शासक सैयद हुसेनशाह गौड़ के सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उनके प्रतिनिधि-स्वरूप क़ाज़ी नवद्वीप में रहा करते थे। क़ाज़ी ने देखा कि वैष्णव लोग निमाई पण्डित को लेकर हरि-नाम की धारा में सबको बहा ले जाने का उद्योग कर रहे हैं। मुसलमान के राज्य में हिन्दू-धर्म का इस प्रकार बेखटके प्रचार हो—यह बात उन्हें सहन न हुई। इस कारण उन्होंने वैष्णवों को सताना आरम्भ कर दिया। जब तब वे कीर्तन के स्थान पर जाकर वैष्णवों के मृदङ्ग और करताल आदि बाजों को तोड़-फोड़ डालते और मारो-पकड़ो आदि कहकर बेचारे हरि-भक्तों के चित्त पर आतङ्क जमाने लगते। इससे डरपोक अल्पविश्वासियों ने कीर्तन वन्द कर दिया। जो लोग गौर के नव-प्रवर्तित धर्म-प्रचार के विशेष पक्षपाती न थे वे कहने लगे—"क़ाज़ी के शासन के आगे यह न टिक सकेगा।" नवद्वीप में सनसनी फैल गई। कृष्ण-भक्तों ने सर्माहत होकर क़ाज़ी के अत्याचार का विवरण और अपने हृदय की वेदना का हाल गौर से जाकर कहा। सङ्कीर्तन के जन्मदाता गौरसुन्दर यह सुनकर बेखटके न रह सके। उन्होंने नित्यानन्द, श्रीवास पण्डित, और अद्वैताचार्य आदि को बुलाकर कहा—नवद्वीप के सभी स्थानों में हरिनाम की घोषणा करनी होगी, देखें कौन रोक-टोक करता है!

सन्ध्या होने से कुछ पहले ही लोगों के झुण्ड के झुण्ड आ आकर निमाई के आँगन में एकत्रित होने लगे। गौर ने कीर्तन करनेवालों के अलग-अलग दल बनाकर प्रत्येक दल का एक-एक मूल गायक नियत कर दिया। नित्यानन्द के साथ निमाई एक दल को लेकर आगे बढ़े। कीर्तनकारियों के मधुर कण्ठ-स्वर से मानो चारों दिशाओं में सुधा का स्रोत प्रवाहित होने लगा। नवद्वीप के आकाश में वह मधुर शब्द निनादित हुआ। उनके उस नृत्य और उच्छ्वास को जिन लोगों ने देखा उन्हीं का चित्त मानो प्रेम-रस में आर्द्र हो गया। किन्तु सैकड़ों लोगों की भीड़ के बीच गौर जब ऊर्ध्व-नेत्र और ऊर्ध्व-बाहु होकर आँसू बहाते हुए हरिगुण-कीर्तन करके चलने लगे तब उस दृश्य को देखकर आबाल-वृद्ध-वनिता सभी मुग्ध हो गये। निमाई जब जन-सागर को लेकर नवद्वीप के मार्ग से आगे बढ़े तब गृहस्थों की कुलवधुएँ मङ्गल-ध्वनि और शंख-नाद करके इस शुभानुष्ठान की शुभ-कामना करने लगीं तथा कीर्तन करनेवालों के मस्तक पर विविध पुष्प बरसाकर मन के आनन्द को प्रकट करने लगीं।

धीरे-धीरे सूर्यनारायण अस्ताचल की ओर अग्रसर हुए। अन्धकार फैलने लगा। अब लोगों ने मशालें जला लीं। भक्त लोग बड़े आनन्द से कीर्तन करते हुए क़ाज़ी के घर की ओर चले। क़ाज़ी ने दूर से ही गगन-भेदी कीर्तन के मधुर शब्द को सुनकर पूछा—"यह काहे का शब्द है?" उसके

कर्मचारियों ने बतलाया कि निमाई पण्डित अपने दल के साथ नगर-कीर्तन कर रहे हैं। क़ाज़ी ने कोलाहल सुनकर सोचा कि हम वैष्णवों को सताया करते हैं इसलिए आज वे लोग बड़ी भीड़-भाड़ लेकर हमारे घर पर हमला करने आ रहे हैं। इस आशङ्का से वह मन ही मन डरा; डरकर घर में जा छिपा। इधर सैकड़ों-हज़ारों आदमी उसके घर के सामने एकत्र होकर हरि-नाम की ध्वनि से दिशा-विदिशाओं को ध्वनित करने लगे। निमाई ने क़ाज़ो के घर जाकर उसे बुलवाया। क़ाज़ी जब घर के भीतर से निकलकर आया तब गौर ने कहा—"हम आपके घर आये हैं और आप घर के भीतर बैठे हैं! यह कैसा व्यवहार है?" इसके पश्चात् थोड़ी सी धर्म-चर्चा होने के अनन्तर क़ाज़ो ने कहा—"अब आप लोगों पर किसी तरह का अत्याचार न होगा। आप लोग बेखटके हरिनाम का कीर्तन करें।" क़ाज़ो के मुँह से यह अभयवाणी सुनकर सब लोग बड़े आनन्द के साथ हरिध्वनि करने लगे। श्रीगौराङ्ग ही इस नगर-कीर्तन के जन्म-दाता हैं।

७

नगर-सङ्कीर्तन के कुछ दिन पश्चात् गौर ने सोचा कि ऐसे सुधा-सने हरिनाम की घोषणा बंगाल के प्रत्येक द्वार में न की जा सकी तो जीवन का सुख न मिलेगा; किन्तु इस व्रत

को ग्रहण करने के लिए संन्यास का प्रयोजन होगा। उन्होंने देखा कि जगत् के सभी धर्म-प्रवर्त्तकों ने घर-द्वार छोड़कर संन्यास-व्रत ग्रहण किया था। फलतः गौर के मन में संन्यास ग्रहण करने की इच्छा बलवती हो उठी। इस समय उन्होंने एक स्वप्न देखा। एक सदानन्द पुरुष ने उनके आगे आकर कहा कि जननी और भार्या को छोड़कर संन्यासी हो जाओ। गौर ने उनसे पूछा कि माया के सारे बन्धनों को तोड़-मरोड़ डालना कहाँ तक युक्ति-सङ्गत है। इस पर स्वप्न-दृष्ट संन्यासी ने गम्भीरता-पूर्वक उनके जीवन के महान् व्रत का स्मरण करा दिया। उन्होंने कहा कि संसार के बन्धन को छिन्न करके झटपट संन्यास-धर्म ग्रहण कर लो और नर-नारियों के उद्धार के लिए हरिगुण-गान करने में निरत हो जाओ। स्वप्न देखने के पश्चात् निमाई के प्राण संसार-बन्धन को काटने के लिए अस्थिर हो गये।

इस समय सचमुच एक घटना हुई। केशव भारती नामक एक परिव्राजक दण्डी नवद्वीप में आये। उन पर नज़र पड़ते ही निमाई को स्वप्न-वृत्तान्त का स्मरण हो आया। उन्होंने देखा कि स्वप्न में प्रकट होकर संन्यास-व्रत ग्रहण करने के लिए जिन्होंने उपदेश दिया था उनके अङ्गों के साथ नवागत केशव भारती के अवयवों का सादृश्य स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। स्वप्न को प्रत्यक्ष देखकर उन्हें बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने दण्डी केशव भारती से अपने घर आतिथ्य ग्रहण करने के

लिए अनुरोध किया। दण्डी ने उनका अनुरोध मान लिया। निमाई के पाण्डित्य और अद्भुत धर्मानुराग की चर्चा देश-विदेश में सर्वत्र फैल चुकी थी। केशव भारती ने भी उनका गुण-गौरव सुना था। अधिक रात बीतने पर निमाई ने दण्डी से दीक्षा लेने की बात पूछी। यह सुनकर भारती ने आनन्द से पुलकित होकर कहा—"तुम मनुष्य नहीं हो, तुम तो साक्षात् नारायण के अवतार हो।" अन्त में दीक्षा का दिन निर्द्धारित हुआ। दूसरे दिन सबेरे दण्डीजी कटवा गाँव में अपने आश्रम की ओर चले गये।

गौर ने नित्यानन्द को सब बातें कह सुनाईं। उनके सङ्कल्प को विशेष रूप से समझकर नित्यानन्द ने उन्हीं के मत का अनुमोदन किया। उनके संन्यासी होने की ख़बर इधर-उधर फैलने लगी। जगन्नाथ मिश्र के परिवार में भी गौर के संन्यास धर्म-ग्रहण करने की ख़बर पहुँच गई। यह संवाद पाकर शची देवी और विष्णुप्रिया मर्माहत हुईं। शची ने आँखों में आँसू भरकर इस विषय की पूछ-ताछ लड़के से की तब निमाई ने कहा—"माता, संसार अनित्य है, कोई किसी का भी नहीं; श्रीकृष्ण का भजन और उनके नाम का कीर्तन करना ही जीवन का सुख और आनन्द है। माता, तुम भी नाम-कीर्तन किया करो।" अन्त में निमाई ने कहा—"माता, संसार में मनुष्य हरिनाम का गान किये बिना ही जीवन को बर्बाद कर रहे हैं, इसलिए मैं उन्हीं के मधुमय नाम

की चारों ओर घोषणा करूँगा। माँ, मेरे मार्ग में रोक-टोक न करना।" वैष्णव कहते हैं—"निमाई ने अपने अवतारत्व के सम्बन्ध में माता के आगे उल्लेख कर दिया था।" अवतार होने पर भी निमाई उनके बेटे थे। शची का मन किसी तरह न माना। लड़के के संन्यासी होने का स्मरण करके उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। किन्तु उन्होंने लड़के के सङ्कल्प-साधन के मार्ग में किसी प्रकार का प्रतिकूल आचरण नहीं किया।

विष्णुप्रिया ने सब कुछ सुना; स्वामी के विरक्त होने की बात सुनकर उनके प्राण विषाद से व्याकुल हो गये। संसार में न अब उनके लिए शान्ति है और न सुख। रात होने पर नवद्वीपचन्द्र, भक्तों के साथ कीर्तन आदि करके, घर लौटे और ब्यालू करके बिस्तर पर जा लेटे। विष्णुप्रिया ने शयन-गृह में जाकर देखा कि स्वामी सो रहे हैं; अतएव वे उनकी चरण-सेवा करने लगीं। श्रीमती की आँखें डबडबाई हुई थीं। उनके हाथों का स्पर्श होने से गौर की निद्रा टूट गई। उठकर देखा कि सुन्दरी सरला विष्णुप्रिया उनके चरणों पर सुकोमल हाथ रक्खे हुए हैं; उनका चेहरा उतर गया है और आँखों से आँसू बह रहे हैं। निमाई ने सोचा कि विष्णुप्रिया को सान्त्वना देना बड़ा कठिन काम है। युवती विष्णुप्रिया को संसार की अनित्यता समझाकर उसके चित्त को वैराग्य-प्रणोदित कर देना और स्वामि-वियोग-दशा में उसे स्थिर रखने

की चेष्टा करना व्यर्थ उद्यम के सिवा और कुछ नहीं। पत्नी को रोते देख उन्होंने पूछा—"भला तुम रोती किसलिए हो?" विष्णुप्रिया ने उत्तर दिया—"तुम्हारे संन्यासी होने की ख़बर पाकर।" गौर ने कहा—"तुमसे किसने कहा है?" विष्णुप्रिया ने उत्तर दिया—"लोगों के मुँह सुन लिया है। तुम नवद्वीप के गौरव हो, और तुम्हारे ही कारण मैं भाग्यवती हूँ। तुम्हारे ही निमित्त से मेरा गौरव होता है। मेरे जी में कितनी ही आशाएँ थीं, क्या तुम उन सबको मेट दोगे? तुम संन्यासी होकर घर-घर भीख माँगते फिरोगे, तुम्हारे इन सुकोमल चरणों में काँटे छिदेंगे"—ये बातें करते-करते वे स्वामी की गोद में अचेत होकर गिर पड़ीं। उन्हें सचेत करने के लिए निमाई अनेक मीठी-मीठी बातें कहकर उनके मन में आनन्द का सञ्चार करने की चेष्टा करने लगे। अन्त में उन्होंने कहा—सुनो विष्णुप्रिया, कृष्णानुरागिणी बनकर तुम अपने नाम को सार्थक करो।

गौर देवता होने पर भी थे तो विष्णुप्रिया के स्वामी। सती के हृदय में स्वामी के वियोग से असीम यन्त्रणा होती है। वे आँसू बहाकर रोने लगीं। निमाई ने मीठी-मीठी बातों के द्वारा उन्हें समझाने की चेष्टा करते हुए कहा—तुम जभी हमारा स्मरण करोगी तभी हम तुम्हारे पास आ जायँगे।

निमाई ने जिस प्रकार माता के आगे अपने अवतारत्व को प्रकट कर दिया था उसी प्रकार उन्होंने पत्नी विष्णुप्रिया को भी

अपनी ईश्वरी-शक्ति का परिचय देकर उनके मन में विस्मय और आनन्द का सञ्चार कर दिया।

विष्णुप्रिया को विश्वास हो गया था कि मेरे पतिदेव स्वयं श्रीकृष्ण के अवतार हैं। इसलिए गहरी हृदय-वेदना में भी उन्हें थोड़ी सी सान्त्वना प्राप्त हो गई थी। विष्णुप्रिया ने देखा कि निमाई के सङ्कल्प के आगे सारी विघ्न-बाधाएँ, धारा की तरह, बह जायँगी। इसलिए अन्त में उन्होंने अपने मन के आवेग को रोककर, आँसू बहाते-बहाते, स्वामी के चरणों पर माथा रखकर कहा—"जो चाहो सो करो, मैं तुम्हारे मार्ग में रोड़े न अटकाऊँगी।" रात का अँधेरा और भी घना होने लगा। शोक, दुःख और कष्ट के भार से दबी हुई विष्णुप्रिया को नींद आ गई।

इसी प्रकार कुछ समय और बीता। विष्णुप्रिया और शची देवी अब निमाई के संन्यास की चर्चा न छेड़ती थीं। निमाई ने केशव भारती के आगे संन्यास-दीक्षा ग्रहण करने का जो समय निर्धारित कर लिया था वह अब समीप आने लगा। निमाई का सङ्कल्प अटल था। वे निश्चय कर चुके हैं कि हरि-प्रेम वितरण करने के लिए हम घर-द्वार को छोड़ देंगे। १४३१ शक में, संन्यास-यात्रा के एक दिन पहले, सूर्योदय होते ही गौर बिस्तर से उठकर श्रीवास के घर पहुँचे। भक्त लोग भी एकत्र हो गये—कीर्तन होने लगा। दोपहर के समय कीर्तन को समाप्त करके सब लोग भोजन

आदि करने के लिए अपने-अपने घर गये। दिन ढलने पर सब लोग गङ्गा-किनारे गये। गौरसुन्दर बैठ गये। उनके गले में फूलों की माला थी और देह में चन्दन लगा हुआ था। गौर ने हरि-चर्चा आरम्भ कर दी। सब लोग चित्त लगाकर सुनने लगे। उन्होंने सबसे कहा—"श्रीकृष्ण ही जगत् में सार-वस्तु हैं, उनके चरणों में सदा चित्त को लगाये रहना। क्या भोजन और क्या शयन सदा उन्हीं का स्मरण करना।" उस दिन भोजन आदि करके निमाई शयन-गृह में गये। कवि लोचन दास कहते हैं—निमाई ने मधुर आलिङ्गन और बातचीत से विष्णुप्रिया को सुखी किया था। दूसरे दिन सूर्योदय होने से पहले ही वे घर छोड़कर चले जायँगे, इस बात को उनके कुछ शिष्य जानते थे। शची देवी ने भी सुन रक्खा था।

गौरसुन्दर की आँखों में आज नींद नाम लेने को भी न थी। शची देवी भी, बाण-विद्धा मृगी की तरह, पुत्र के संन्यास की बात का स्मरण करके ज़मीन पर पड़ी छटपटा रही थीं। सरला विष्णुप्रिया नहीं समझ सकीं कि स्वामी का आज का आलिङ्गन और प्रेम-भाषण सदा के लिए समाप्त हुआ!

८

चार घड़ी रात रह गई है। गौर बिस्तर से उठ बैठे। दो-एक क़दम आगे बढ़े और फिर लौटकर विष्णुप्रिया के प्रेम-

पूर्ण मुख की ओर देखने लगे। एक बार सोचा कि हाय! इस पति-प्राणा विष्णुप्रिया को सदा के लिए परित्याग कर कैसे जा सकूँगा। किन्तु तुरन्त ही वे चैतन्य हो गये; मत्त मातङ्ग की तरह सारे बन्धनों को तोड़कर बाहर निकल पड़े। निमाई ने बाहर आकर देखा कि शची देवी दरवाज़े पर आँखें मूँदे पड़ी हैं। निमाई ने उनके समीप आकर कहा—"माँ, तुमने मुझे खिलाया-पिलाया है, कपड़े पहनाये हैं और विद्या पढ़ाई है; तुम्हारे ऋण को मैं इस जन्म में न चुका सकूँगा। माँ, मैं कहीं भी क्यों न रहूँ, तुम्हारा सब भार मुझी पर रहा।" ये बातें कहकर निमाई, माता की प्रदक्षिणा करके, झटपट किवाड़ खोलकर बाहर चले गये। शची देवी शोक में इतनी अधीर थीं कि वे अपने मुँह से कुछ भी न कह सकीं। निमाई नवद्वीप में अँधेरा करके कटवा की ओर चले गये।

सवेरा होने पर गौर के शिष्यों ने आकर देखा कि शची देवी घर के दरवाज़े पर बेहोश पड़ी हैं। भक्तों के जीवन-पथ का नेता और पथ-दर्शक चला गया है। अभागिनी विष्णुप्रिया उस समय भी सो रही थीं। संन्यास ग्रहण करने के लिए गौर के चले जाने की बात सुनकर एक-एक करके लोग आने और रोने लगे। नींद खुलने पर विष्णुप्रिया को ज्ञात हुआ कि गौर चले गये हैं; पर्दे में रहनेवाली लज्जाशील विष्णुप्रिया आज लोक-लाज छोड़कर रोती हुई बाहर आ गईं। धीरे-धीरे गौर के संन्यास का समाचार चारों ओर फैल गया।

बहुतेरे मनुष्य दुखी होकर आने लगे। जो लोग निमाई के नव-प्रचारित भक्ति-धर्म के विशेष रूप से पक्षपाती न थे वे भी आज शोकाकुल होकर आँसू बहाने लगे। चैतन्य भागवत के रचयिता वृन्दावन दास ने एक जगह लिखा है कि गौर के शोक से घबराकर लोग कहने लगे—गौर के बिना जीवित रहने में क्या लाभ है ? चलो, हम लोग भी गौर के मार्ग पर चलें।

हरि-गुण-कीर्तन करते हुए निमाई गङ्गा-पार होकर कटवा गाँव की ओर गये. इधर गदाधर, मुकुन्द और चन्द्रशेखर प्रभृति कुछ शिष्य, गुरु की खोज-खबर लेने और उनके शरीर की सेवा करने के लिए जल्दी-जल्दी उसी गाँव की ओर रवाना हुए। रास्ते में ही इन्हें निमाई मिल गये।

सन्ध्या-समय निमाई कटवा गाँव में पहुँचे। केशव भारती के आश्रम में जाकर और उनके चरणों में गिरकर उन्होंने कहा—"प्रभो, कल हमें दीक्षा देकर संसार-बन्धन से मुक्त कर दीजिए।" वे पहले तो गौर की कम उम्र देखकर दीक्षा देने को तैयार न हुए किन्तु फिर असाधारण भक्ति के लक्षण देखकर कहा—"तुममें मैंने जैसी भक्ति देखी है वैसा भक्तिभाव साधारण मनुष्यों में नहीं देखा जाता। तुम नर-नारियों के गुरु-रूप में उपजे हो; मैं तुम्हारा गुरु होने योग्य नहीं। हाँ, धर्म-जीवन को प्राप्त करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है,—यह सच्ची शिक्षा देने के लिए तुम मुझे गुरु-पदवी देकर दीक्षा ग्रहण करोगे, यह मुझे मालूम

होता है !" दूसरे दिन सबेरे गौर ने सिर मुँड़ा कर गेरुवे कपड़े पहने और दण्ड-कमण्डलु ग्रहण किया। यह दृश्य देखने के लिए अनेक गाँवों से स्त्रियाँ और पुरुष आने लगे। इस नवीन सुन्दर पुरुष को संन्यासी के वेष में देखकर सभी रो-रोकर व्याकुल होने लगे। चन्द्रशेखर आचार्य ने दीक्षा की सब तैयारी कर ली। ठीक समय पर दीक्षा का कार्य पूरा हो गया। दीक्षा के समय केशव भारती ने निमाई का नाम कृष्ण-चैतन्य रख दिया। दीक्षा ले चुकने पर कृष्ण-चैतन्य ने भक्तिभाव से गुरु के चरणों में माथा रख दिया और नवीन बल से बलवान् होकर "हरि बोलो" कहते हुए नृत्य करने लगे। भारतभूमि में एक सुरसाल भक्ति-धर्म की धारा को प्रवाहित करने के लिए श्रीकृष्णचैतन्य खड़े हुए; उन्होंने एक नये युग का आरम्भ कर दिया। भक्तों ने उनके चरणों पर माथा रखकर प्रणाम किया। इस दीक्षा के काम में केशव भारती ने अपना अहोभाग्य समझा। गौर के हृदय के भगवत्प्रेम की मधुर और स्निग्ध लहर उनके जीवन को शीतल करने लगी, भक्त को दीक्षा देने से उनका चित्त भी भक्ति-रस से परिपूर्ण हो गया। जिस दिन दीक्षा दी गई उस दिन की रात को भारती के आश्रम में भक्त लोग नाम सङ्कीर्तन करते रहे।

दीक्षा ले चुकने पर निमाई किसी निर्जन स्थान में रहकर श्रीकृष्ण का भजन करने के लिए भारती का आश्रम छोड़कर

बाहर निकले। चन्द्रशेखर प्रभृति कुछ भक्त उनके साथ हो गये। केशव भारती भी कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे गये। चलते-चलते निमाई ने चन्द्रशेखर से कहा—"नवद्वीप में जाकर शची माता को सब समाचार सुनाओ।" गुरु की आज्ञा पाकर चन्द्रशेखर वहाँ गये और गौर के संन्यासी हो जाने का सब समाचार उन्होंने शची माता को कह सुनाया। शची और विष्णुप्रिया रो-रोकर व्याकुल हो गईं। नवद्वीप में चन्द्रशेखर के आने की ख़बर पाकर नर-नारियों के झुण्ड उनके पास गौर के संन्यासी होने की बातें सुनने के लिए आने लगे। सभी की आँखों से आँसू बह रहे थे।

श्रीचैतन्य कुछ स्थानों में होते हुए शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर आये और आचार्य के चरणों में प्रणत होकर आँसुओं से उनके चरणों को धोने लगे। अद्वैताचार्य ने भी रोते-रोते दोनों भुजाएँ फैलाकर प्रेम से नवीन संन्यासी को गले लगाया। इधर नित्यानन्द और श्रीवास प्रभृति गौर के अनुगामी शिष्य शची माता को साथ लेकर अद्वैत के घर उपस्थित हुए। वहाँ पर भक्तों ने कई दिन बड़े आनन्द में बिताये। वहाँ से श्रीजगन्नाथपुरी को जाने का विचार करके गौर ने कहा—"माता, तुम मेरी चिन्ता मत करना; मैं नीलाचल में रहूँगा इसलिए बीच-बीच में तुम्हें मेरी ख़बर मिलती रहेगी।" यों अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर वे जगन्नाथपुरी को गये।

नित्यानन्द, मुकुन्द और गदाधर प्रभृति कुछ लोग निमाई के साथ गये। चैतन्यदेव ने सभी से पूछा—"बोलो, तुम लोगों में किसके पास क्या है? राह-खर्च के लिए तुम्हें किसने क्या दिया है?" सभी ने उत्तर दिया—"तुम्हारी अनुमति लिये बिना कोई वस्तु साथ लाने की हिम्मत किस में है?" अन्त में श्रीकृष्ण चैतन्य उन लोगों को परमेश्वर के भरोसे रहने और विश्वास करने का उपदेश देकर रास्ता चलने लगे। यात्रियों का दल धर्म-चर्चा करते-करते छत्र-भोग नामक स्थान में पहुँचा। प्रेमिक-चूड़ामणि श्रीचैतन्य आम्बुलिङ्ग घाट पर गङ्गा देवी की मनोहर सुन्दरता देखकर और उस स्थान की पौराणिक कथा का स्मरण करके आनन्द से उन्मत्तप्राय हो गये और मधुर तथा उच्च कण्ठ से 'हरि हरि' कहकर नृत्य करने लगे। श्रीकृष्ण चैतन्य आम्बुलिङ्ग घाट पर हरिनाम में मस्त होकर नाच रहे थे कि इसी समय वहाँ के हाकिम रामचन्द्र ख़ाँ, पालकी में बैठे, वहीं से निकले। नवीन संन्यासी की अपूर्व भक्ति देखकर वे सवारी से उतर पड़े और उन्होंने संन्यासी के चरणों में प्रणाम किया। चैतन्यदेव ने उनका परिचय पाकर कहा—"तुम यहाँ के हाकिम हो, अच्छी बात है। यह बतलाओ कि हमें पुरी में श्रीजगन्नाथ देव के दर्शन क्योंकर होंगे?" रामचन्द्र ख़ाँ ने इन साधुओं के भोजन आदि की व्यवस्था कर दी और नाव की सवारी से उनके पुरी पहुँचाने का भी प्रबन्ध कर दिया। चैतन्य और उनके

शिष्य यथासमय, हरिध्वनि करते हुए, नाव पर सवार हुए। नौका खोल दी गई। यात्री लोग कीर्तन करने लगे। किन्तु मल्लाहों ने कहा—"किनारे पर जङ्गल में भेड़िये रहते हैं, जल में मगर और घड़ियाल हैं, इसके सिवा मुसाफ़िरों को लूटने के लिए नावों पर डाकू अलग चक्कर लगाया करते हैं। जब तक हम लोग उड़ीसा में न पहुँच जायँ, आप लोग कीर्तन न करें।" मल्लाहों से ये बातें सुनकर सभी चुप हो गये। किन्तु श्रीगौराङ्ग भला कब डरनेवाले थे! उन्होंने हुङ्कार करके कीर्तन करने की आज्ञा दी—"निडर होकर हरिनाम का कीर्तन करो।" कृष्णचैतन्य की बात सुनकर भक्तों के हृदय से डर भाग गया। वे उत्साह के साथ कीर्तन करने लगे। मल्लाह ताड़ गये कि परम रूपवान् नवीन संन्यासी, नरदेहधारी होने पर भी, साधारण मनुष्य नहीं है। शिष्यों के साथ चैतन्यदेव उड़ीसा में पहुँचे। मल्लाहों ने प्रयागघाट पर नाव लगा दी। सब लोग वहाँ उतरे। उस दिन तो वे वहीं रहे, अगले दिन शिष्यों के साथ वे पैदल ही पुरी की ओर चले। धीरे-धीरे वे जलेश्वर, और जाजपुर आदि स्थानों के दर्शन करके कमलपुर में पहुँचे।

जगन्नाथजी के मन्दिर के शिखर पर लगी हुई ध्वजा कमलपुर से देख पड़ती है। उस ध्वजा को देखकर श्रीचैतन्य मानो आनन्दसागर में डूब गये। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। चलते-चलते वे आनन्द की प्रबलता के कारण रास्ते में गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। सब लोग इस

अल्पवयस्क संन्यासी में भक्ति की अभिनव छटा देखकर अच-रज करने लगे। उन्होंने कहा—"भक्ति का ऐसा लक्षण किसी मनुष्य में नहीं देखा जाता। ये तो साक्षात् नारायण के अवतार हैं।" यात्री अब "अठारानाले" पर पहुँचे। गौर ने साथियों से कहा—"कहो, तुम लोग आगे जाते हो या हम जायँ?" मुकुन्द दत्त ने कहा—"तुम्हीं आगे चलो।" श्रीकृष्णचैतन्य बड़ी फ़ुर्ती से पुरुषोत्तमपुरी में पहुँचकर जग-न्नाथजी के दर्शन करने के लिए मन्दिर में गये। जगन्नाथ देव के दर्शन करने से चैतन्य का भाव-सिन्धु और भी उमड़ पड़ा। जगन्नाथजी की मूर्त्ति को हृदय से लगाने के लिए ज्योंही वे लपके त्योंही पण्डों ने आकर बीच में रोक दिया। कोई-कोई तो उन्हें पीटने के लिए भी झपटे। वहाँ पर सार्व-भौम भट्टाचार्य उपस्थित थे। उन्होंने इस नवीन संन्यासी का अपूर्व अनुराग देख मुग्ध होकर पण्डों को रोक दिया। गौर-चन्द्र को वे अपने घर ले गये। कुछ देर में नित्यानन्द, गदा-धर और मुकुन्द प्रभृति उनके साथी भी, पता लगाकर, उनके समीप पहुँच गये। सार्वभौमजी ने सभी के ठहरने और भोजन आदि का उत्तम प्रबन्ध कर दिया।

९

सार्वभौम आचार्य बड़े प्रसिद्ध वेदान्ती पण्डित थे। वे प्रतिदिन सबेरे छात्रों को वेदान्त पढ़ाया करते थे। सार्वभौमजी

लगे तब सार्वभौम उनकी बुद्धि की प्रखरता देखकर दङ्ग हो गये। उन्होंने देखा कि नवद्वीप का नवीन संन्यासी असाधारण पुरुष है। चैतन्य ने सार्वभौम से कहा—भगवान् की भक्ति करना ही मनुष्य का परम पुरुषार्थ है। उन्हीं की भक्ति करके परम शान्ति प्राप्त कीजिए।

यह कहकर चैतन्यदेव ने भागवत का यह श्लोक पढ़ा—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

आत्माराम मुनि लोग, विधि और निषेध से अलग होने पर भी, उस अमित-पराक्रमी हरि की अहैतुकी भक्ति करते हैं। क्योंकि श्रीहरि के गुण ही ऐसे हैं।

भट्टाचार्य ने गौर से इस श्लोक का अर्थ करने के लिए कहा। किन्तु उन्होंने ऐसा न करके भट्टाचार्य के ही मुँह से उक्त श्लोक की व्याख्या सुननी चाही। सार्वभौम ने इस श्लोक का तेरह प्रकार से अर्थ किया। गौर ने उनकी व्याख्या सुनकर उनकी बुद्धि की विशेष रूप से प्रशंसा की और कहा—"आपने पाण्डित्य की दृष्टि से श्लोक का अत्यन्त सुन्दर अर्थ किया है; किन्तु उसका एक और दृष्टि से अर्थ होना चाहिए।" फिर उन्होंने उक्त श्लोक के अठारह अर्थ और किये, और तारीफ़ यह कि सार्वभौम-कृत अर्थ का एक भी अंश ग्रहण नहीं किया। उक्त श्लोक की चैतन्यदेव-कृत व्याख्या सुनने से सार्वभौम को बड़ा अचरज हुआ। उनको विश्वास होने

लगा कि ये असाधारण मनुष्य हैं। वे रोते-रोते प्रभु के चरणों पर लोटने लगे। वैष्णव-लेखक कहते हैं कि सार्वभौम ने उस समय सौ श्लोक बनाकर चैतन्य की स्तुति की थी। उनके हृदय में भक्ति-भाव का सञ्चार करके गौर ने उन्हें प्रेम-पूर्वक गले लगा लिया। अब सार्वभौम के हृदय में भक्ति का फ़व्वारा खुल गया; उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। शरीर कण्टकित हो गया। वे सच्चे अनुरागी भक्त वैष्णव की भाँति नृत्य और रोदन करने लगे। विख्यात वेदान्ती राजपण्डित सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीअद्वैत से शास्त्रार्थ में परास्त होकर उनके बतलाये हुए भक्ति-मार्ग को ग्रहण कर लिया।

पुरी में सब जगह यह ख़बर फैल गई कि श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेश से सार्वभौम भट्टाचार्य ने भक्तिपन्थ को ग्रहण कर लिया है। चैतन्यदेव की अपूर्व शक्ति देखकर लोग उन्हें भगवान् का अवतार मानने लगे। नवद्वीप के इस नवीन संन्यासी की विद्या, बुद्धि, जीवन का अनुपम सौन्दर्य और उनका असाधारण भक्ति-भाव देखकर पुरी के धनी-दरिद्र और पण्डित या मूर्ख सभी उनकी ओर आकृष्ट होने लगे। हज़ारों कण्ठों से हरिध्वनि निकलने लगी। जिन्होंने कभी स्वप्न में भी मुँह से भगवान् का नाम न लिया था उनकी जीभ भी इस नाम का उच्चारण करके सुधा-रस में सराबोर होने लगी। श्रीकृष्ण चैतन्य जिस समय मार्ग में बाहर निकलते उस समय सड़क के इधर-उधर लोग हरिनाम की मधुर-ध्वनि से चारों

ओर के वायुमण्डल को प्लावित कर देते थे। पुरी में श्रीचैतन्य के आने से एक नये भाव का आविर्भाव हो गया। उन्होंने सब को हरि के प्रेम में मत्त कर दिया।

कुछ समय तक पुरी में रहने पर निमाई को दक्षिण देश की यात्रा करने की इच्छा हुई। उन्होंने शिष्यों से कहा—"मैं अकेला जाऊँगा, तुम लोग मुझे जाने दो।" नित्यानन्द ने इसमें आपत्ति करके कहा—"जो आप अकेले जायँगे तो आपको बहुत कष्ट सहना पड़ेगा। विशेष रूप से आप तो हाथ में माला लिये जप ही किया करते हैं, इसलिए आपका कमण्डलु लेने को तो कम से कम एक मनुष्य चाहिए ही।" निमाई ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। सार्वभौम आचार्य को जब निमाई के दक्षिण देश में जाने की ख़बर मिली तब उन्होंने उनके चरण पकड़कर कहा—"अनेक पुण्यों के फल से मुझे आपका साथ प्राप्त हुआ था। किन्तु हाय! विधाता ने वह छीन लिया। यदि मेरी सन्तान की मृत्यु हो जाय तो मैं उस दुःख को सहन कर सकता हूँ, किन्तु आपका वियोग मुझे पुत्रशोक से भी अधिक दुखदायी है। हाँ, यदि आप किसी तरह भी रुक न सकते हों तो कम से कम और कुछ दिन तक यहाँ ठहरिए, ताकि मैं आपके दर्शन करके जीवन को शीतल कर लूँ।" श्रीचैतन्य का हृदय कुसुम से भी कोमल था, उन्होंने सार्वभौम की बात मानकर कुछ दिनों तक पुरी में और भी निवास किया और सार्वभौम के भवन में भिक्षा

ग्रहण की। यह समय सार्वभौम के साथ कृष्ण की चर्चा में बीता।

१०

जगन्नाथ देव के अनुग्रह और सबकी शुभ प्रार्थना को माथे पर धारण कर गौरसुन्दर दक्षिण की यात्रा के लिए तैयार हुए। जाते समय भट्टाचार्य ने निमाई से कहा—"गोदावरी के किनारे विद्यानगर में रामानन्द राय नामक एक सज्जन रहते हैं। ऐश्वर्य के बीच रहकर भी ऐसे सुपण्डित और भगवद्भक्त बहुत कम देखे जाते हैं। तुम उनसे ज़रूर मिलना।" नित्यानन्द प्रमुख कुछ शिष्य उनके साथ गये। यात्री लोग विशाल समुद्र के किनारे-किनारे चलने लगे। चलते-चलते सब लोग आलालनाथ नामक स्थान में पहुँचे। निमाई के रूप-लावण्य, तरुण यौवन में कठोर वैराग्य और भगवान् के प्रति उनकी अलौकिक प्रीति देख यहाँवाले दल बाँधकर आलालनाथ देव-मन्दिर के समीप आने लगे। गौर के हृदय में जो भगवत्प्रेम था उसने, तड़ित्प्रवाह की भाँति, सभी को उन्मत्त कर दिया। लोगों की भीड़ के बीच आकाश-भेदी हरि-ध्वनि होने लगी। हज़ारों मनुष्यों ने श्रीचैतन्य का पदानुसरण करके, उनके बतलाये हुए, वैष्णव मार्ग को ग्रहण किया। रात बीतने पर सबेरे गौरसुन्दर दक्षिण देश की यात्रा के लिए आलालनाथ से रवाना हुए। एक

सेवक के सिवा और सभी साथी यहाँ से पुरुषोत्तम पुरी को लौट आये ।

इधर चलते-चलते गौर कूर्म नामक स्थान में पहुँचे । यहाँ एक वैदिक ब्राह्मण रहते थे । ब्राह्मण देवता बड़े आदर से निमाई को अपने घर ले गये, और पत्नी, पुत्र तथा कन्या के साथ उनके चरणों की वन्दना की । गौरचन्द्र को देखने से ब्राह्मण देवता के मन में ऐसा भक्ति-भाव जाग्रत हो उठा कि वे घर-गृहस्थी छोड़कर संन्यास-आश्रम की दीक्षा के लिए तैयार हुए । किन्तु गौर ने रोककर कहा—"तुम घर में रह-कर ही कृष्ण नाम का जप किया करो ।" इस प्रदेश में वासु-देव नामक एक कोढ़ी ब्राह्मण रहता था । गौर ने उसके पास जाकर उसे प्रेम से आलिङ्गन किया । कहा जाता है कि उनके प्रेमालिङ्गन से वासुदेव का कोढ़ रोग जाता रहा । उसकी देह सुन्दर हो गई । गौर ने वासुदेव को कोढ़ से छुड़ाकर चलते समय कहा—"तुम सदा श्रीकृष्ण के नाम का कीर्त्तन किया करो और अन्यान्य लोगों के बीच उस नाम का प्रचार करो ।" प्राकृतिक शोभा और सौन्दर्य के बीच होकर हरि-गुण गाते-गाते श्रीकृष्ण-चैतन्य कई दिनों के पश्चात् गोदावरी के तीर पर उपस्थित हुए । गोदावरी-किनारे की रमणीक वनराजी और नदी का निर्मल जल देखने से उनके मन में वृन्दावन का भाव उदित हुआ । निर्मल जलवाली गोदावरी को उन्होंने यमुना, और उसके

किनारे के घने पत्तों से ढके हुए वृक्षों को वृन्दावन का वन समझा। एक रमणीय स्थान में बैठकर वे हरिनाम का कीर्तन कर ही रहे थे कि वहाँ एक व्यक्ति, बहुत लोगों से घिरा हुआ, पालकी पर सवार होकर आया। उसके साथ-साथ बाजे बजते जाते थे और वैदिक ब्राह्मण वेद-मन्त्र पढ़ते जाते थे। पालकी के सवार को देखते ही चैतन्यदेव ताड़ गये कि यही रामानन्द राय हैं। तो क्या सार्वभौम आचार्य ने इन्हीं की चर्चा की थी? इसके अनन्तर पालकी से उतर-कर उस व्यक्ति ने चैतन्य का परिचय पाया। परस्पर परि-चय हो चुकने पर दोनों के मन में हरि-प्रेम की तरङ्ग उठने लगी। अन्त में चैतन्य वहाँ कुछ दिन तक ठहरकर राय रामानन्द के साथ तत्त्व की बातचीत करते रहे।

यहाँ से भक्तचूड़ामणि गौरचन्द्र सिद्धवट नामक स्थान में पहुँचे। वहाँ वे एक ब्राह्मण के घर ठहरे। ब्राह्मण-देवता रामचन्द्र के भक्त थे। गौर का भक्तिभाव देखकर ये थोड़े ही समय में कृष्णानुरागी हो गये, और इनकी जिह्वा से कृष्ण नाम का उच्चारण होने लगा। इस धर्म-मत के परि-वर्त्तन का कारण पूछने पर उन्होंने गौर से कहा—तुमको देखते ही मेरे मन की दशा न-जाने कैसी हो गई कि मेरे मुँह से राम नाम के बदले कृष्ण नाम अपने आप निकलने लगा।

निमाई यहाँ से त्रिमन्दिर को गये। यहाँ पर अनेक शिष्यों के साथ रामगिरि नामक एक बौद्ध रहता था। निमाई

ने शास्त्रार्थ में इसे हराकर अपने पन्थ में कर लिया। इसके शिष्य भी कृष्ण के भक्त हो गये। यहाँ से कुछ आगे जाकर निमाई जब एक पेड़ की छाया में बैठ गये तब उन्हें मोहित करने के लिए एक स्थानीय ज़मींदार ने दो वाराङ्गनाओं को उनके समीप भेजा। दोनों वेश्याएँ गौर की पुण्य-प्रभा और अपूर्व भक्ति-भाव देखकर वहाँ से भाग गईं। अन्त में ज़मींदार ने उनके पास आकर उनके चरणों पर माथा रख दिया; और अन्त में सारी धन-दौलत छोड़कर वह उनका अनुयायी हो गया। अनेक स्थानों की यात्रा करते-कराते निमाई श्रीरङ्गजी में पहुँचे। वहाँ पर वेङ्कट भट्ट नामक एक ब्राह्मण के अनुरोध करने पर निमाई चार महीने तक उनके घर रहे। वेङ्कट भट्ट का पुत्र गोपाल भट्ट निमाई की रूप-माधुरी देख विमुग्ध होकर उनका बड़ा अनुरागी हो गया था। पिता का परलोक-गमन होने पर गोपाल ने श्रीचैतन्य के मार्ग को स्वीकार कर भक्तों की सङ्गति और हरि-गुण कीर्त्तन करने में जीवन बिता दिया।

अब निमाई जिजुरी गाँव में पहुँचे। वहाँ बहुत-सी वेश्याएँ थीं। उनके जीवन-क्रम को बदलने का निमाई ने उद्योग किया। उनकी बात सुनकर इन्दिराबाई नाम की एक स्त्री ने अपने कलङ्कित जीवन का उल्लेख करके आँसू बहाते-बहाते कहा—"प्रभो, अपनी चरण-रज देकर मेरा उद्धार कीजिए।" श्रीचैतन्य के जीवन के प्रभाव से इन्दिरा

का उद्धार हो गया। फिर उसने हरि-गुण गान करके जीवन बिता दिया। गौर ने चोरानन्दा वन में जाकर नारोजी नामक डाकू का उद्धार किया। डकैती का पेशा छोड़-छाड़-कर वह श्रीचैतन्य के भक्ति-मार्ग में आ गया और उनके साथ अनेक स्थानों की सैर करता हुआ बरौदा नगर में पहुँचा जहाँ ज्वर आ जाने के कारण, अपने उद्धार-कर्त्ता श्रीकृष्ण चैतन्य का दर्शन करते-करते और हरि-नाम का उच्चारण करते हुए, उसने शरीर छोड़ दिया।

नारोजी की मृत्यु होने पर चैतन्य योगा नाम के एक गाँव में पहुँचे। यहाँ पर एक परमा सुन्दरी वेश्या वारामुखी थी। बहुतेरे धनवानों के लड़के उसके रूप पर लट्टू होकर उसके हाथ से अपने जीवन को कलङ्कित करते थे। वारामुखी के ख़ासी सम्पत्ति थी, इसलिए वह नौकर-चाकरों के साथ बड़े आराम से रहती थी। श्रीचैतन्य उसी वेश्या के घर के समीप, एक पेड़ के नीचे, बहुतेरे लोगों के बीच में बैठे हुए हरि-नाम का कीर्त्तन कर रहे थे कि बालाजी नामक एक दुष्ट आदमी वहाँ आकर श्रीचैतन्य के साथ बुरा व्यवहार करने को उद्यत हो गया। उसकी यह करतूत देख बहुत-से लोग नाराज़ होकर उसे पीटने को तैयार हुए, तब गौर ने उन सबको रोककर बालाजी के कान में एक गुप्त मन्त्र फूँक दिया। इससे पल भर में वह कुछ का कुछ हो गया। वह चैतन्य के चरण पकड़कर रोने लगा। सुन्दरी वारामुखी अपने घर के

झरोखे से यह सब हाल देखकर चकरा गई, और उसी दम श्रीचैतन्य के समीप आकर बोली—"मेरा उद्धार करो, तुम तो साक्षात् नारायण हो।" श्रीचैतन्य ने उससे कहा "तू संन्यासिनी होकर हरि का भजन किया कर।" उसने तत्काल सिर मुँड़ाकर अपनी सम्पत्ति दीन-दुखियों को वितरण कर दी। फिर वह प्रेम से हरिनाम का जप और कीर्तन करने लगी।

११

दक्षिण देश की यात्रा करके कुछ दिनों में गौरचन्द्र जगन्नाथपुरी को लौट आये। उनके आजाने का समाचार सर्वत्र फैल गया। उड़ोसा के राजा प्रतापरुद्र, श्रीचैतन्य के शुभागमन की ख़बर पाकर, उनके दर्शनों के लिए व्याकुल हो गये। चैतन्य ने जब राजा से मिलना स्वीकार न किया तब राजा ने सार्वभौम से कहा—"यदि वे मुझे दर्शन न देंगे तो मैं प्राण छोड़ दूँगा।" अन्त में राजा व्याकुल हो, गुप्त वेश धारण कर, भागवत के एक श्लोक को पढ़ते हुए श्रीचैतन्य के चरणों पर गिर पड़े। राजा प्रतापरुद्र उनके अनुगामी भक्त हो गये।

हर साल, रथयात्रा के समय, गौड़ देश से श्रीकृष्ण-चैतन्य के अनेक शिष्य पुरी आया करते और चार महीने तक वहीं रहकर नाम-सङ्कीर्तन तथा हरि-चर्चा किया करते थे।

श्रीचैतन्य ने जब शिष्यों के साथ जगन्नाथजी के मन्दिर में सङ्की-
गा तब कीर्तन के मधुर शब्द से उड़िया
लोग दौड़कर जगन्नाथजी

भाग]

के दर्शन

तब से वह भक्तिमती वैष्णवी कहलाने
प्रभाव से ऐसी विचित्र घटना होते देख सभी लोग उनके
गुणों का बखान करने लगे।

अन्त में दुर्वृत्त रामचन्द्र ख़ाँ को अनेक क्लेश सहने पड़े।
वह नवाब को क़ायदे के अनुसार लगान न देता था इसलिए
नवाब के कर्मचारियों ने आकर उसके घर के बाहरी हिस्से
में ऐसी चीज़ें खाईं जो कि हिन्दुओं के लिए अखाद्य हैं। वे
लोग उसे बाल-बच्चों समेत गिरफ़्तार करके और उसके घर
द्वार तथा सम्पत्ति को लूटकर ले गये।

वार-वनिता का उद्धार करके हरिदास शान्तिपुर में आ
उस समय वहाँ अद्वैताचार्य रहते थे। वहाँ गे। अभीष्ट
नों में गये।
जाने पर अद्वैत ने उन्हें आनन्द के साथ
सम्मिलन होने प्रसिद्ध वेदान्ती
प्रकाशानन्द स्वामी के साथ, पहु पर, उनका
शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में श्रीकृष्ण-चैतन्य ही विजयी
हुए। इससे प्रकाशानन्द अद्वैत मत को छोड़कर भक्तिमार्ग
के अनुगामी हो गये। यहाँ पर श्रीचैतन्य ने सुबुद्धि राय को
हरिनाम ग्रहण करने की सम्मति देकर उनकी रक्षा का सुभीता
कर दिया। गौड़ देश के अधिपति ने किसी काम से असन्तुष्ट

होकर सुबुद्धि राय को जाति-भ्रष्ट करा दिया था। जब उन्होंने अपनी शुद्धि के लिए ब्राह्मणों से व्यवस्था माँगी तब उन्हें 'विष-पान" करने का प्रायश्चित्त बताया गया। ऐसे प्रायश्चित्त से बचकर कोई और व्यवस्था लेने के लिए सुबुद्धि राय काशी के पण्डितों के पास आये। वहाँ उनके दुःख से दुखी होकर श्रीचैतन्य ने कहा—"तुम श्रीहरि का भजन करो, इससे तुम्हारे सभी दोष दूर हो जायँगे।" सुबुद्धि ने इसी व्यवस्था को माना और हरिगुण-कीर्तन करते हुए अपना जीवन काशी में ही बिता दिया।

गौर अब श्रीकृष्ण के लीलाक्षेत्र श्रीवृन्दावन में पहुँचे। यहाँ आने से उनका भावोच्छ्वास और भी बढ़ गया। यहाँ पर बहुत-से नर-नारियों ने उनके पन्थ का आश्रय लिया। व्रजवासियों ने उन्हें श्रीकृष्ण का अवतार मान लिया। श्रीकृष्ण-चैतन्य के आगमन से वृन्दावन कुछ का कुछ हो गया—वृन्दावन का लुप्त गौरव पुनर्जीवित हो गया।

वृन्दावन-विहार के अनन्तर श्रीचैतन्य पुरी को लौट गये। संन्यास लेने पर छः वर्ष तक वे अनेक स्थानों में घूमते-फिरते रहे। किन्तु इस समय से लेकर अठारह वर्ष तक वे पुरी में ही रहे। इन अठारह वर्षों में उनके भक्त प्रतिवर्ष रथयात्रा के समय गौड़ देश से, बहुत बड़ी संख्या में, पुरी आया करते और प्रभु के साथ चार महीने तक वहीं रहते थे। कुछ ऐसे भक्त भी थे जो सदा उनके सत्सङ्ग में रहने और उनका कथा-

मृत पान करने के लिए पुरी में ही बने रहते तथा अपना अहो-भाग्य समझते थे। राजा प्रतापरुद्र और सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभृति, उनके अनुगत शिष्यों की भाँति, उनकी सेवा करने में आनन्द मनाते और उनकी सङ्गति से परित्राण के मार्ग का निष्कण्टक होना समझते थे। इन अठारह वर्षों के बीच कितने ही धनी और ज्ञानी लोग उनके सत्सङ्ग में रहकर भक्ति-मार्ग पर आ गये। उन्होंने अपने जीवन को मधुमय बना लिया। पुरी में रहते-रहते गौर का भक्ति-भाव गम्भीर से गम्भीरतर होने लगा, कृष्ण-प्रेम का उच्छ्वास धीरे-धीरे बढ़ने लगा। एक दिन भाव के उच्छ्वास में ही वे समुद्र में कूद पड़े। मल्लाहों ने उन्हें वहाँ से बाहर निकाला। कृष्ण-प्रेम में गौर उन्मत्त हो गये। इस दशा में वे अकेले रहते और हृदय-नाथ के सहवास का सुख प्राप्त करने के लिए अत्यन्त प्रयत्न करते थे। उनके शिष्य गदाधर आजन्म-साधु और चिर-कुमार थे। वे यज्ञेश्वर टोले में, समुद्र-किनारे, एक मनोहर बाग़ में रहते थे। चैतन्य उक्त स्थान में जाकर नाम-कीर्तन और गदाधर के मुँह से भागवत का पाठ सुनकर विशेष रूप से प्रसन्न होते थे। उनकी आज्ञा से गदाधर ने बग़ीचे में गोपी-नाथजी का मन्दिर बनवाया। सुना गया है कि प्रभु एक दिन उक्त मन्दिर में गये; उस समय गदाधर एक पेड़ के नीचे बैठे भागवत पढ़ रहे थे। देर तक प्रभु को बाहर न आते देख गदाधर का मन चञ्चल हो उठा। मन्दिर में

घुसते ही उनका मनोरथ विफल हो गया। वे समझ गये कि प्रभु ने अपनी लीला संवरण कर ली। गौर के दर्शन न होने से वे बेचैन हो गये; रोते-रोते व्याकुल हो गये।

वैष्णवों का कहना है कि "प्रभु ने गोपीनाथ की देह में अपनी देह को मिलाकर मर्त्यलीला समाप्त कर दी।" १४५५ शकाब्द के माघ महीने की पौर्णिमा को ४८ वर्ष की अवस्था में श्रीकृष्ण-चैतन्य के तिरोभाव का दिन निर्णीत हुआ है।

नित्यानन्द

१

श्रीगौराङ्ग देव के नाम के साथ नित्यानन्द का नाम इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि दोनों को एकात्मा तक कहा जा सकता है। "गौर-निताई" एक साथ ही बहुतों की जिह्वा से उच्चरित होते हैं। वीरभूमि ज़िले के एकचाका गाँव में नित्यानन्द का जन्म हुआ था। एकचाका गाँव किसी समय समृद्धिशाली था। वहाँ संस्कृत-ग्रन्थों का पठन-पाठन विशेष रूप से हुआ करता था। नित्यानन्द के पिता का नाम हाड़ाई ओझा और माता का पद्मावती था। ये राढ़ी श्रेणी के ब्राह्मण थे। ओझा इनकी उपाधि थी। हाड़ाई ओझा को लोग हाड़ाई पण्डित कहा करते थे। धर्मनिष्ठा के लिए गाँव भर में ओझा परिवार विख्यात था।

गाँव से कुछ अन्तर पर मौड़ेश्वर नामक एक देवता थे। हाड़ाई प्रतिदिन वहाँ जाकर बड़े भक्ति-भाव से उनकी पूजा करते थे। हाड़ाई और पद्मावती दोनों ही विष्णु के भक्त थे। ओझा-परिवार के पूर्वपुरुष पुरोहिती करते थे। हाड़ाई भी उसी पेशे को करके आनन्द से अपनी गुज़र किया करते

थे। घर में किसी चीज़ की कमी न रहने पर भी उन्हें सुख न था। उनके कुछ बालक, जन्म लेते ही, मर गये थे। इस प्रकार कुछ समय बीतने पर एक बार पद्मावती ने स्वप्न देखा कि एक महापुरुष उनके आगे आकर कहते हैं—"तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारे गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा। वह पापियों का उद्धार करेगा और नर-नारियों को मुक्ति का मार्ग दिखलावेगा।" इस स्वप्न को देखने पर धर्म-परायणा पद्मावती की नींद टूटी। उन्होंने स्वप्न का वृत्तान्त पति से कह सुनाया। नर-नारियों का भला करने के लिए सन्तान रूप में एक महापुरुष जन्म ग्रहण करेंगे, यह सोचकर उक्त पति-पत्नी के प्राण आनन्द से उत्फुल्ल हो गये। पद्मावती गर्भिणी हुईं और शके १३९५ में, माघ महीने के शुक्ल पक्ष में, हाड़ाई पण्डित के घर को प्रकाशित करते हुए एक बालक ने जन्म लिया। माता-पिता को इससे जो आनन्द हुआ उसका क्या कहना है। इस नवीन बालक के शरीर की गठन और रूप-लावण्य देखकर पड़ोसी तक मुग्ध हो गये। सब लोगों की शुभ कामना के बीच यह सुन्दर बालक बढ़ने लगा। पाँचवाँ वर्ष समाप्त होने पर हाड़ाई पण्डित ने बालक का विद्यारम्भ संस्कार कराया। इस उपलक्ष्य में बच्चे का नाम नित्यानन्द रक्खा गया। नित्यानन्द की शिक्षा आरम्भ हो गई। उनकी प्रखर बुद्धि देखने से सभी को विस्मय हुआ। थोड़े ही समय में नित्यानन्द की बहुत कुछ उन्नति हो गई।

बालक नित्यानन्द अन्यान्य बालकों के साथ खेलते-कूदते रहते थे। किन्तु खेल-कूद में भी जब अन्यान्य बालक हास्य और आमोद करते हुए घूमते थे और प्रायः खेल-कूद में ही मग्न रहते थे तब हाड़ाई पण्डित के पुत्र ने गम्भीर भाव धारण कर लिया। भविष्यत् का कोई महान् चित्र उनके हृदय-पट पर अङ्कित होकर उन्हें उसी के चिन्तन में विमुग्ध कर रखता था। निताई के पिताजी, पुत्र के इस भाव को देख, अत्यन्त चिन्तित हो गये। क्षण भर के लिए जिसका मुँह देखे बिना उनका चित्त बेचैन हो जाता था वही पुत्र यदि इस भाव के स्रोत में पड़कर, दुनियादारी से विमुख होकर, घर-द्वार छोड़ बैठे तो वे किस प्रकार जीवित रहेंगे?—इस चिन्ता ने उन्हें व्याकुल कर दिया। बचपन में ही निताई के धर्मभाव का परिचय मिलता था। बचपन में ही श्रीकृष्ण के लीलामय जीवन का आभास उनके मन में प्रतिभात हो गया था। बालकों के साथ वे उसी लीला का अभिनय करते थे।

यथासमय हाड़ाई पण्डित ने अपने बेटे के जनेऊ का प्रबन्ध किया। इसके उपलक्ष्य में बहुत लोगों को न्यौता दिया गया। बड़ी धूमधाम के साथ जनेऊ हो गया।

हाड़ाई पण्डित ने अच्छे गुरु के पास बेटे को विद्या पढ़ने भेजा। थोड़े ही समय में निताई व्याकरण, साहित्य और अन्यान्य विषयों में व्युत्पन्न हो गये। इससे गुरु को बड़ी

प्रसन्नता हुई। होनी ही चाहिए, क्योंकि प्रतिभा का सम्मान सब लोग किया करते हैं। नित्यानन्द को प्रतिभा के कारण पाठशाला से 'तर्क-चञ्चु' उपाधि प्राप्त हुई। चारों ओर उनके पाण्डित्य का यश फैल गया।

किन्तु पाण्डित्य प्राप्त करना कुछ उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य न था। उन्होंने तो एक और ही उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए बङ्गाल में जन्म लिया था। प्रतिभा और पाण्डित्य के साथ-साथ उनके जीवन में एक और भाव प्रकट होने लगा। वह भाव था दुनियादारी से उदासीन रहना। युवावस्था का आरम्भ होने से पहले, जिस समय सांसारिक सुख की लालसा हृदय में उत्पन्न होती है उस समय, उनके हृदय में संसार के प्रति वैराग्य का सञ्चार होने लगा। महापुरुषों के चिर-वाञ्छित एकान्त का सेवन करने के लिए वे समय-समय पर जन-कोलाहल-शून्य स्थान में जा बैठते थे।

२

देखते-देखते एक घटना हुई। एक दिन एक संन्यासीजी हाड़ाई ओझा के घर आकर ठहरे। ओझाजी बड़े आदर से अपने घर उन्हें ठहराकर उनकी सेवा करने लगे। संन्यासीजी बहुत ही सुपुरुष देख पड़ते थे और उनकी भगवन्निष्ठा का भी यथेष्ट परिचय मिला। हाड़ाई पण्डित स्वयं भक्त और प्रेमी थे। आगन्तुक संन्यासी ने उनके धर्मभाव

की थाह लेकर उनके साथ श्रीकृष्ण के मधुर प्रसङ्ग में रात बिता दी। इससे दोनों को ही सन्तोष हुआ। नित्यानन्द के अङ्गों की गठन और रूप-लावण्य देखते ही संन्यासीजी विमोहित हो गये थे। बालक नित्यानन्द को देखकर उनके मन में एक आकांक्षा उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा कि यदि इस बालक को अपना साथी बना सकें तो हमें तो अत्यानन्द होगा ही, साथ ही इस बालक का भी बड़ा उपकार होगा। संन्यासी ने समझ लिया कि ओझा का यह पुत्र साधारण लड़का नहीं है—इसने तो किसी बहुत बड़े काम के करने को जन्म लिया है।

संन्यासीजी अपने मन की बात को गुप्त न रख सके। उन्होंने ओझाजी से अपने मन की बात कह दी। संन्यासी की प्रार्थना सुनने से उनके माथे पर वज्र सा गिर पड़ा। जिस पुत्र को पल भर देखे बिना उनके प्राण व्याकुल हो जाते थे उसी को अपने पास से सदा के लिए दूर करके वे संसार में किस प्रकार जीवित रहेंगे?—इस चिन्ता के कारण वे छटपटाने लगे।

यद्यपि ओझाजी बहुत ही व्याकुल हो रहे थे फिर भी उन्होंने संन्यासी की प्रार्थना को एकदम अस्वीकार नहीं कर दिया। संन्यासी तो एक प्रकार से देवता है; ओझाजी को दानी कर्ण प्रभृति की कथा विशेष रूप से ज्ञात थी। यद्यपि वे स्वयं बेचैन थे फिर भी उन्होंने अपनी पत्नी से नवागत

संन्यासी की अभूतपूर्व प्रार्थना की चर्चा की। पद्मावती बड़ी धर्मात्मा थी, वह भी अपने स्वामी की भाँति धर्म-भीरु थी। पति की बात सुनकर उसने कहा—"तुमसे भला मैं क्या कहूँ। जो तुम्हारी इच्छा हो उसके मैं प्रतिकूल नहीं हूँ। यदि संन्यासी की प्रार्थना पूर्ण न की जायगी तो हमारा अमङ्गल होगा, इसलिए तुम जो ठीक समझो, करो।" पत्नी की यह सलाह सुनकर हाड़ाई ओझा ने पुत्र को संन्यासी के अधीन कर देना ही ठीक समझा, और अपनी आँखों के तारे प्रेम के धन-स्वरूप पुत्र को संन्यासी के सिपुर्द कर दिया। संन्यासी की आकाङ्क्षा पूर्ण हुई। वे निताई को लेकर चले गये।

पुत्र को विदा करने पर हाड़ाई ओझा और उनकी पत्नी का हृदय फटने लगा। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। सन्तान-वियोग की यन्त्रणा उनको यहाँ तक हुई कि तीन महीने के लगभग वे प्रायः खाना-पीना छोड़कर खटिया पर पड़े रहे। धीरे-धीरे उनके हृदय की ज्वाला कुछ घट गई सही किन्तु वह बिलकुल शान्त न हुई। पुत्र का प्रेमानल जब उनके मन में उदित होता था तब वह ज्वाला उनके हृदय को जलाये डालती थी।

इधर निताई के साथ संन्यासीजी देश-देशान्तर में बिचरने लगे। नित्यानन्द ने भारत के प्रायः सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों को देखा था। जब वे वृन्दावन पहुँचे तब स्वाभाविक रूप से श्रीकृष्ण की लीला का स्मरण करके उनका हृदय

भाव-रस में उच्छ्‌वसित हो उठा। हस्तिनापुर में पहुँचने पर पाण्डवों की पूर्व कीर्त्ति का स्मरण होने से भाव में गद्‌गद होकर वे आँसू बहाने लगे। श्रीरामचन्द्र के जन्मस्थान अयोध्या में पहुँचने पर उनका भावावेग उथल पड़ा। इसके पश्चात् जिन-जिन वनों में श्रीरामचन्द्रजी ने, वनवास के समय, भ्रमण किया था उनमें घूमते-घामते हुए अनेक बार भावावेश में आने से निताई अचेत हो जाते थे। इस प्रकार अनेक तीर्थ, वन, उपवन, नदी और समुद्रों का दर्शन करते हुए वे आनन्द से विचरने लगे। अपने हृदय में और प्रकृति के सौन्दर्य के बीच श्रीकृष्ण की मोहन-मूर्त्ति के दर्शन करके वे भाव में मग्न होने लगे।

एक भक्त के साथ अन्य भक्त के प्राणों का आकर्षण रहता है। नित्यानन्दजी को भ्रमण करते-कराते वैष्णवाचार्य परम-भक्त माधवेन्द्र पुरी के दर्शन हुए। माधवेन्द्र पुरी ने उन्हें देखते ही पहचान लिया और उनका परिचय पाकर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। समुद्र की दो तरंगें दो दिशाओं से आकर जिस प्रकार एक जगह टकराकर ऊँची हो उठती हैं उसी प्रकार दोनों हृदयों की भाव-तरंगें पारस्परिक आघात-प्रतिघात से उच्छ्‌वसित हो उठीं। भावावेश होने से दोनों ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। माधवेन्द्र पुरी के शिष्य ईश्वर पुरी तथा उनके अन्यान्य शिष्य उस दशा को देखकर रोने लगे।

अन्त में चेत होने पर वे लोग जङ्गल में होते हुए आगे बढ़े। दोनों ही भाव में गद्गद थे, दोनों के हृदय से प्रेम की धारा बहने लगी। दोनों की देह में कम्प और पुलक आदि भक्ति के लक्षण प्रकट होने लगे। चलते-चलते नित्यानन्द ने कहा—"स्वामीजी, आज आपके दर्शन होने से मुझे तीर्थयात्रा का फल मिल गया।" यह सुनकर माधवेन्द्र पुरी स्थिर न रह सके। वे निताई को हृदय से लगाकर मुग्ध हो गये और उनके मुँह की ओर देखने लगे। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे।

इस प्रकार उन्होंने कुछ समय तक वनों में भ्रमण करके कृष्ण की चर्चा में दिन और रातें बिताईं। इसके पश्चात् नित्यानन्दजी तो सेतुबन्ध और माधवेन्द्र पुरी सरयू के दर्शन करने गये। सेतुबन्ध के दर्शन करके नित्यानन्दजी धनुतीर्थ आदि की यात्रा करते हुए श्रीजगन्नाथ पुरी में आये और दूर से ही जगन्नाथजी के मन्दिर की ध्वजा का दर्शन करके मूर्च्छित हो गये। वे पुरी में कुछ समय तक समुद्र के जल में स्नान और जगन्नाथजी के दर्शन करके आनन्द से रहे। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण की लीला-भूमि वृन्दावन में पहुँचे। यहाँ आने पर उनका भक्ति-भाव और भी बढ़ने लगा। अनुराग के आवेश में वे प्रायः भूख और नींद को भूलकर नामकीर्तन और नाम का ध्यान ही किया करते थे। यदि बिना ही माँगे कोई कुछ दे देता तो वे खा लेते नहीं तो भूखे ही रह जाते थे।

साधुओं की आध्यात्मिक दृष्टि खुल जाती है। नित्यानन्द ने माने मानसिक दृष्टि से देखा कि नवद्वीप में गौरचन्द्र नाम-सङ्कीर्तन की प्रेम-तरङ्ग में सभी को प्रवाहित कर रहे हैं। इस कारण व्रजभूमि में वे स्थिर न रह सके; वे उसी ओर को चल पड़े।

३

गौर के दर्शन करने की लालसा से निताई नवद्वीप को चले। वहाँ पहुँचने पर श्रीकृष्ण के दर्शन करके कृतार्थ होंगे, इस आनन्द से उनके प्राण नाचने लगे। रास्ते में वे कभी तो हँसते और कभी रोते जाते थे। भाव के आवेश में उनके प्राण मस्त थे। अन्त में नवद्वीप में पहुँचने पर वे नन्दन आचार्य के घर ठहरे। निताई का अवधूत वेष, लम्बा तेजस्वी शरीर, आजानुलम्बित भुजाएँ, पद्म जैसे नेत्र और गोरा रङ्ग देखकर नन्दन आचार्य के मन में संन्यासी के प्रति भक्ति उपजी। उन्होंने बड़े आनन्द के साथ निताई को अपने घर ठहराया।

नवद्वीप में नित्यानन्द के पहुँचने से चार दिन पहले गौरचन्द्र ने अपने शिष्यों से कह दिया था—"भाइयो, दो-तीन दिन में नवद्वीप में एक महापुरुष आनेवाले हैं।" जिस दिन नित्यानन्द नवद्वीप में पहुँचे उसी दिन सबेरे, शिष्यों के आने पर, गौर ने कहा—देखो, रात को मैंने एक सुन्दर

स्वप्न देखा है। ताल-ध्वज रथ में बैठकर एक महापुरुष मेरे द्वार पर आये हैं। वे ख़ासे लम्ब-तड़ङ्ग हैं, उनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी हैं, हलधर की जैसी मूर्त्ति है, कानों में कुण्डल हैं और पीताम्बर पहने हैं। इन विचित्र मनोहर पुरुष ने मुझसे पूछा—'क्या यही निमाई का घर है?' इस प्रकार दस बारह बार पूछने पर मैंने उक्त अवधूत के रूप-लावण्य पर रीझ-कर पूछा—'आप कौन से महापुरुष हैं?' उन्होंने मुसकुराकर कहा—'भाई, कल तुमसे भेट होगी।' उनकी यह बात सुनने से मेरे आनन्द का वारापार न रहा।

शिष्यों को अपने स्वप्न का वृत्तान्त सुनाते-सुनाते वे भाव में अपने आप को भूल गये; और ज़ोर-ज़ोर से कहने लगे—"मद ले आओ।" श्रीवास पण्डित ने कहा—स्वामीजी, आप जिस मद को माँगते हैं वह तो आपके ही पास है। जिसे आप देते हैं उसी को वह प्राप्त होता है।

गौर का यह भावोच्छ्वास देखने से सभी को विस्मय हुआ। सभी सोचने लगे "अवश्य ही इसका कुछ गूढ़ कारण है।" थोड़ी देर में गौर ने सचेत होकर कहा—"आज नवद्वीप में ज़रूर कोई महापुरुष पधारे हैं। तुम लोग उनका पता लगाओ।" पता लगाने के लिए श्रीवास पण्डित और हरिदास बस्ती में गये, किन्तु बहुत देर तक ढूँढ़ने पर भी कहीं कुछ पता न पाकर लौट आये। तब गौर ने कहा—"चलो, हम सभी चलें, वे नन्दन आचार्य के घर ठहरे हुए

हैं।" प्रभु की बात सुनकर सभी प्रसन्नता से श्रीकृष्ण की जय-जय करते हुए उनके साथ नन्दन आचार्य के घर की ओर गये।

नन्दन आचार्य के घर जाकर देखा कि एक दिव्य कान्ति-युक्त पुरुष घर को प्रकाशित करते हुए बैठे हैं। उनके अङ्गों की कान्ति और मुख की अपूर्व ज्योति देखकर सभी सन्नाटे में आकर एक ओर खड़े हो रहे। अवधूत नित्यानन्द के समीप जाकर गौरसुन्दर उनके चरणों पर प्रणत हुए। निताई ने विश्वम्भर का चेहरा देखा—देखा कि दिव्य लावण्य-युक्त पुरुष है—कच्चे सोने का जैसा उनका रङ्ग है—मुख-मण्डल से एक अपूर्व ज्योति प्रकट हो रही है। गले में सुगन्धित पुष्पों की माला पड़ी है—प्रशस्त माथे में चन्दन लगा हुआ है और कन्धे के ऊपर होकर शुभ्र पतला जनेऊ सुशोभित हो रहा है। निताई ने दुबारा भली भाँति पण्डित के मुँह की ओर देखा। दृष्टि से दृष्टि मिल गई। परस्पर एक दूसरे के मुँह की ओर देखते रहे। कुछ बातचीत न हुई। मानो दोनों भाइयों के बीच भविष्यत् का कार्य मौन भाषा में ही निर्द्धारित हो गया। और सब लोग चुपचाप दो प्रधान भक्तों की नीरवता को देखने लगे। इस प्रकार कुछ समय बीतने पर गौरसुन्दर ने श्रीवास पण्डित को भागवत का एक श्लोक पढ़ने का इशारा किया। उन्होंने दशम स्कन्ध का यह श्लोक पढ़ा—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
विभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दैः
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥

श्रीकृष्ण मोरपङ्ख की बनी चोटी पहने हैं, दोनों कानों में कनैर के फूल पहने हैं, सुवर्ण-तुल्य कपिश अथवा नील-पीत-मिश्रित वर्ण का वस्त्र और पँचमेल फूलों की गुँथी हुई वैजयन्ती माला धारण किये हैं। नटवर की भाँति अपने अङ्गों की निरन्तर नई-नई शोभा के आविर्भाव से समृद्धि करते-करते और अधरामृत से वेणु के छिद्रों को परिपूर्ण करते हुए वृन्दावन में—जहाँ कि उनके असाधारण पद-चिह्न सभी को आनन्द प्रदान करते हैं—पहुँचे। इधर गोप लोग उनका यशो-गान करने लगे।

श्रीवास पण्डित ने ज्योंही भागवत का उक्त सरस श्लोक पढ़ा त्योंही निताई भाव में अचेत हो गये। गौर ने कहा—"श्रीवास, फिर उसी श्लोक को पढ़ो।" श्रीवास भी उत्साह के साथ बार-बार उक्त मधुर श्लोक को पढ़ने लगे।

कुछ देर में सचेत होकर निताई रोने लगे और 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहकर बीच-बीच में नृत्य करने लगे। नाचते-नाचते बीच-बीच में वे पृथ्वी में गिरकर लोटने भी लगे। इस भावोन्मत्त अवस्था में वे फिर प्रेमपूर्ण विश्वम्भर के मुँह की ओर देखने लगे। उस समय नदी में हवा लगने से उठी हुई लहर

की भाँति उनकी भाव-तरङ्ग ने और भी उमड़कर उन्हें पागल सा बना दिया। वे हुङ्कार, चीत्कार और नृत्य करने लगे। भगवत्प्रेम में मनुष्य किस प्रकार उन्मत्त प्राय हो सकता है, इसको देखकर वैष्णव लोग कठपुतली की भाँति रह गये। उस उच्छ्वास को किसी तरह शान्त न होते देख गौरचन्द्र ने उन्हें अपनी बाँहों में भर लिया। दोनों महापुरुषों के नेत्रों से प्रेमधारा बहने लगी।

नन्दन आचार्य के घर प्रेम की सी हाट लग गई। वहाँ भगवत्प्रेम की तरङ्ग उठने लगी। रामायण में वर्णित राम-लक्ष्मण के प्रेम की छवि मानो गौर और निताई के बीच प्रकट होने लगी। बङ्गाल में जो भक्ति की गङ्गा और प्रेम की धारा बहेगी, उसी की सूचना आरम्भ हुई।

भक्त ही भक्त को पहचानते हैं, और भक्त ही भक्त की भक्ति कर सकते हैं। गौर ने नित्यानन्द से कहा—"प्रभो, मैंने तुममें भक्ति के चार लक्षण देखे। कम्प, अश्रु, गर्जन और हुङ्कार; यही तो भक्ति के लक्षण हैं—यही तो वेद का सार है। तुम मनुष्य नहीं—तुम तो साक्षात् देवता के रूप में धराधाम पर अवतीर्ण हुए हो। तुम्हारे दर्शन होते ही आज मेरे प्राणों में श्रीकृष्ण का मधुर भाव जाग्रत हो रहा है। महाभागवत के चरणों के दर्शन करने से आज मेरा जीवन धन्य हो गया!" इस प्रकार थोड़ी देर तक वे आविष्ट चित्त से आँखों में आँसू भरकर नित्यानन्द की स्तुति करने लगे।

इसके पश्चात् गौरचन्द्र ने पूछा—"प्रभो, क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यहाँ पर आप कहाँ से पधारे हैं ?" निताई बालक की भाँति सरल थे। उन्होंने कहा—स्वामीजी, मैंने बचपन से भारत के अनेक तीर्थों के दर्शन किये हैं। मैं वृन्दा-वनविहारी श्रीकृष्ण के लीलाक्षेत्र में भी रहा हूँ किन्तु मुझे वृन्दावनविहारी के दर्शन नहीं हुए ! इस कारण व्याकुल होकर मैंने सबसे पूछा—'तुम बतला सकते हो, श्रीकृष्ण के दर्शन कहाँ मिलेंगे ?' अपने प्रश्न का ठीक उत्तर मुझे पहले-पहल नहीं मिला; अन्त में सुना कि नवद्वीप में मेरे लीलामय श्रीकृष्ण गौर-रूप में अवतीर्ण हुए हैं, और हरि-नाम-सङ्कीर्तन में लोगों को मतवाला बना रहे हैं। बस, फिर मैं ठहर न सका। तुम्हारे दर्शन करने के लिए वृन्दावन से दौड़ा आ रहा हूँ।

निताई ने बड़े विनीत भाव से नवद्वीप में अपने आने का कारण बतला दिया। बातें करते-करते आनन्द के मारे उनकी आँखों से इतने आँसू बहे कि उनका वक्षःस्थल भीगने लगा; शरीर और मन पुलकित हो गया। भगवद्भक्त हुए बिना मनुष्य क्या इतना विनम्र हो सकता है ?

नित्यानन्द की बातें सुनकर गौरचन्द्र ने परम पुलकित होते हुए कहा—"तुम्हारे आगमन से हम सभी कृतार्थ हैं।" इस प्रकार उन दोनों की बातचीत से सभी भक्त वैष्णव विस्मित होकर परस्पर उन दोनों व्यक्तियों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार

की बातें करने लगे। मुरारि गुप्त ने मुसकुराकर गौर और निताई को लक्ष्य करके कहा—"तुम्हारे भाव को हम लोग बिलकुल ही नहीं समझ सके।" श्रीवास पण्डित ने कहा—"भला हम क्या समझेंगे, एक प्रकार से माधव और शङ्कर एक दूसरे की पूजा कर रहे हैं।" गदाधर पण्डित ने कहा—"राम और लक्ष्मण की सी जोड़ी मिल गई।" किसी ने कहा "श्रीकृष्ण और बलराम," किसी ने कहा "श्रीकृष्ण और अर्जुन" आ मिले हैं। इसी प्रकार जो जिसके जी में आया वह उसी रूप से अपने हृदय के भाव को प्रकट करने लगा। शुभ मुहूर्त्त में गौर और नित्यानन्द का मिलन हुआ; बङ्गाल में भक्ति-गङ्गा के प्रवाहित होने का आरम्भ हो गया।

श्रीवास पण्डित के घर ही नित्यानन्द के ठहराने का प्रबन्ध हुआ।

एक दिन गौरसुन्दर ने निताई से कहा—"श्रीपाद, कल पौर्णिमा—व्यासपूजा का दिन—है। तो पूजा कहाँ होगी?" नित्यानन्दजी गौर का हाथ पकड़कर श्रीवास पण्डित के पास लाये और मुसकुराकर बोले—"विश्वम्भर, इसी ब्राह्मण के घर व्यास-पूजा होगी।" गौर ने हँसकर कहा—"पण्डितजी, तुम्हीं पर सब भार रहा।" श्रीवास ने कहा—"यह भार कुछ भी नहीं है। पूजा की सब सामग्री घर में मौजूद है। सिर्फ़ पोथी ही माँग लानी है, बस।" श्रीवास की बात सुनकर वैष्णव लोगों ने उच्च स्वर से हरि-ध्वनि की। गौर ने

कहा—"चलो, अब श्रीवास पण्डित के ही घर चलें।" प्रभु की इच्छा से सब लोग श्रीवास पण्डित के घर गये। भीतर पहुँच जाने पर बाहर का दरवाज़ा बन्द कर दिया गया। गौरचन्द्र की आज्ञा पाकर भक्तों ने बड़ी उमङ्ग के साथ कीर्तन आरम्भ कर दिया। गौर और निताई को बीच में करके भक्त लोग कीर्तन करने लगे। कीर्तन का शब्द माना चारों ओर प्रतिध्वनित होने लगा। गौर और नित्यानन्द नृत्य करते-करते बीच-बीच में एक-दूसरे को गले लगाने लगे और कभी एक दूसरे के पैर छूने की भी चेष्टा करने लगे। दोनों अचेत होकर पृथ्वी में लोटने लगे। और गौर 'बोलो' 'बोलो' कहकर ज़ोर से हुङ्कार-शब्द करने लगे।

इस प्रकार सङ्कीर्तन की तरङ्ग उठने लगी। किन्तु इसके साथ-साथ नित्यानन्द की भाव-तरङ्ग और भी उत्थित होकर एक तरह से उन्हें पागल बनाने लगी; बाहरी ज्ञान न रहने से वे अधीर, अस्थिर और चञ्चल हो गये। कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं और कभी लोटने लगते हैं। भाव के आवेग में उनकी कमर से धोती खुल-खुल पड़ती है। साथ-साथ दण्ड-कमण्डलु भी लोटने लगा। निताई अपने जीवन-द्वारा प्रकट करने लगे कि भक्त सरल बालक की तरह हो सकते हैं।

निताईसुन्दर बहुत ही चञ्चल हो गये। वे अब पकड़कर शान्त नहीं किये जा सकते। गौरसुन्दर ने अधीर नित्यानन्द को अपने हृदय से लगा लिया। उन्होंने कहा—

"नित्यानन्द, धैर्य धारण करो, कल व्यास-पूजा होगी।" गौर के कोमल हाथ का स्पर्श होने से नित्यानन्द का प्रेमोन्माद शान्त हो गया। श्रीवास के घर छोटा-मोटा उत्सव सा हो गया। गौर और अन्यान्य भक्त अपने-अपने घर चले गये। निताई श्रीवास के ही घर रह गये।

४

कभी-कभी भक्तों के कार्य समझ में नहीं आते। रात को उस दिन श्रीवास के घर निताई लेटे हुए थे कि उनके मन में न-जाने किस भाव का उदय हुआ जिससे हुङ्कार करके उन्होंने अपने दण्ड-कमण्डलु को तोड़-फोड़ डाला। सबेरे श्रीवास पण्डित के भाई रमाई पण्डित ने उठकर क्या देखा कि नित्यानन्द के दण्ड-कमण्डलु टूटे-फूटे बाहर पड़े हैं। वे देखकर विस्मित हो गये। भाई से ख़बर पाकर श्रीवास ने भी बाहर आकर यह लीला देखी। उन्होंने देखा कि निताई कभी अचेत होकर हँसते हैं और कभी नृत्य करते हैं। यह देखकर श्रीवास ने गौर को इसकी सूचना दी। गौर ने वहाँ आकर कहा—"यह क्या! दण्ड-कमण्डलु को किसने तोड़-फोड़ डाला है?" निताई ने कुछ भी उत्तर न दिया। वे अपने भाव में विभोर थे। तब गौर ने उस टूटे-फूटे दण्ड-कमण्डलु को हाथ में लेकर कहा—"चलो, गङ्गास्नान कर आवें, लौटकर व्यासपूजा करनी है।" निताई, गौर और

अन्यान्य भक्त लोग आनन्द-ध्वनि करते हुए गङ्गा नहाने गये। वहाँ गौर ने निताई के दण्ड-कमण्डलु को गङ्गा में बहा दिया। तैरने में निताई बहुत ही कुशल हैं और फिर उनका बालक-जैसा स्वभाव है। गङ्गा में धँसते ही वे अनेक प्रकार से तैरते हुए चारों ओर विचरने लगे। सिर्फ़ तैरकर ही नहीं रह गये; बल्कि घड़ियाल को देखते ही उसे पकड़ने को लपके। गदा-धर प्रभृति ने ज़ोर से चिल्लाकर उन्हें इस दुःसाहसिक काम के करने से रोका। किन्तु निताई किसी की बात पर ध्यान दिये बिना ही उसी ओर बढ़ने लगे। तब गौर ने कहा—"श्रीपाद, झटपट घाट पर आ जाओ। व्यास-पूजा का समय हो गया।" यह सुनते ही निताई घाट पर आ गये। व्यास-पूजा करने के लिए सब लोग श्रीवास के घर पहुँचे। श्रीवास पूजा की तैयारी करने लगे। भक्त लोग मृदु मधुर स्वर में कीर्तन करने लगे।

श्रीवास पण्डित स्वयं व्यास-पूजा के आचार्य बने। वे यथाविधि व्यासदेव की पूजा करके सुन्दर गन्धयुक्त फूलों की माला निताई के हाथ में देकर बोले—"श्रीपाद, मन्त्र पढ़कर यह माला व्यासदेव को अर्पण करो और उन्हें नमस्कार करो। शास्त्र का वचन है कि जो व्यक्ति अपने हाथ से माला चढ़ाता है उसका अभीष्ट सिद्ध होता है।" श्रीवास के हाथ से माला लेकर निताई इधर-उधर देखने और अपने आप कुछ कहने लगे। श्रीवास उनसे बार-बार अनुरोध करके भी काम

न करा सके। श्रीवास ने जब देखा कि हमारा अनुरोध करना वृथा हो रहा है तब उन्होंने गौर को बुलाकर कहा—"देखो निमाई, श्रीपाद हाथ में माला लिये खड़े हैं, व्यासजी को नहीं चढ़ाते। एक बार तुम यहाँ तो आओ।" श्रीवास की बात सुनते ही गौर तुरन्त वहाँ आ गये। उन्होंने कहा—"श्रीपाद, हाथ में माला लिये क्यों खड़े हो? पण्डित-जी की बात मानो, यह सुन्दर माला व्यासदेव को चढ़ाकर प्रणाम करो।" नित्यानन्द ने बिना कुछ कहे-सुने हाथ की माला व्यासदेव को तो चढ़ाई नहीं, गौरसुन्दर को पहना दी। गौरसुन्दर के घुँघराले केशों में माला के उलझ जाने से उनके मुखमण्डल की शोभा और भी बढ़ गई।

वैष्णव-लेखकों का कहना है—"गौरसुन्दर ने इस समय शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीहल और मूसल धारण करके श्रीनित्या-नन्द को षड्भुज रूप के दर्शन दिये थे। गौर के उस रूप को देखकर निताई अचेत होकर नीचे गिर पड़े।" नित्यानन्द की जान निकल गई जान करके सभी लोग "हे कृष्ण, रक्षा करो" कहकर रोने लगे। उस मूर्च्छा को किसी तरह हटते न देखकर गौर ने अपना सुकोमल हाथ नित्यानन्द की देह पर रखकर कहा—श्रीपाद, उठो! चित्त को स्थिर करके भक्तों का हरि-सङ्कीर्त्तन सुनो। जिस नाम का प्रचार करने के लिए तुमने संसार में अवतार लिया है वह तो पूर्ण हो गया। लो, अब उठ बैठो। तुम यदि मधुर हरिनाम को वितरण न

करोगे तो और कौन करेगा ? तुमसे जिसका रत्ती भर भी द्वेष होगा वह हमारा प्रिय कभी नहीं हो सकता।

गौर की बात सुनने से नित्यानन्द को चेत हुआ। गौर ने कहा—"व्यास-पूजा हो चुकी। अब तुम लोग कीर्तन करो।" आज्ञा पाकर भक्त लोग बड़े आनन्द से कीर्तन करने लगे। शची देवी एकान्त में बैठकर गौर और नित्यानन्द का नृत्य देख बहुत ही प्रसन्न हुईं। उन्हें ऐसा लगा मानों उनके दो पुत्र आनन्द से नृत्य कर रहे हों।

दिन डूबने का समय हुआ। इससे गौर ने कीर्तन को समाप्त करने की आज्ञा दी। कीर्तन बन्द होने पर जब सब लोग बैठ गये तब गौर ने श्रीवास से कहा कि व्यास-पूजा का प्रसाद आदि ले आओ। सब वस्तुएँ आ जाने पर गौर ने सबको वितरण कर दीं। उसे खा-पीकर सब लोग आनन्द-पूर्वक अपने-अपने घर गये।

श्रीवास के ही घर में नित्यानन्द रहने लगे। श्रीवास और उनकी पत्नी मालिनी देवी उन्हें अपने पुत्र की भाँति चाहती थीं मालिनी देवी उन्हें अपने हाथ से इस प्रकार भोजन कराती थीं जिस प्रकार छोटे बालक को अपने हाथ से भोजन कराया जाता है।

५

गौरचन्द्र के घर भी निताई अक्सर आया-जाया करते थे। शची देवी उन पर अपने बड़े लड़के विश्वरूप की भाँति स्नेह

करती थीं। निताई भी उन पर अपनी सगी माता की भाँति भक्ति-श्रद्धा रखते थे। किन्तु निताई बालकों की तरह रहा करते थे। एक दिन वे गौर के घर बिलकुल नङ्ग-धड़ङ्ग चले आये। उस समय गौर विष्णुप्रिया से बातचीत कर रहे थे। निताई को नङ्ग-धड़ङ्ग देखते ही विष्णुप्रिया भागकर घर में घुस गईं। गौर ने चटपट अपने मस्तक से वस्त्र उतारकर उन्हें पहनने को दिया। उस समय निताई की आँखों से प्रेमाश्रु बह रहे थे और वे अपनी रसना से मधुर कृष्ण नाम का उच्चारण कर रहे थे। उस समय उन्हें सचमुच भक्ति के आवेग में बाहरी ज्ञान न था।

गौर थे भक्त-शिरोमणि; वे जानते थे कि प्रबल भक्ति के आवेग में मनुष्य को तन-बदन की सुधि नहीं रहती। इसी कारण वे नित्यानन्द का आदर करते थे। उस दिन उन्होंने निताई के गले में फूलों का हार पहनाकर अपने हाथ से उनके चरण धोये और सबसे उस चरणामृत को पीने के लिए कहा। वहाँ पर जितने वैष्णव उपस्थित थे उन्होंने बड़े आग्रह से उस जल को पी लिया। किसी ने कहा—"आज हमारा जीवन कृतकृत्य हो गया," किसी ने कहा—"आज सारे पापों से छुटकारा हो गया," किसी ने कहा—"आज से हम सचमुच कृष्ण के सेवक हुए," और किसी ने कहा—"आज के दिन की क्या कहना है।" किसी ने कहा—"ऐसा मधुर चरणामृत पिया है कि उसका मिठास अब तक मुँह से नहीं

छूटता।" अब गौरचन्द्र ने निताई से कहा—"श्रीपाद, तुम अपनी लँगोटी हमें दे दो।" निताई ने उनकी प्रार्थना पूर्ण कर दी। तब गौर ने उस लँगोटी को फाड़कर वैष्णवों को एक-एक चिन्दी दे दी और कहा—"सब लोग इसे अपने माथे से लपेट लो और घर जाकर इसे सावधानी से रख छोड़ना। इसे एक बढ़िया चीज़ समझना—तुम लोगों में कृष्ण-प्रेम की वृद्धि होगी।" प्रभु की आज्ञा पाकर भक्तों ने बड़े आनन्द से उस लँगोटी की चिन्दियों को अपने-अपने सिर से लपेट लिया।

नित्यानन्द का चरणोदक पीने और लँगोटी की चिन्दी को सिर से लपेटने से वैष्णवों के प्राणों में मानो भक्ति-सिन्धु उमड़ पड़ा। कृष्ण-प्रेम में उनके प्राण अनुप्राणित हो गये—वे गौर-निताई को घेरकर बड़े आनन्द से कीर्तन करने लगे।

६

नगर में द्वार-द्वार पर हरि-नाम का प्रचार करने के लिए, गौर की आज्ञा से, नित्यानन्द और हरिदास निकले। एक दिन वे लोग बस्ती में एक तरफ़ चले जा रहे थे कि उन्होंने देखा, दो मनुष्य शराब के नशे में चूर होकर आपस में मार-पीट कर रहे हैं। राहगीरों से पूछने पर निताई को उत्तर मिला "इनका नाम जगाई-मधाई है, ये लोग अच्छे कुलीन ब्राह्मण हैं। ऐसा कोई दुष्कर्म नहीं जो इन्होंने किया न हो। इनसे सभी डरते रहते हैं।" जगाई-मधाई का हाल सुनकर

नित्यानन्द का हृदय दुखी हुआ। उन्होंने कहा—देखो हरिदास, हरि-नाम से जो इन पापियों का उद्धार न हुआ तो फिर नाम की शक्ति क्योंकर प्रकट होगी? और इसी का साक्ष्य कौन देगा कि गौरचन्द्र ने पतितों का उद्धार करने के लिए जन्म लिया है?

अब वे उन दुर्दान्त भाइयों के समीप जाकर बोले—"कृष्ण का भजन करो। कृष्ण ही माता, पिता और सर्वस्व हैं।" यह सुनते ही उद्धत-प्रकृति के जगाई-मधाई ने आँखें तरेरकर पूछा—"तुम लोग कौन हो?" और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वे निताई और हरिदास को मारने के लिए लपके। तब वे भाग खड़े हुए। इस पर वे "मारो मारो" कहकर उक्त दोनों भक्तों के पीछे दौड़े। अन्त में हरिदास और निताई गौर के घर में जा घुसे। जगाई-मधाई विफल-मनोरथ होकर लौट गये।

भक्तों के बीच बैठे हुए गौर भगवत्-चर्चा कर रहे थे। इसी समय वहाँ हरिदास और नित्यानन्द ने पहुँचकर जगाई एवं मधाई का चरित्र सुनाते हुए कहा—"प्रभो, तुम्हारी ही आज्ञा से हम घर-घर कृष्ण-नाम की घोषणा किया करते हैं, किन्तु आज हम जब दुर्दान्त, सुरापायी, कुकर्मी दो भाइयों को कृष्ण का नाम सुनाने गये तब हमें अपने प्राणों की रक्षा करना कठिन हो गया। उन लोगों ने इस घर तक हमारा पीछा किया।" गौर उन दोनों को दण्ड देने पर उद्यत

हुए किन्तु निताई ने कहा—"हरि नाम के ही द्वारा यदि उनका उद्धार न कर सकोगे तो उस नाम की शक्ति को लोग किस प्रकार समझेंगे, और पतितों का उद्धार करने की तुम्हारी शक्ति का परिचय लोगों को मिलेगा ही किस तरह ?" तब गौर ने हँसकर कहा—"निताई, जिनके कल्याण की तुम इतनी चिन्ता करते हो उनका उद्धार कृपा करके श्रीकृष्ण अवश्य करेंगे। अब उनका उद्धार होने में विलम्ब नहीं है।" सभी भक्तों ने गौर की आशा-पूर्ण बातें सुनकर जय-ध्वनि की।

उनके मन में यही विचार होने लगा कि हरि-नाम के द्वारा जगाई-मधाई का उद्धार होगा—उनके नीरस कठोर हृदयों में हरि-प्रेम की मधुर धारा प्रवाहित होगी। वे लोग एक दिन सन्ध्या-समय जगाई-मधाई के समीप गये। वहाँ पहुँचने पर उन मदोन्मत्तों ने पूछा—"कौन हो रे तुम ?" नित्यानन्द ने उत्तर दिया—"मेरा नाम अवधूत है।" तब वे क्रोध से आग-बबूला हो गये। मधाई ने फूटे घड़े का गला उठाकर निताई के सिर में फेंककर मारा। उसकी चोट से इतना रक्त बहा कि निताई का सिर और वक्षःस्थल सराबोर हो गया। वे अपने शरीर से रक्त को पोंछते हुए प्रेम-पूर्ण दृष्टि से उन पापियों की ओर देखने लगे। पाषाण-हृदय मधाई फिर भी उन्हें मारने को तैयार हुआ। तब जगाई ने कहा—मधाई, करता क्या है ? कहीं से जो यह संन्यासी आ गया है सो इसे मारना भला कहाँ तक ठीक है ? तू बड़ा निर्दय है।

कर नित्यानन्द की अपूर्व क्षमा और धैर्य देखकर उसका मन एकदम बदल गया। उसने नित्यानन्द के चरणों पर गिर-कर क्षमा-प्रार्थना की तब उन्होंने उसे गले लगाकर कहा—"अरे मधाई, तेरे सब पापों को मैंने ले लिया।" नित्यानन्द से प्रेमालिङ्गन प्राप्त होने पर मधाई को नव-जीवन मिल गया।

गौर ने शिष्यों से कहा, इन्हें अब हमारे घर ले चलो। तब वे लोग आनन्द-ध्वनि करते हुए, जगाई-मधाई को लेकर, गौर के घर पहुँचे। वहाँ गौर ने जगाई-मधाई से कहा—"तुम लोग सबके पैर छू-छूकर क्षमा माँगो।" वे लोग सिर झुकाकर सबके चरणों की रज अपने माथे से लगाने लगे। भक्तों ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया। गौर ने कहा—जगाई-मधाई उठो; आज से तुम हमारे सेवक हुए।

जिस नाम के प्रभाव से जगाई-मधाई का तरन-तारन हुआ, जिस नाम के प्रभाव से बड़े-बड़े पापियों का उद्धार होता रहा है उसी नाम का कीर्तन करना भक्तों ने आरम्भ कर दिया। भगवान् के नाम की करामात और साधु-जीवन के प्रभाव से पल भर में पापियों का उद्धार हो जाता है—इसके उज्ज्वल दृष्टान्त जगाई-मधाई हैं।

जगाई-मधाई का जीवन परिवर्तित हो गया। वे हरि-नाम का कीर्त्तन करने और नामानन्द का रस पीने में समय बिताने लगे। वृन्दावन दास कहते हैं कि वे दोनों भाई गङ्गा-किनारे बैठकर दो लक्ष नाम का जप किया करते थे।

अनुताप की आग में जलाये बिना हृदय शुद्ध नहीं होता; हृदय में प्रेम की जागृति वास्तविक रूप में नहीं होती। मधाई का जी अभी तक शान्त न होता था। "हमने परम भक्त नित्यानन्द के साथ अमानुषिक निष्ठुर व्यवहार किया है और सैकड़ों मनुष्यों पर अकारण अत्याचार किया है;" इन बातों की याद होने से उसके प्राण व्याकुल हो जाते हैं। उसे किसी भी तरह चैन नहीं मिलता। एक दिन रास्ते में नित्यानन्द को देख मधाई रोता हुआ उनके चरणों पर गिरकर बोला—प्रभो, आपके जिस अङ्ग में श्रीकृष्णचन्द्र विराजमान हैं उसी अङ्ग पर मैंने प्रहार किया था—भला मुझसे बढ़कर पातकी और कौन होगा?

नित्यानन्द ने तुरन्त ही हाथ पकड़कर उसे उठाया और कहा—"मधाई, नासमझ बेटा यदि बाप को मार बैठता है तो इसकी परवा पिता नहीं करता। आज से मैं तुम्हारे ही शरीर में निवास करूँगा।" इस प्रकार आशा की अनेक बातें कहकर उसके अनुतप्त प्राणों में उन्होंने मानो शान्ति-जल सींच दिया।

पाठक सोचें कि ऐसी बातें क्या साधारण मनुष्य के मुँह से निकल सकती हैं? गौर के शिष्य नित्यानन्द जैसे भक्त ही ऐसी बातें कहने में समर्थ हैं।

मधाई ने रोते-रोते फिर भी कहा—"प्रभो, एक और निवेदन है। उसका उपाय बतला दीजिए। मैंने हज़ारों

लोगों के साथ अकारण निष्ठुर व्यवहार किया है। मैं उन सब लोगों को पहचानता भी नहीं। कृपा कर बतलाइए कि उन सबसे मैं किस प्रकार क्षमा माँगूँगा ?" नित्यानन्द ने कहा—तुम गङ्गा के घाट पर बैठे रहा करो और वहाँ पर जो कोई आवे उसी के पैर पकड़कर क्षमा माँगा करो।

नित्यानन्द की आज्ञा को शिरोधार्य करके मधाई ने अपने हाथ से कुदाल चलाकर गङ्गा-किनारे एक घाट बनाया और वहीं बैठकर वह श्रीकृष्ण के नाम का कीर्तन तथा नित्यानन्द की आज्ञा का पालन करके समय बिताने लगा।

७

तब से नित्यानन्द प्रायः हर समय श्रीगौराङ्ग के साथ ही साथ रहकर हरिनाम के प्रचार में सहायता करने लगे। गौर जब संन्यास लेकर अनेक स्थानों की यात्रा करने के अनन्तर श्रीजगदीश धाम में जीवन का शेष समय बिता रहे थे तब बङ्गाल से प्रति वर्ष उनके हज़ारों शिष्य, रथ-यात्रा के समय, वहाँ जाते और चार महीने तक उनके साथ रहकर भगवत्प्रसङ्ग तथा सङ्कीर्तन किया करते थे। गौर जिस साल वृन्दावन प्रभृति पुण्यक्षेत्रों का दर्शन करके श्रीजगदीशपुरी में लौटे उस साल गौड़ देश से भक्त लोग आकर उनके समीप पहुँचे। नित्यानन्द भी वहीं आ गये।

गौर ने इसी लिए संन्यास-धर्म ग्रहण किया था जिसमें चारों ओर हरि-नाम का प्रचार हो और क्या स्त्री क्या पुरुष सभी शान्ति-रस-सुरा को पीकर प्राणों को शीतल करें। किन्तु अब उन्होंने सोचा कि केवल संन्यासी के ही द्वारा यह कार्य सिद्ध न होगा। उन्होंने एक दिन नित्यानन्द को बुलाकर दिन भर उन्हें अपने समीप रक्खा। किसी को यह मालूम न हो सका कि उनसे नित्यानन्द की क्या-क्या बातचीत हुई। मालूम होता है, उन्होंने नित्यानन्द को विवाह करके बङ्गाल में हरिनाम की घोषणा करने की आज्ञा दी थी; क्योंकि फिर वे बङ्गाल में प्रचार-कार्य करने लगे और उन्होंने विवाह भी कर लिया।

इस समय गौर ने सभी के सामने नित्यानन्द से कहा—नित्यानन्द, तुम गौड़ में जाकर हरि-नाम का प्रचार करो। प्रचार-कार्य के लिए गौड़ देश तुम्हीं को सौंपा जाता है। वहाँ झटपट जाओ, और सबको मधुर हरिनाम की सुधा पिलाओ।

गौर ने कहा—"अपने काम के लिए तुम्हें बहुतेरे सहायक मिलेंगे। रामदास, गदाधरदास, कृष्णदास पण्डित और पुरन्दर पण्डित प्रभृति की सहायता से तुम इस महत्कार्य को भली भाँति कर सकोगे।" प्रभु की आज्ञा होते ही उल्लिखित भक्तों को साथ ले नित्यानन्द गौड़ देश की ओर चल पड़े। मधुर हरि-प्रेम में गौड़ देश को प्लावित करने के लिए

ये लोग जा रहे हैं, इस आनन्द में उन सबके प्राण नाचने लगे। वे लोग मगन होकर हरिगुण गाते हुए रास्ता चलने लगे। हरि-प्रेम की सुधा पीकर मानो सभी के सभी मतवाले हो रहे थे। चलते-चलते कोई किसी पर हिल-डुलकर गिरने लगा, कोई भाव को न रोक सकने पर सुध-बुध भूल-कर नीचे गिर पड़ा। इस प्रकार चलते-चलते ये लोग पनि-हाटी गाँव में पहुँचे। नित्यानन्द ने अपने पारिषदों के साथ राघव पण्डित के घर आतिथ्य ग्रहण किया। उक्त पण्डितजी परम भक्त नित्यानन्द और उनके साथियों को बड़े आदर से अपने घर पर ठहराकर उनकी परिचर्या करने लगे। नित्यानन्द भी अपने कर्तव्य-पालन में निरत हुए। नाम-प्रचार करने से पनिहाटी गाँव भक्ति के स्रोत में बहने लगा। और वह सुशीतल भक्ति-जल ग्राम-ग्रामान्तर में प्रवाहित होकर नर-नारियों के प्राणों को शीतल करने लगा।

कुछ दिनों में नित्यानन्द को आभूषण पहनने की इच्छा हुई। इससे वे सुवर्ण के अनेक प्रकार के अलङ्कार पहनकर भागीरथी के दोनों किनारों पर शिष्यों के साथ हरिनाम का कीर्तन करते हुए विचरने लगे। नित्यानन्द के भक्ति-विगलित हृदय से हरि-नाम की ध्वनि उठकर सभी को विमोहित करने लगी। उनके शिष्य भी उनके भाव में विमुग्ध होकर उच्च स्वर से श्रीकृष्ण-चैतन्य तथा नित्यानन्द की जय बोलकर आनन्द-कोलाहल करने लगे। नित्यानन्द और उनके शिष्यों

ने हरिनाम का गान करके सभी को मतवाला कर दिया। नित्यानन्द जहाँ हाथ उठाकर कीर्तन करने लगते वहाँ सैकड़ों मनुष्य भाव-रस में मुग्ध होकर गिरने लगते थे।

यहाँ से चलकर नित्यानन्द एँड़ेदह गाँव में गदाधर दास के घर गये। गदाधर भी परम भक्त थे। नित्यानन्द ने कुछ समय तक उनके घर रहकर गाँववालों को प्रेमानन्द प्रदान किया। यहाँ पर एक क़ाज़ी रहता था। सङ्कीर्तन से इसे बड़ी चिढ़ थी। नित्यानन्द जब सभी को सङ्कीर्तन में मत्त करने लगे तब गदाधर ने एक दिन उसी क़ाज़ी के घर जाकर निडर भाव से कहा—"नवयुग में पापियों के उद्धार के लिए श्रीचैतन्य और नित्यानन्द अवतार लेकर हरिनाम वितरण कर रहे हैं। देश के बहुतेरे आदमियों का इस प्रकार नाम-कीर्तन करने से उद्धार हो रहा है, फिर तुम्हीं क्यों आलस्य में पड़े हो? यदि परित्राण चाहते हो तो मुँह से हरि का नाम लो।" गदाधर की बात सुन क़ाज़ी ने स्तम्भित होकर कहा—"गदाधर, आज तुम घर को जाओ, कल मैं हरिनाम का उच्चारण करूँगा।" गदाधर दास ने उत्तर दिया—"अब कल की क्या ज़रूरत? अभी तो तुमने मुँह से हरिनाम का उच्चारण किया है। आज ही जी भरकर इस नाम को लो, सारे पापों का नाश हो जायगा।" जो व्यक्ति पराकाष्ठा की कठोरता दिखलाया करता था वही आज गदाधर का भाव देखकर हरि-प्रेम की मधुरता का अनुभव करने में समर्थ हो गया।

उसका जीवन-क्रम उसी दिन से परिवर्तित हो गया। गङ्गा-धर दास भक्त थे सही किन्तु इस समय उन्होंने नित्यानन्द के भाव में अनुप्राणित होकर यह कार्य किया था।

इसके पश्चात् वे खड़दह में गये। यहाँ पर चैतन्यदास और पुरन्दर पण्डित नामक दो साधु पुरुष रहते थे। निताई ने यहाँ इन दोनों भक्तों के घर पर कुछ दिन ठहरकर हरि-नाम की सुधा वितरित की। नित्यानन्द यहाँ से अपने पारि-षदों के साथ सप्तग्राम नामक स्थान में गये। यहाँ पर वे उद्धारण दत्त के घर टिके। उद्धारण दत्त सोने का व्यवसाय करते थे। वे विशेष सम्पत्तिशाली थे। नित्यानन्द को पाकर वे परम पुलकित हुए और भक्ति के कारण उनकी चरण-वन्दना करने लगे। प्रेम और भक्ति के स्रोत में नित्यानन्द ने सप्त-ग्राम को बहा दिया।

इस स्थान में भक्ति वितीर्ण करके अब वे शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर पहुँचे। बहुत दिनों के पश्चात् भेंट होने के कारण दोनों भक्तों के हृदय में प्रेम की तरङ्ग उठने लगी। आचार्य भाव में विभोर होकर नित्यानन्द को अपनी गोद में बिठा आँसू बहाने लगे। निताई ने भक्तों के साथ वैष्णवा-चार्य अद्वैत के घर कई दिन ठहरकर हरि-चर्चा और नामकीर्तन की धूम मचाई। आचार्य ने कहा—तुम नित्यानन्दमूर्त्ति हो, तुम चैतन्य के मूर्तिमन्त गुण-ग्राम हो। चैतन्य की प्रेम-भक्ति तुम्हीं समझाते हो। मूर्ख,

पतित और नीच व्यक्तियों का उद्धार करने के लिए तुम्हारा जन्म है।

नित्यानन्द की स्तुति करते-करते अद्वैताचार्य मगन हो गये।

८

अद्वैताचार्य के घर से विदा होकर नित्यानन्द नवद्वीप में पहुँचे। गौर के बिना नवद्वीप ज्योतिहीन हो रहा था। शची माता और विष्णुप्रिया शोक तथा दुःख से म्रियमाण थीं। भक्तों को सुख और शान्ति दुर्लभ हो गई थी; जब वे वर्ष के अन्त में जगदीशपुरी में पहुँचकर प्रभु का मुँह देखते थे तभी उनके प्राणों में आनन्द-धारा बहती थी। आज निताई को देख सभी के प्राण आनन्द से उत्फुल्ल हो गये। शची देवी निताई पर अपने पुत्र का-सा प्रेम करती थीं। निताई को देख उन्होंने आँसू बहाकर कहा—"अरे निताई, तू मेरे घर रहकर हरिनाम-कीर्तन किया कर।" निताई को देखने से शची माता विश्वरूप और गौर की वियोग-वेदना को कुछ कुछ भूल जाती थीं।

नवद्वीप में निताई हिरण्य पण्डित के घर रहने लगे। जिस सङ्कीर्तन की ध्वनि से नवद्वीप पूर्ण हो गया था किन्तु गौर के चले जाने से इधर न्यूनता आ गई थी वह निताई के आ जाने से जाती रही। नित्यानन्द के साथ भक्त लोग कीर्त्तनानन्द में मत्त रहने लगे। नवद्वीप के घर-घर में निताई

हरिनाम-कीर्तन करने लगे। नवद्वीप फिर नवीन भाव में जाग पड़ा। शुष्क ज्ञान की कठोरता की जगह सरस भक्ति का स्रोत बहने लगा; पाषाण-सदृश कठोर प्राण भक्ति-रस में विगलित हो गये।

उस समय नवद्वीप में एक ब्राह्मण-कुमार चोरी और दस्यु-वृत्ति करके अपना-निर्वाह करता था। एक दिन वह नित्यानन्द की देह पर बहुमूल्य सुवर्णालङ्कार देख उन्हें उड़ाने का मौक़ा ढूँढ़ने लगा। अधिक रात बीतने पर एक दिन वह अपने साथियों को लेकर हिरण्य पण्डित के घर आया। उसने देखा कि नित्यानन्द ब्यालू कर रहे हैं और भक्त लोग कीर्तन में मग्न हैं। डाकुओं के मुखिया ने सभी से कहा—"अब हम लोग थोड़ी देर तक कहीं एकान्त में छिपे रहें, अभी थोड़ी देर में अपना काम सिद्ध करलेंगे।" उसकी आज्ञा पाकर अन्यान्य चोर एक पेड़ की छाया में बैठ गये। किन्तु वहाँ बैठे देर नहीं हुई थी कि सभी सो गये। जब सबेरे उनकी आँख खुली तब वे एक वन में अपने हथियार छिपाकर भाग गये। दूसरे दिन उन्होंने फिर आकर देखा कि हर्बे-हथियारों से दुरुस्त सिपाही हिरण्य पण्डित के घर के चारों ओर पहरा दे रहे हैं और हरिनाम-कीर्तन भी कर रहे हैं। चोरों की समझ में न आया कि यह प्रबन्ध कैसे हो गया। वे लोग फिर निराश होकर लौट गये। तीसरे दिन चोरों का सरदार ब्राह्मण-कुमार अपने दल के साथ आया किन्तु वहाँ आते ही

सभी चोर अन्धे हो गये। इस दशा में भागने की चेष्टा करने से कोई तो गड्ढे में और कोई कँटीले स्थान में गिरकर अनेक प्रकार का कष्ट भोगने लगा। तब चोर-नायक ब्राह्मण-कुमार ने रोते-रोते नित्यानन्द के पास जाकर क्षमा-प्रार्थना की; और विस्मित होकर उनकी ईश्वरी शक्ति का वर्णन सुनाया। इस पर नित्यानन्द ने कृपा करके उसकी आँखें खोल दीं और कहा—"ब्राह्मण-देवता, तुमने ज़िन्दगी भर में जितने पाप किये हैं वे सब हमने ले लिये। हिंसा, चोरी, आदि जिन अपराधों से जीवन कलङ्कित होता है उनको अब तुम छोड़ दो, और सर्व-पाप-तापहारी हरिनाम का कीर्तन करो। ऐसा करने पर तुम्हारे जीवन के अपूर्व दृष्टान्त से दूसरों का भी जीवन सुधरेगा और लोग नाग परमेश्वर के नाम की महिमा समझने में समर्थ होंगे।" यह कहकर क्षमा के अवतार नित्यानन्द ने अपने गले से फूलों की माला उतारकर उसे पहना दी।

अपने सरदार की देखा-देखी उसके दल के अन्यान्य चोर भी धर्म-मार्ग पर आरूढ़ हो गये। चोरों ने नित्यानन्द के आभूषण चुराने जाकर अलौकिक क्रिया देखी, इस कारण वे कई बार लौटे और अन्त में अन्धे हो गये;—इसका उल्लेख हो चुका है। मालूम होता है, यह और कुछ नहीं था, नित्यानन्द के जीवन के प्रभाव से दस्यु-दल ने मन्त्र-मुग्ध हो असत्कार्य छोड़ दिया था। भगवत्कृपा की अद्भुत शक्ति महापापी का भी उद्धार करके उसे पुण्य-पथ पर चला सकती है।

नित्यानन्द ने कुछ समय तक नवद्वीप में रहकर प्रेमतरङ्ग में सबको बहाया, जीवन के माधुर्य गुण से पाषाण-हृदय चोरों के प्राणों को विगलित किया। उनके पधारने से नवद्वीप नवजागरण से जाग पड़ा। अब वे पुरी में जाकर गौरसुन्दर के दर्शन करने के लिए व्याकुल हुए। वे अब ठहर न सके—पुरी की ओर चल पड़े। मधुर हरिनाम का कीर्तन करते-करते जब वे कमलपुर में पहुँचे तब दूर से मन्दिर का शिखर देखकर भाव में विभोर हो गये। श्रीचैतन्य स्वयं वहाँ पधारे और निताई की मूर्च्छा को दूर कर उन्होंने कहा—"नित्यानन्द, तुम अनेक प्रकार के अलङ्कार पहने हुए हो, सो ये मणि-मुक्ता तुम्हारी भक्ति के ही लक्षण हैं। तुम्हारे नाम-कीर्तन के प्रभाव से कितनी ही नीच जातियों का उद्धार हो गया और बहुतेरे पापी तर गये।" अन्त में सब लोग पुरी में पहुँचे। नित्यानन्द के आने का समाचार सुनकर गदाधर उन्हें अपने आश्रम में ले गये। गदाधर के लिए नित्यानन्द मन भर बढ़िया अरवा चावल और एक सुन्दर लाल वस्त्र लाये थे। आश्रम में पहुँचकर नित्यानन्द ने गदाधर को उक्त वस्तुएँ दीं। गदाधर ने उन चावलों का भात बनाकर गौर और नित्यानन्द को भोजन कराया। उन चावलों की सुगन्धि से प्रसन्न होकर गौर ने कहा—"गदाधर, यह भात खाने से कृष्ण-भक्ति की वृद्धि होती है।" नित्यानन्द कुछ दिनों तक पुरी में रहे। इसके बाद श्रीचैतन्य ने बुलाकर उनसे कहा—तुम गृहस्थ-धर्म

को स्वीकार करके गौड़ देश में जाओ और हरि-नाम का प्रचार करो।

प्रभु की आज्ञा को नित्यानन्द टाल न सके। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए वे प्रस्तुत हुए। अन्त में अपने पारिषदों को साथ ले, गौर से बिदा माँगकर, गौड़देश की ओर चल पड़े। पुरी से चलते समय सभी की आँखों से आँसू बहने लगे।

पुरी से लौटकर नित्यानन्द पनिहाटी गाँव में राघव पण्डित के घर ठहरे। श्रीगौराङ्ग की आज्ञा का पालन करने के लिए अब उन्होंने विवाह करना चाहा। अम्बिका नगर में सूर्यदास पण्डित के वसुधा और जाह्नवी नाम की दो बेटियाँ थीं। इसलिए नित्यानन्द ने अम्बिका नगर में जाकर उक्त पण्डितजी पर अपना अभिप्राय प्रकट किया। सूर्यदास नित्यानन्द की बहुत भक्ति करते थे किन्तु संन्यासी होने के कारण पहले उन्हें कन्या-दान करना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। किन्तु नित्यानन्द के प्रति वसुधा के आन्तरिक प्रेम का परिचय पाकर उन्होंने उसके साथ नित्यानन्द का विवाह कर दिया, और इसके पश्चात् नित्यानन्द की इच्छा देख छोटी लड़की जाह्नवी भी उन्हीं को ब्याह दी।

नित्यानन्द गृहस्थ-धर्म को अङ्गीकार करके भागीरथी के किनारे प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण खड़दह में घर बनवाकर रहने लगे। यहाँ वसुधा देवी के गर्भ से वीरचन्द्र नामक

उनके एक पुत्र हुआ। इस पुत्र ने आगे चलकर वैष्णव धर्म का एक सम्प्रदाय गठित किया और स्वयं उसका मुखिया होकर काम किया।

नित्यानन्द के आगमन से खड़दह में भक्ति की तरङ्ग उठने लगी, नामसङ्कीर्तन की मधुर ध्वनि से चारों दिशाएँ पूर्ण होने लगीं; किन्तु कुछ दिनों में नित्यानन्द का भाव बदल गया; उन्हें गौर के वियोग की यन्त्रणा होने लगी। वे नाम लेते-लेते अक्सर मूर्च्छित हो जाया करते थे। एक दिन श्याम-सुन्दर के मन्दिर में भक्तों के साथ कीर्तन करते-करते वे अचेत हो गये। बहुत उपाय करके भी भक्त लोग उन्हें सचेत न कर सके; उस दिन उन्होंने सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

हरिदास

१

शके १३७१ के लगभग अगहन महीने में यशोहर ज़िले के अन्तर्गत 'बुड़न' गाँव में किसी मुसलमान के घर हरिदास उत्पन्न हुए। जिस समय वे पैदा हुए थे उस समय बङ्गाल की धार्मिक दशा बहुत ही शोचनीय हो गई थी। बौद्ध धर्म की विशुद्ध नीति का और अद्वैतवाद का महत्प्रभाव भी विकृत हो गया था। पुराण और भागवत का भक्तिधर्म भी म्लान हो गया था। उस समय तान्त्रिक, वामाचारी और कापालिक लोगों ने अपने-अपने धर्म का सार परिग्रह करने में असमर्थ होकर सुरा-पान और नीति-विरुद्ध कार्य-द्वारा धर्म के आदर्श को बहुत ही हीन कर दिया था।

हरिदास को बाल्यावस्था से ही हरिनाम से अनुराग हो गया था। मुसलमान ख़ानदान में रहकर हरिनाम पर अटल अनुराग होने के कारण ही, जान पड़ता है, उन्हें लाचार होकर घर-द्वार छोड़ना पड़ा था।

हरिदास ने घर-द्वार छोड़कर वनग्राम के समीप बेनापोल के निर्जन जङ्गल में अपने लिए एक कुटी बना ली, और

इसी में बेखटके रहकर वे साधन करने लगे। हरिनाम लेना ही उनके जीवन का व्रत था। कहा जाता है कि वे प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम का जप किया करते थे, किन्तु वे मन ही मन में जप न करते थे; वे प्राय: उस मधुमय नाम का उच्चारण ज़ोर-ज़ोर से किया करते थे। क्योंकि उस नाम को सुनने से दूसरों के प्राण भी शीतल हो सकते हैं—शुष्क हृदय में भी प्रेम का गुलाब खिल सकता है। भक्त हरिदास की साधना की चर्चा चारों ओर फैल गई। देहात के सभी जातियों और सभी दर्जों के लोग, उन पर अनुराग करके, उनकी अपार प्रशंसा करने लगे, और उनके दर्शनों के लिए उनकी कुटी में आने लगे। कोई-कोई तो प्रतिदिन सबेरे उनके अमृतमय भक्ति-पूर्ण मुँह को देखने के लिए आते और उनके चरणों में श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके अपने घर को लौट जाते थे। जो लोग उनके पास जाते थे उनसे वे मधुर हरिनाम लेने का आग्रह किया करते थे। हरिदास भगवान् के प्रेम में मग्न रहते थे, इसलिए उनकी बात का असर औरों के हृदय पर भी होता था। वे जिस समय कहते 'हरि का नाम लो' उस समय संसारी काम-काज में बेतरह उलझे हुए मनुष्य का चित्त भी द्रवित हो जाता था और उसके सूखे कण्ठ से भी सुधा-मिश्रित हरिनाम का उच्चारण होता था।

संन्यासी हरिदास घर-घर जाकर भीख माँग लाया करते थे। किन्तु बहुतेरे भक्त उनके भोजन के लिए अनेक प्रकार

के फल-मूल ला दिया करते थे। हरिदास दिन-रात में सिर्फ़ एक ही बार भोजन करते थे, और भिक्षा में जो चीज़ें मिल जातीं वे, दूसरे दिन के लिए न रखकर, बालकों और अन्यान्य लोगों को बाँट देते थे।

उस समय वनग्राम में रामचन्द्र ख़ाँ नामक एक दुर्वृत्त ज़मींदार रहता था। हरिदास के भजन की चर्चा सुनकर उसके मन में एक असत् इच्छा हुई। उसने सोचा कि मैं हरिदास को छकाऊँगा। इस भगवद्भक्त के जीवन की कठोर साधना, और इसके ज्वलन्त वैराग्य को चौपट करने के लिए रामचन्द्र ज़मींदार ने एक बुरे उपाय का सहारा लिया। उसने कई रूपवती वाराङ्गनाओं को बुलाकर कहा कि हरिदास के जीवन की पवित्रता को नष्ट कर दो। धन का लालच पाकर वाराङ्गनाओं ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उनमें एक वेश्या का रूप-यौवन सबसे बढ़-चढ़कर था। उसने कहा—"एक मैं ही वहाँ जाकर उस साधु को अपनी मुट्ठी में कर लूँगी और अपने उद्देश्य को सफल करके ही घर लौटूँगी।" वह सुन्दरी यह प्रतिज्ञा करके बेनापोल के जङ्गलवाली पवित्र कुटी में हरिदास के पास पहुँची। उस समय सूर्यास्त हो चुका था, सन्ध्या का अँधेरा वन में सर्वत्र फैल गया था। पक्षियों के कल-रव के सिवा वहाँ पर जन-मानव का शब्द सुनाई न देता था। वाराङ्गना ने उस सूनसान निर्जन जङ्गल में हरिदास की कुटिया के द्वार पर जाकर उनको

प्रणाम किया। हरिदास भजन कर रहे थे—नाम-कीर्तन में मग्न थे।

हरिदास रूपवान पुरुष थे। उनका रूप-लावण्य देखते ही वार-वनिता लट्टू हो गई और निर्लज्ज भाव से मृदु मधुर वचनों-द्वारा उन पर अपना अभिप्राय प्रकट करने लगी। हरिदास ने कहा—"नाम के जप करने का मैंने व्रत ग्रहण किया है। यह पूर्ण हो जाय तो तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करूँ।" बस, वे फिर जप करने लगे। उस जप में न विराम था और न नाम-कीर्तन थोड़ी देर के लिए रुकता ही था। वार-वनिता कुटी के दरवाज़े पर बैठी-बैठी सब कुछ देखने लगी, किन्तु उसकी नीच वासना पूर्ण न हुई,—भजन ही भजन में सबेरा हो गया। वाराङ्गना निराश होकर वहाँ से ज़मींदार के पास पहुँची और सारा हाल सुनाकर बोली कि आज रात को उन्हें अपने रूप के जाल में फँसाकर उनके साधन को भ्रष्ट कर दूँगी। शाम होते ही वह कुलटा फिर हरिदास की कुटी पर पहुँची और तरह-तरह से नज़ाकत दिखाकर भक्त के चित्त में विकार उत्पन्न करने का उद्योग करने लगी। हरिदास ने उससे कहा—"काम न होने से कल तुमको योंही लौट जाना पड़ा। मैं तो नाम-जप के व्रत में हूँ, वह अभी तक पूरा नहीं हुआ है, पूरा हो जाय तो तुम्हारी अभिलाषा को पूर्ण करूँ।" वाराङ्गना को फिर आशा हुई। वह कल की तरह दरवाज़े पर बैठी-बैठी प्रतीक्षा करने लगी। हरिदास

अपने नियमानुसार नाम का जप और कीर्तन करने लगे। उनकी दिव्य कान्ति के भीतर से मानो एक अपार्थिव ज्योति निकल रही थी। कण्ठ से मधुर हरि-ध्वनि हो रही थी,— वाराङ्गना बैठी-बैठी सब कुछ देखने लगी। उस दिन भी वासना को पूर्ण होते न देख उसने निराश मन से ज़मींदार के यहाँ लौटकर सब हाल कह सुनाया। आज तीसरा दिन है; वाराङ्गना ने आज भी वहाँ जाने के लिए तैयार होकर ज़मींदार से कहा "चाहे जो हो, आज मैं अवश्य ही काम सिद्ध करके लौटूँगी।" सन्ध्या होने पर सुन्दरी वाराङ्गना पहले की तरह बेनापोल की निर्जन कुटी में पहुँची। हरिदास ने कहा—"मालूम होता है, आज नाम-जप पूर्ण होने पर तुम्हारी मनोवाञ्छा को पूर्ण कर सकूँगा।" यह कहकर वे फिर जप करने लगे; धीरे-धीरे रात बीतने पर सबेरा हो गया। वाराङ्गना की कामना पूर्ण न हुई। वह निराश होकर लौट गई। रामचन्द्र ख़ाँ को सब हाल मालूम हुआ। आज चौथा दिन है। फिर भी हरिदास को माया-जाल में फँसाने की आशा ने वाराङ्गना का पिण्ड न छोड़ा। शाम होने पर वह फिर हरिदास की कुटी में पहुँची और पहले की तरह दरवाज़े पर जा बैठी। हरिदास आनन्द से नाम-जप कर रहे थे, आँसुओं की धारा से उनका वक्षःस्थल धुल रहा था। धीरे-धीरे समय बीतने लगा और ख़ूब सन्नाटे की रात हो गई। वेश्या ने सोचा, यह मनुष्य नहीं है—जो रक्त-मांस का पुतला ऐसे

ज्वलन्त प्रलोभन की परवा छोड़कर हरि-प्रेम में उन्मत्त हो सकता है वह नर-लोक से अतीत है।

भक्त के अमृतमय नाम-कीर्त्तन की ध्वनि ने मानो स्निग्ध वारिधारा की भाँति वेश्या के हृदय में स्थित उद्दाम प्रवृत्ति की अनल-शिखा को शान्त कर दिया। उसका हृदय परिवर्तित हो गया। वह धीरे-धीरे ताल देकर हरिदास के साथ नाम-कीर्तन करने लगी। उसकी आँखों से अनुपात के आँसू बहने लगे। रामचन्द्र ख़ाँ की भेजी हुई नारी कुछ से कुछ हो गई। अन्त में उसने हरिदास के चरणों पर गिरकर, रो-रोकर, सारा हाल सुना दिया और हाथ जोड़कर कहा—मैं महापापिनी हूँ, मेरे उद्धार का उपाय बताइए।

"मैं तो तुम्हारे उद्धार के लिए ही यहाँ टिका हुआ था। अब तुम्हारे पास जितनी भी सम्पत्ति है, सब दीन-दुखियों को दे डालो और अपनी ज़िन्दगी का बचा हुआ समय बड़े प्रेम से भगवान् का भजन करने में लगाओ।" यह कहकर हरिदास स्वामी मधुर कण्ठ से सुधा-मिश्रित हरिध्वनि करते हुए, बेनापोल की कुटी छोड़कर, चलते बने।

उस स्त्री ने हरिदास के उपदेशानुसार अपना सर्वस्व दीन-दुखियों को दान करके सिर मुँड़ा लिया। फिर वह तपस्विनी की तरह हरिदास की कुटी में रहकर जप और कीर्तन करने लगी। उसके जीवन का अपूर्व परिवर्तन और उसकी प्रगाढ़ भक्ति-निष्ठा देखने से सब लोगों को अपार आश्चर्य हुआ।

अनुसार निरुपद्रव भाव से अपने धर्म का पालन न कर सकते थे। ऐसे समय पर एक मुसलमान का हिन्दू-धर्म को अङ्गीकार करना बेखटके निभ जाय, यह सम्भव न था। हरिदास मुसलमान थे। उनके हिन्दू हो जाने से अन्यान्य मुसलमानों को बुरा दृष्टान्त मिलेगा, इसलिए उन्हें राज-दरबार से दण्ड दिलाने के लिए गोराई क़ाज़ी ने मुलुकपति के इजलास में हरिदास की नालिश की। मुलुकपति ने यवन हरिदास को, हिन्दू-धर्म मानने के कारण, पकड़ मँगवाया। सरकारी कर्मचारी उन्हें वन्दी बनाकर क़ाज़ी के यहाँ ले आये।

हरिदास की गिरफ़्तारी होने से सभी फुलिया-वासी, उनके लिए, मर्माहत हुए। इधर हरिदास क़ैद में डाल दिये गये। हरिदास के आगमन से प्रसन्न होकर अन्यान्य क़ैदी उनके सामने आ खड़े हुए और भक्ति के साथ उन्होंने भक्त को माथा झुकाया। हरिदास ने आशीर्वाद-सूचक वचन कहा—"तुम जिस अवस्था में हो उसी में सुख से रहो।" उनका यह आशीर्वाद सुनकर क़ैदी लोग विस्मित हुए। उनमें से बहुतेरों को खेद भी हुआ। हरिदास समझ गये कि हमारे आशीर्वाद का अर्थ समझ में न आने के कारण ये लोग दुःखित हुए हैं, इस कारण उन्होंने सबसे कहा—भाइयो, मैंने तुमको क़ैदी की दशा में रहने का आशीर्वाद नहीं दिया। मैंने तो यह इच्छा की है कि तुम लोग जिस प्रकार इस समय मन का आनन्द प्रकट कर रहे हो उस

आनन्द का उपभोग हमेशा किया करो और हरिनाम का कीर्तन करो।

उन्होंने इस प्रकार अपने आशीर्वाद का मर्म समझाकर सबसे भविष्यद्वक्ता की भाँति कहा—"भाइयो, दो-तीन दिन में ही तुम लोग यहाँ से रिहा कर दिये जाओगे।" भक्त की वाणी सोलहों आने सत्य निकली। दो-तीन दिन के बाद मुलुकपति की आज्ञा से सभी क़ैदी छोड़ दिये गये।

हरिदास के मुक़दमे का दिन आया। आज अदालत में अपार भीड़ है। इजलास में मुलुकपति के बैठने पर सौम्यमूर्त्ति, प्रफुल्लचेता परम भक्त हरिदास उसके सामने लाये गये। मुलुकपति ने इतने बड़े भक्त का यथोचित सम्मान करके उनके बैठने को आसन देने की आज्ञा दी। मुलुकपति ने बड़ी विनय के साथ कहा—भाई, बड़े भाग्य से तुम मुसलमान हुए हो, फिर किस लिए तुम हिन्दुओं के देवता का नाम लेते और उन्हीं के आचरण का पालन करते हो? हम तो हिन्दू को देखकर खाना तक नहीं खाते। तुम मुसलमान-वंश के ऐसे उच्च अधिकार को लाँघकर क्यों अनुचित आचरण करते हो? समझ लो कि इस पाप के कारण तुम्हें मौत के बाद भी चैन न मिलेगा। लो, अब झटपट कलमा पढ़कर इस पाप से मुक्त हो जाओ।

मुलुकपति की बातें सुनकर हरिदास ने ठण्ढी साँस लेकर कहा "अहो विष्णुमाया" फिर कहा—सुनो पिताजी, दुनिया

का मालिक एक ही है। हिन्दू और मुसलमान उसे जुदा-जुदा नामों से पुकारते हैं। कुरान और पुराण में उसी अद्वितीय परमेश्वर की महिमा अनेक नामों से कीर्तित है। वह परमेश्वर नित्य अखण्ड और अव्यय है—वह सभी मनुष्यों के हृदय में समभाव से मौजूद है। वह जो कुछ कराता है वही लोग किया करते हैं। सभी शास्त्र उसी एकमात्र परमेश्वर की महिमा का बखान करते हैं। यदि कोई हिन्दू-परिवार में जन्म लेकर अपनी इच्छा से मुसलमान हो जाता है तो इसके लिए उस पर हिन्दू लोग अत्याचार नहीं किया करते। महाशय, मुझे जो कुछ कहना था सो मैं कह चुका, अब आपको जो मुनासिब जँचे सो कीजिए।

हरिदास की ये युक्ति-पूर्ण मधुर बातें सुनकर सभी को विशेष प्रसन्नता हुई। मुलुकपति भी सन्तुष्ट हुआ। किन्तु गोराई क़ाज़ी का इरादा मिट्टी में मिला जाता था, इसलिए उसने कहा—"हरिदास को बाक़ायदे सज़ा होनी चाहिए। नहीं तो इनकी देखा-देखी मुसलमान धर्म का अनिष्ट होगा—अन्यान्य मुसलमान भी हिन्दू-धर्म को ग्रहण कर सकेंगे।" गोराई क़ाज़ी की बात सुनकर मुलुकपति ने फिर हरिदास से कहा—देखो, अपने धर्मशास्त्र के अनुसार चलो, हरिनाम का जप करना छोड़ो, नहीं तो तुम्हें सज़ा भोगनी पड़ेगी।

हरिदास थे परमविश्वासी—परम भक्त। वे क्या किसी के शासन-भय से विचलित होकर अपने हृदय के इष्ट देवता का नाम छोड़ सकते थे? उन्होंने स्थिर गम्भीर भाव से कहा—यदि मेरी देह के टुकड़े-टुकड़े भी कर डाले जायँ तो भी मैं मधुर हरिनाम को न छोड़ूँगा।

हरिदास की यह बात मुलुकपति को बरदाश्त न हुई। उसने गोराई क़ाज़ी से पूछा—"तो बतलाओ अब क्या करना चाहिए?" गोराई ने ख़ुश होकर कहा—"इसे बाईस बाज़ारों में ले जाकर पीठ पर बेत मारे जायँ। बेत मार-मारकर ही इसकी जान ले ली जाय।" मुलुकपति ने इसी को ठीक समझ सिपाहियों को बुलाकर वैसा करने का हुक्म दे दिया। कठिन-हृदय सिपाही लोग नवाब के हुक्म को मान हरिदास को इस कठिन दण्ड से दण्डित करने के लिए ले गये, और एक-एक बाज़ार में ले जाकर भक्त की पीठ पर सड़ासड़ बेत मारने लगे। यह अमानुषिक मार देखकर सभी लोग हाहाकार करके दुःख प्रकट करने लगे। प्रत्येक स्थान के निवासियों ने पाषाण-सदृश सिपाहियों को इस हृदय-विदारक काम से रोका। किन्तु वे भला क्यों सुनने लगे? वे एक-एक कर बाईस बाज़ारों में ले जाकर बड़ी निठुरता से प्रहार करने लगे, किन्तु इतनी मार पड़ने पर भी हरिदास के प्राणों का निकलना तो अलग रहा, उन्होंने उफ़ तक नहीं की। वे स्थिर होकर प्रसन्नता से सब कुछ सहने लगे।

३

भगवद्भक्त बड़े क्षमाशील होते हैं। अपने ऊपर अत्याचार होने पर भी वे अत्याचारियों के भले के लिए परमेश्वर से प्रार्थना किया करते हैं। निष्ठुर सिपाही जब हरिदास की जान लेने के लिए उन्हें लगातार बेदरदी से पीट रहे थे तब उन्हें शाप देने या उन पर क्रोध करने का हरिदास ने विचार तक नहीं किया। इन दुष्टों का असत् आचरण देख उन्होंने बड़े व्यथित हृदय से चिरक्षमाशील मङ्गलमय परमेश्वर से इनके भले के लिए प्रार्थना की। उन्होंने कहा—भगवन्, मुझे जो ये लोग पीट रहे हैं सो तुम इसकी परवा न करना, इस अपराध से इन्हें मुक्त कर देना। तुम इन पर कृपा करो।

पीटनेवाले सिपाहियों ने प्रहार करते-करते देखा कि किसी तरह हरिदास के प्राण नहीं निकलते। तब वे डरकर सोचने लगे कि अगर इनकी जान न निकली तो मुलुकपति हम लोगों को ज़िन्दा न रहने देगा। इसलिए उन्होंने हरिदास को अपना इरादा बतलाकर कहा—"महाशय, हम लोग यदि आपके प्राण न ले सकेंगे तो हमारी प्राण-रक्षा का कुछ उपाय नहीं है।" कोमल-हृदय हरिदास उन दुष्टों की यह बात सुनकर दुखी हुए और उनकी रक्षा करने के लिए अपने योग-बल के प्रभाव से स्वयं अचेत होकर मुर्दे की तरह नीचे गिर पड़े। सिपाहियों का मनोरथ पूर्ण हो गया। वे हरिदास को सचमुच मुर्दा समझकर उनकी लाश को उठाकर मुलुकपति के

सामने ले गये। मुलुकपति और गोराई क़ाज़ी प्रभृति ने देखा कि हरिदास की जान तो सचमुच निकल गई। मुसलमानी रीति के अनुसार हरिदास की लाश को दफ़नाने की आज्ञा मुलुकपति को देते देख गोराई क़ाज़ी ने ऐतराज़ कर कहा—"हरिदास तो मुसलमानी धर्म छोड़कर हिन्दू हो गया था, उसे अगर हमारे धर्मानुसार क़बर दी जायगी तो उसे स्वर्ग-प्राप्ति होगी; अतएव उसकी लाश को गङ्गा में बहा देना ही ठीक है। ऐसा होने से काफ़िरों की तरह उसे नरक भोगना पड़ेगा।" अन्त में ऐसा ही किया गया। मुलुकपति के नौकरों ने हरिदास की मृतकल्प देह को उठाकर शुभ्रसलिला गङ्गा में फेंक दिया। जाह्नवी की प्रबल धारा उस देह को बहाकर ले चली। किन्तु हरिदास तो मरे नहीं थे। उन्होंने तो दुर्जय इच्छा-शक्ति के प्रभाव से अपनी चेतना को छिपा लिया था—आत्मा के साथ उस परमात्मा का तन्मयत्व प्राप्त कर लिया था। अब गङ्गा में बहते-बहते उन्हें चेत हुआ और उनकी देह किनारे पर आ लगी।

चारों ओर यह समाचार फैल गया। मुलुकपति, गोराई क़ाज़ी और अन्यान्य मुसलमान उनके दर्शनार्थ आये। हरिदास की यह अलौकिक शक्ति देख मुलुकपति विस्मित हुआ। उसने हाथ जोड़कर हरिदास के चरणों पर गिरकर कहा—"अब मैं समझ गया कि आप तो प्रत्यक्ष पीर हैं। मैंने आपके जो-जो अपराध किये हैं उनको दया करके क्षमा कीजिए।

अब आप स्वाधीनता-पूर्वक गङ्गा-किनारे निर्जन गुफा में, अथवा जहाँ तबीअत चाहे वहाँ, हरिनाम का कीर्तन किया कीजिए।" सभी ने हरिदास की साधुता, विनय और भगवन्निष्ठा देख भक्ति के असाधारण प्रभाव का अनुभव किया, बहुतों ने भक्ति मार्ग को अङ्गीकार कर लिया,—गोराई क़ाज़ी की निर्बुद्धिता दूर हुई। वह भी भगवद्भक्ति की अभिनव शक्ति का अनुभव करने लगा।

अब हरिदास अपने प्राणप्रिय सुधामिश्रित हरिनाम का कीर्तन करते हुए ब्राह्मण-प्लावित फुलिया गाँव में आ पहुँचे। हरिदास को देख सभी परम पुलकित हुए। बड़े आनन्द से ब्राह्मणों ने हरिध्वनि की। हरिदास भी प्रेम में विभोर होकर हरिध्वनि करते हुए नृत्य करने और बीच-बीच में नीचे धूल में लोटने लगे। अश्रु, कम्प, हास्य और पुलक प्रभृति भक्ति के लक्षण उनमें प्रकट होने लगे। थोड़ी देर में जब कुछ उच्छ्वास शान्त हुआ तब ब्राह्मण उन्हें घेरकर खड़े हुए और उन पर जो अनुचित अत्याचार किया गया था उसके लिए दुःख प्रकट करने लगे। हरिदास ने बड़े विनीत भाव से कहा—"विप्रगण, इन पापी कानों के द्वारा मैंने निन्दा सुनी थी इसी लिए परमेश्वर ने मुझे दण्ड दिया था। उसके लिए आप लोग खेद न करें।" इसके अनन्तर बड़े आनन्द के साथ वे हरि-संकीर्तन करने लगे।

हरिदास अब निर्मल-सलिला जाह्नवी के किनारे आश्रम बनाकर रहने लगे। उनकी पवित्र मूर्त्ति के दर्शन करने

को फुलिया के बहुत लोग वहाँ नित्य आया करते थे। इस समय एक अद्भुत घटना हुई। जो लोग उस आश्रम में आया करते थे उनकी देह में जलन होने लगती थी। पहले-पहल किसी की समझ में न आया कि ऐसा क्यों होता है। अन्त में ओझाओं ने कहा कि इस आश्रम के नीचे बड़ा भारी साँप रहता है। उसी के ज़हर के मारे यहाँ की हवा ज़हरीली हो गई है। यह सुनकर सब लोगों ने हरिदास से उक्त गुफा छोड़ देने का अनुरोध किया। तब उन्होंने सब लोगों की सम्मति का आदर किया सही किन्तु वहाँ से हटने का उनका इरादा न था। वैष्णव-लेखकों ने लिखा है कि इसके अगले दिन जब वे सबके साथ प्रेमानन्द से हरि-कीर्तन में निरत थे तब विचित्र चित्रों से चित्रित एक बड़ा भारी साँप, उस आश्रम के तलदेश से, अपने आप निकलकर चला गया। यह अद्भुत घटना देखकर सभी को अचरज हुआ।

हरिदास जब फुलिया में रहते थे तब वहाँ एक और घटना हुई थी। उस समय "डङ्क" नामधारी एक श्रेणी के लोग थे जो मृदङ्ग और मँजीरा लेकर नाच-गान किया करते थे। एक दिन एक डङ्क, किसी धनवान् के घर, नृत्य कर रहा था। इसी समय दैवयोग से वहाँ हरिदास पहुँच गये। वह डङ्क बहुत लोगों के बीच कालिय-दमन का गीत गा रहा था। उस गीत को सुनने से हरिदास को भाव का उदय हुआ। इसलिए वे भी सबके साथ-साथ "हरि हरि" कहकर नृत्य

करने लगे। लोगों को सच्चे भक्त का परिचय भगवान् स्वयं दिया करते हैं। हरिदास की प्रेम-विगलित अश्रुधारा और उनका नृत्य देखकर डङ्क मोहित हो गया। वह हाथ जोड़कर एक ओर खड़ा हो गया। इसके पश्चात् उसने फिर नाचना आरम्भ किया।

उस समय वहाँ पर एक ब्राह्मण भी तमाशा देख रहा था। वह हरिदास पर लोगों की श्रद्धा-भक्ति देख सोचने लगा कि यदि मैं भी हरिदास की तरह नाचूँ और भावाविष्ट व्यक्ति की भाँति पृथ्वी में लोटने लगूँ, तो लोग मेरी भी श्रद्धा-भक्ति करेंगे। बस, यह सोचकर ब्राह्मण देवता नाचने और पृथ्वी में गिर-गिर कर लोटने भी लगे। किन्तु ब्राह्मण देवता की इस करतूत से चिढ़कर डङ्क उन्हें पीटने लग गया। लोगों ने उससे पूछा—"तुमने हरिदास का नृत्य और भावावेश देखकर तो श्रद्धा-भक्ति प्रकट की, और इस ब्राह्मण पर इस तरह रूठ गये। इसका कारण क्या है?" डङ्क ने उत्तर दिया—यह ब्राह्मण कपटी है। यह तो लोगों से पूर्वोक्त प्रकार की श्रद्धा-भक्ति प्राप्त करने के लिए ढोंग कर रहा है। हरिदास परम साधु पुरुष हैं, उनका नृत्य देखने से मनुष्य भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है। भक्त हरिदास के साथ साक्षात् श्रीकृष्ण नृत्य करते हैं इसलिए उनके नृत्य को देखने से नर-नारी पवित्र हो जाते हैं।

डङ्क ने इस प्रकार हरिदास के गुणों का वर्णन करते-करते कहा—विधाता की आज्ञा से जन्म लेकर हरिदास लोगों को

यह शिक्षा देते हैं कि जाति और कुल सब निरर्थक है, नीचवंश में उत्पन्न होकर भी यदि कोई हरि-भक्त हो तो वह पूजनीय है। यही सब शास्त्रों का मत है।

हरिदास के दर्शनों से अपने को कृतार्थ मान डङ्क ने सब लोगों से कहा—तुम लोग बड़े भाग्यवान् हो। आज तुम्हारे ही प्रसाद से मुझे ऐसे साधु के दर्शन हुए हैं और मैंने अपने मुँह से थोड़ा-बहुत इनके गुणों का कीर्तन किया है।

४

हरिदास जिस समय फुलिया गाँव में रहते थे उस समय, बीच-बीच में, शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर जाया करते थे। अद्वैताचार्य उस समय किसी महापुरुष के आगमन के लिए लगातार प्रार्थना और उपवास आदि किया करते थे। शके १४०७ में श्रीचैतन्य देव ने नदिया नगरी में जन्म ग्रहण किया। जिस समय उन्होंने जन्म लिया उस समय अद्वैताचार्य हरिदास के साथ अपने घर आनन्द से नृत्य कर रहे थे। उन्होंने सोचा कि यही शची-कुमार भविष्यत् में वैष्णव धर्म की मधुरता का प्रचार विशेष रूप से करेंगे और तब हमारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा।

हरिदास एक बार हरिनदी नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ किसी शास्त्रवेत्ता ने उनसे पूछा—"हरिदास, तुम उच्च स्वर से हरिनाम-कीर्तन क्यों किया करते हो? ज़ोर-ज़ोर से हरिनाम

का जप करने की विधि किस ग्रन्थ में लिखी है ? नाम की साधना तो मन ही मन में करनी चाहिए।" हरिदास ने उत्तर दिया—"ज़ोर ज़ोर से उनका उच्चारण करने से औरों का भी भला होता है, इसी लिए मैं उच्च कण्ठ से हरिनाम का गान किया करता हूँ।" हरिदास का यह उत्तर सुनकर शास्त्रवेत्ता महाशय नाराज़ होकर उन्हें चिढ़ाने लगे।

उस समय सप्तग्राम में हिरण्य और गोवर्द्धन मजूमदार नामक दो प्रसिद्ध ज़मींदार रहते थे। उनके कुल-पुरोहित का नाम बलराम आचार्य था। हरिदास प्रायः उन्हीं के घर पहुँच जाते थे। हरिदास की अपूर्व भगवत्प्रीति देख बलराम आचार्य उन्हें बहुत मानते थे। एक दिन वे हरिदास को हिरण्य मजूमदार की सभा में ले गये। हिरण्य और गोवर्द्धन दोनों भाइयों ने हरिदास का यथोचित सम्मान किया। जब हरिदास बैठ गये तब एक पण्डित ने उनसे हरिनाम के माहात्म्य-सम्बन्ध में चर्चा की। हरिदास ने हरिनाम के माहात्म्य का वर्णन करके कहा—"भक्ति-पूर्वक हरि का नाम लेने से जीव के हृदय में जो भक्ति-प्रेम का सञ्चार होता है वही हरिनाम लेने का फल है।" उस पण्डित के साथ इसी प्रकार बात-चीत हो रही थी कि ज़मींदारों के गोपालचन्द्र चक्रवर्ती नामक एक कर्मचारी ने सभा के लोगों को सम्बोधन करके कहा—"यह आदमी कहता है कि हरिनाम लेने से ही मनुष्य को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह भावुक है।" ब्राह्मण

की बात सुनकर हरिदास ने विनीत भाव से, नाम-माहात्म्य के सम्बन्ध में, अपना वक्तव्य प्रकट किया। इस पर उसने और भी क्रुद्ध होकर कहा—"यदि हरिनाम का स्मरण करने से मनुष्य की नीचता जाती रहे तो मैं अपनी नाक काट डालूँगा।" भक्त हरिदास ने अत्यन्त दृढ़ता के साथ कहा—हरिनाम का स्मरण और जप करने से यदि मनुष्य को मुक्ति की प्राप्ति न हो तो मैं भी अपनी नाक काट डालूँगा।

भक्त के साथ गोपाल चक्रवर्ती का यह व्यवहार देख सभा के सभी लोगों ने अत्यन्त असन्तोष प्रकट किया। हिरण्य और गोवर्द्धनदास ने रुष्ट होकर अपने कर्मचारी गोपालचन्द्र को बर्ख़ास्त कर दिया।

उस समय नवद्वीप में श्रीचैतन्य देव हरिनाम-सङ्कीर्तन के द्वारा सबके प्राणों में सुधा की वर्षा कर रहे थे। उनका प्रचार-संवाद सर्वत्र घोषित हो गया था। इस समाचार को पाकर भक्त हरिदास नवद्वीप जा पहुँचे। इनके मुखमण्डल में अनुपम ज्योति और इनका भक्तिभाव देख गौर ने इन्हें भक्त-मण्डली में सम्मिलित कर लिया। हरिदास यद्यपि मुसलमान थे, किन्तु श्रीचैतन्य उन्हें सच्चरित्र, भगवद्भक्त ब्राह्मण के लिए प्राप्य भक्ति प्रदान करते थे। एक बार श्रीवास के घर श्रीगौराङ्ग का महाप्रकाश हुआ। इस उपलक्ष्य में भक्तों ने उनका अनेक सामग्रियों से अभिषेक किया। भावावेश में श्रीचैतन्य ने उस दिन अपने शिष्यों को उनके प्रार्थित विषय बतलाये थे। हरि-

दास अपने को अत्यन्त हीन समझते थे, इसलिए वे सबके पीछे छिपे बैठे थे। गौर की आज्ञा पाकर जब वे सामने आये तब प्रभु ने उनसे कहा—हरिदास, मेरी इस देह की अपेक्षा तुम्हीं श्रेष्ठ हो; जो जाति तुम्हारी है वही मेरी है। जब पापी मुसलमान तुम्हें हर एक बाज़ार में घुमा-फिराकर तुम्हारी पीठ पर सड़ासड़ बेत मार रहे थे तभी उनका दमन करने के लिए मैंने अवतार लिया था। तुम्हारी पीठ पर जो बेत लगते थे उनकी चोट के चिह्न मेरी पीठ पर मौजूद हैं। किन्तु तुम में अपूर्व धैर्य है! तुमने पीटनेवालों के भले के लिए भगवान् से प्रार्थना की थी! भाई हरिदास, मैं तो सदा तुम्हारी देह में रहता हूँ। जो व्यक्ति शाम को भी एक बार तुम्हारा पवित्र साथ कर लेता है और तुम्हारी भक्ति करता है उसको मैं ही प्राप्त हो जाता हूँ।

गौर की ये बातें सुनकर हरिदास नीचे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। किन्तु गौरचन्द्र ने हाथ पकड़कर उन्हें उठा लिया और कहा—"हरिदास, हमारे प्रकाश के दर्शन करो।" गौरचन्द्र की बात सुनने से हरिदास की मूर्च्छा टूटी। वे उठ बैठे। उनकी आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे।

गौर तो हरि-प्रेम में सदैव उन्मत्त रहा करते थे; जिस नाम का रसास्वादन करने में उन्हें अपार आनन्द और तृप्ति होती थी उसे मनुष्यों में वितरण करने के लिए वे व्याकुल हो गये। अद्वैत, नित्यानन्द, श्रीवास और हरिदास प्रभृति के साथ

कीर्तन का सुख लूटकर ही वे शान्त न रह सके। एक दिन गौरचन्द्र श्री विष्णुप्रिया के साथ बैठे थे कि उन्होंने नित्यानन्द और हरिदास को बुलाकर कहा--नगर में चारों ओर घूम-फिरकर तुम दिन भर नर-नारियों के बीच हरिनाम की घोषणा किया करो और सन्ध्या-समय हमारे पास आकर दिन भर का प्रचार-वृत्तान्त सुनाया करो।

गौर की आज्ञा पाकर नित्यानन्द और हरिदास मधुमय हरिनाम की घोषणा करने के लिए बस्ती में पहुँचे। नवद्वीप के निवासी कहने लगे—"निमाई पण्डित आप तो पागल हुए ही हैं, अब इन्हें भी उन्होंने पागल कर दिया है।" किन्तु ये दोनों प्रचारक, लोगों की सब बातों को अनसुनी करके, उनके परित्राण के लिए घर-घर जाकर नाम का प्रचार करने लगे। उनके प्रचार-कार्य से कितने ही शुष्क हृदय सरसता के मार्ग पर, अनेक पापासक्त मन पुण्य के मार्ग पर आ गये; संसारी कामों में उलझे हुए अनेक हृदय वैराग्य की ओर आकृष्ट हुए। ये दोनों भक्त दिन भर के प्रचार का वृत्तान्त सन्ध्या-समय भक्त-कुल-चूड़ामणि श्रीगौराङ्ग को सुनाते थे। इसी समय नवद्वीप में महापापी जगाई और मधाई का उद्धार हुआ था।

५

१४३१ शकाब्द में गौर ने संन्यास धारण करके वृन्दावन और दक्षिण देश के स्थानों में भ्रमण करके पुरुषोत्तम पुरी में

पदार्पण किया। वहाँ उनके आ जाने का समाचार वङ्गदेश में घोषित करने के लिए नित्यानन्द ने जगदानन्द और कृष्णदास को भेजा। कृष्णदास ने शान्तिपुर में जाकर यह संवाद अद्वैताचार्य को सुनाया। गौर के पुरी में पधारने का समाचार चारों ओर फैल गया। नवद्वीप में भी यह ख़बर पहुँची। बहुत दिनों तक तीर्थ-यात्रा करने के अनन्तर गौर श्रीक्षेत्र में आये हैं, यह समाचार सुनने से चारों ओर आनन्द होने लगा। श्रीचैतन्य देव के शिष्य इस शुभ समाचार को सुनकर आनन्द से पुलकित हो उठे, और उनके दर्शन करने की लालसा से श्रीक्षेत्र की यात्रा करने को तैयार हुए। इसके लिए वे लोग शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर पहुँचे। अद्वैत के घर आनन्दोत्सव-सा होने लगा। जिनके प्रेम-पूर्ण मुख को देखने और जिनकी रसना से निकले हुए हरिनाम को सुनने से सहस्र-सहस्र लोगों के चित्त में भक्ति की धारा प्रवाहित होती है, बहुत दिनों के बाद उन्हीं के मुख को देखने और उसी मुँह से प्राणप्रद मधुर हरिनाम सुनने के लिए भक्तों का मन-मयूर नृत्य करने लगा। वे लोग दल-बद्ध होकर गौर के दर्शन करने के लिए पुरी की ओर चले। अद्वैताचार्य इस दल के मुखिया हुए। भक्त हरिदास भी इस दल के साथ थे। दो सौ मनुष्य दुर्गम मार्ग से पुरी की ओर चले और कोई बीस दिन में अपने गन्तव्य स्थल में जा पहुँचे। उनके आगमन का समाचार बस्ती में पहुँचने पर उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्र और सार्वभौम आचार्य

प्रभृति जैसे महामान्य व्यक्ति श्रीकृष्ण चैतन्य के शिष्यों को देखने के लिए घर की छतों पर जा खड़े हुए। अद्वैत प्रमुख दो सौ गौर-शिष्य पंक्ति-बद्ध होकर बस्ती में जाने लगे। गौर ने स्वयं खड़े होकर भक्तों से सम्भाषण किया। उन्होंने भली भाँति चारों ओर देखा, परन्तु एक व्यक्ति उन्हें कहीं न देख पड़ा। वह कौन? हरिदास। उनके प्राणप्रिय हरिदास कहाँ हैं? उन्होंने व्याकुल होकर पूछा—"हमारे हरिदास कहाँ है?" भक्तों ने उत्तर दिया—"हरिदास अपने तईं बहुत ही दीन-हीन समझते हैं और इसी कारण श्रीक्षेत्र आने का अपने को अधिकारी न समझ वे रास्ते में ही रह गये हैं।" गौर ने भक्तों को समुद्रस्नान के अनन्तर ठहरने के लिए स्थान बतला दिया और आप हरिदास को बुला लाने के लिए उनके समीप गये तो क्या देखा कि वे धरती पर पड़े-पड़े हरिगुण-गान कर रहे हैं। गौर ने उनका हाथ पकड़कर कहा—"यहाँ क्यों पड़े हो? हमारे साथ चलो।" हरिदास ने कहा—"प्रभो, मैं पापी और बहुत ही हीन हूँ।" उनकी नम्रता और सौजन्य को गौर पहले ही सुन चुके थे। इसलिए उन्होंने कहा—हरिदास, तुममें जो पवित्रता है वह मुझमें नहीं है। अतएव, मैं अपने लिए निर्मलता प्राप्त करने को तुम्हारी देह का स्पर्श करता हूँ। समग्र तीर्थों और यज्ञों का दर्शन तुम्हीं में होता है। पवित्र हरि-नाम का उच्चारण करते-करते तुम्हारी जीभ से निरन्तर वेदध्वनि हुआ करती है। तुम तो संन्यासी ब्राह्मण से भी बढ़कर हो।

गौराङ्ग प्रभु ने इससे पहले ही उड़ीसा के राज-पुरोहित काशी मिश्र की अनुमति प्राप्त करके उनके पुष्पोद्यान में हरिदास के रहने के लिए एक कुटी बनवा रक्खी थी। अब उसी कोलाहल-शून्य एकान्त कुसुमोद्यान में वे भक्त हरिदास को ले गये। परम साधनशील हरिदास इस बाग़ की निर्जन कुटी को देख परम प्रसन्न हुए। गौर ने कहा—"हरिदास, इस कुटी में रहकर आनन्द-पूर्वक नाम का जप किया करना; और यहाँ से जगन्नाथजी के मन्दिर की चोटी भी देखा करना।" इधर भक्त लोग जब स्नान करके प्रभु के स्थान में पहुँचे तब उन्हें महाप्रसाद परोसा गया। सब लोग हरिध्वनि करते हुए भोजन करने को बैठ, गौर ने हरिदास के लिए गोविन्द के हाथ महाप्रसाद भिजवा दिया। इस समय हरिदास की अवस्था ६२। ६३ वर्ष की हुई होगी। श्रीपुरी धाम में इस विहग-कूजित निर्जन पुष्पोद्यान के बीच भक्त हरिदास बड़े आनन्द से हरिनाम का जप और कीर्तन करने लगे।

गौर के पुरी में रहते समय 'रूप' और 'सनातन' उनकी सङ्गति प्राप्त करने के लिए पहुँचे। पहले 'रूप' और फिर 'सनातन' पुरी में आये। दोनों भाइयों ने वहाँ जाकर हरिदास की कुटी में आतिथ्य ग्रहण किया। हरिदास के साथ भगवच्चर्चा करके वे परम प्रसन्न हुए।

गौर प्रतिदिन हरिदास की कुटी में जाकर कुछ समय तक हरिनाम की चर्चा किया करते थे। एक दिन उन्होंने पूछा—

"हरिदास, ये यवन लोग जो गोहत्या आदि के द्वारा अपने जीवन को कलङ्कित करते रहते हैं सो इनका परित्राण क्योंकर होगा ?" हरिदास ने कहा—"मुसलमान लोग जो 'हराम' कहा करते हैं न,—अर्थात् 'हा, राम !'—यह नामोच्चारण ही उनकी रक्षा करेगा।" इसी प्रसङ्ग में श्रीचैतन्य ने पूछा—"ये जो स्थावर, जङ्गम आदि हैं सो उनका भी परित्राण होगा न ?" हरिदास को हरिनाम में अटल विश्वास था इस कारण उन्होंने कहा—प्रभो, तुम जो उच्च स्वर से हरिनाम का कीर्तन करते हो सो उस ध्वनि से चराचर ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी मुक्त हो जायँगे।

६

धीरे-धीरे हरिदास को बुढ़ापा घेरने लगा। अब उनकी देह में मृत्यु के सभी लक्षण प्रकट होने लगे। फिर भी मधुर हरिनाम का कीर्तन करने से उन्हें फ़ुरसत नहीं। गोविन्द प्रतिदिन उनके लिए महाप्रसाद दे जाया करते थे। एक दिन महाप्रसाद लाकर उन्होंने देखा कि हरिदास बिछौने पर पड़े-पड़े क्षीण स्वर में हरिगुण कीर्तन कर रहे हैं। गोविन्द ने कहा—"हरिदास, लो मैं महाप्रसाद ले आया हूँ।" उन्होंने क्षीण स्वर में उत्तर दिया—"आज मुझे भोजन करने की इच्छा नहीं है।" फिर उन्होंने कुछ सोचा और पात्र से थोड़ा सा प्रसाद लेकर खा लिया। गोविन्द समझ गये।

चरण पकड़कर हरिदास ने कहा—"प्रभो, मैं बहुत बड़ा अधम हूँ; मेरे शिरोमणि कितने ही भक्त तुम्हारी लीला में सहायक होंगे। मेरे सदृश साधारण कीट के मर जाने से तुम्हारी लीला में तनिक भी व्याघात न पहुँचेगा। तुम भक्त-वत्सल हो, अवश्य ही मेरी वासना को पूर्ण करोगे।" इधर दिन चढ़ आया। स्नान और भोजन करने के लिए गौर अपने स्थान पर गये। वे समझ गये कि हरिदास का जीवन-प्रदीप अब शान्त होने पर है। अगले दिन सबेरे वे भक्तों के साथ हरिदास की कुटी में आये। हरिदास ने सभी के पैर छुए। गौर ने पूछा—"हरिदास, क्या ख़बर है?" उन्होंने उत्तर दिया—"प्रभो, आपने मुझे जिस प्रकार रक्खा है उसी प्रकार हूँ।" श्रीकृष्ण चैतन्य और उनके भक्तों ने देखा कि हरिदास के लिए मानो एक ज्योतिर्मय शान्तिराज्य का द्वार खुल रहा है! वे इस मर्त्यधाम को शीघ्र ही छोड़कर उस राज्य में प्रवेश करेंगे। जिस मधुर नाम को उन्होंने अपने जीवन का पाथेय बना लिया था, उसी विश्वविजयी भगवान् के नाम का हरिदास के बिछौने के चारों ओर कीर्तन किया जाने लगा। मृदङ्ग और करताल बजाये जाने लगे। कीर्तन के शब्द से मानो पुरुषोत्तमपुरी का आकाश प्रतिध्वनित होने लगा। गौर के पारिषदों में से रामानन्द राय और सार्वभौम आचार्य जैसे महामान्य व्यक्ति, मुमूर्षु हरिदास की शय्या के बग़ल में खड़े होकर भक्त का सजीव चित्र देखने और उनकी गुणावली का वर्णन करने लगे। हरिदास

के प्राण अभी तक शरीर में ही थे। एक-एक कर सभी भक्त उस भक्तात्मा की चरण-वन्दना करने और चरण-रज लेने लगे।

अब विलम्ब नहीं है; हरिदास की प्रार्थना से गौरचन्द्र आँखों में आँसू भरकर उनके आगे जा बैठे। हरिदास ने अपने दुर्बल हाथों से प्रभु के चरणों को उठाकर अपने वक्षःस्थल पर रख लिया और उस अनुपम मुख की ज्योति को देखने लगे। पलकों का गिरना बन्द हो गया—जीभ से श्रीकृष्णचैतन्य नाम उच्चरित होने लगा। देखते-देखते रसना एकदम रुक गई। हरिदास की अमर आत्मा अनन्त धाम में जाकर मिल गई।

हरिदास के मृत शरीर को उठाकर गौर नृत्य करने लगे। इसके पश्चात् वह मृत देह विमान में रक्खी गई। भक्तों के साथ कीर्तन करते हुए गौर उस विमान को आगे किये समुद्र की ओर चले। आगे-आगे वे स्वयं नृत्य करते जाते थे। चिर-प्रवाहित समुद्र के नीर में हरिदास की मृत देह को नहलाया गया। गौर ने कहा—आज से समुद्र का जल महातीर्थ के रूप में परिणत हुआ।

अब स्वयं गौराङ्गदेव ने और उनके शिष्यों ने यवन हरिदास का चरणामृत पिया। फिर उनकी देह में चन्दन आदि लगाकर कौपीन पहनाई गई। मुँह में महाप्रसाद देकर उनकी मृत देह समुद्र-किनारे बालू खोदकर गाड़ दी गई। गौर ने अपने हाथ से मृत देह के ऊपर मिट्टी पूरी। देह के समाधिस्थ हो जाने पर "हरि बोलो" की ध्वनि से चारों दिशाएँ

निनादित हो उठीं। जगन्माता की गोद में हरिदास विराजने लगे। भक्त लोग थोड़ी देर तक समाधि के चारों ओर कीर्तन करके समुद्र-जल में स्नान करने गये। फिर कीर्तन करते हुए अपने स्थान पर लौट आये।

परलोक-गत आत्मा के प्रति श्रद्धा प्रकट करना मानव-समाज की बहुत पुरानी प्रथा है। हरिदास के स्वर्गारोहण करने पर, उत्सव करने के लिए, गौरसुन्दर सिंहद्वार के दूकान-दारों से भिक्षा माँगने लगे। श्रीचैतन्य देव को स्वयं भिक्षा माँगते देख दूकानदारों ने अपनी दूकान की चीज़ें विपुल परिमाण में दीं। अन्त में स्वरूप गोस्वामी ने प्रभु को स्थान पर लौटाकर अन्य चार वैष्णवों के साथ भिक्षा माँगी। हरिदास के नाम पर वे लोग बहुत-सी चीज़ें माँग लाये। चैतन्य देव की इच्छा से बहुत लोगों को निमन्त्रण दिया गया। निर्दिष्ट तिथि को सब लोग एकत्र होकर भोजन करने बैठे। प्रभु स्वयं परोसने को खड़े हुए। गौर के हाथ बहुत बड़े-बड़े हैं। वे एक व्यक्ति की पत्तल में इतना अधिक सामान परोसने लगे जो चार जनों के लिए काफ़ी हो। सभी लोग बड़े आनन्द के साथ हरिध्वनि करते हुए भोजन करने लगे। इस महोत्सव में श्रीचैतन्य देव प्राण-सम परम भागवत हरिदास के गुणों का वर्णन करके बोले—"हरिदास के लिए सब लोग जयध्वनि करो।" अब वे प्रेमानन्द से नृत्य करने लगे। सभी ने जय-जय शब्द से हरिदास की जयध्वनि की।

रामानन्द राय

१

उड़ीसा में करणवंशी राजा भवानन्द नामक एक साधु-पुरुष रहते थे। उनके पाँच पुत्र थे। गोपीनाथ, वाणीनाथ और रामानन्द के सिवा अन्य दो भ्राताओं के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। भवानन्द उच्च राजकर्मचारी होकर सम्मान के साथ काम करते थे। गोपीनाथ मालजेठा प्रदेश के शासक थे। इसी प्रकार वाणीनाथ भी उच्च पद पर प्रतिष्ठित थे। रामानन्द राय गोदावरी प्रदेश के शासक थे। ये सुपण्डित थे और राज्यशासन का गुरुतर भार लिये रहने पर भी भगवद्भक्ति की पराकाष्ठा दिखला गये हैं। ऐश्वर्य, भगवत्प्रेम और पाण्डित्य ने एकत्र होकर उनके जीवन को मधुमय कर दिया था। परम भक्त और पण्डित के नाते उनके यश का सौरभ चारों ओर फैल गया था।

श्रीचैतन्य देव पुरी से जब दक्षिण देश की यात्रा करने को निकले तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने उनसे रामानन्द राय के साथ भेट करने का अनुरोध करके रामानन्द की प्रशंसा की। रामानन्द की कृष्ण-भक्ति का समाचार पाकर गौर ने उनसे

भेंट करने का निश्चय किया। श्रीचैतन्य दक्षिण देश के अनेक स्थानों में भ्रमण करके गोदावरी-किनारे पहुँचे। गोदावरी के तट पर सुन्दर जङ्गल और निर्मल जल देखकर उनके मन में वृन्दावन का भाव उदित हुआ। निर्मल जलवाली गोदावरी उन्हें यमुना जँचने लगी और उसके किनारे का घने पल्लवों से ढका हुआ वन वृन्दावन प्रतीत हुआ। वृन्दावन का स्मरण हो आने से उनका मन उन्मत्तप्राय हो गया। इस कारण वे स्थिर न रह सके; गोदावरी-किनारे के वन में घुसकर आनन्द से हरि-गुण कीर्तन करते हुए नाच करने लगे। इस स्थान का नाम विद्यानगर है। जङ्गल में गौरचन्द्र नाच रहे थे, इसी समय उन्होंने बाजों की ध्वनि सुनी। उन्होंने ज़रा आगे बढ़कर देखा कि एक व्यक्ति बहुत लोगों से घिरकर पालकी में बैठा चला आ रहा है। उसके साथ-साथ बाजे बजते आ रहे हैं और ब्राह्मण लोग वेद-पाठ कर रहे हैं। देखते-देखते वे लोग नदी-किनारे आ गये। पालकी का सवार जब नदी में उतरा तब सेवकों ने भली भाँति उसके शरीर को धो-पोंछकर स्नान कराया। गौर उस समय नदी-किनारे एक वृक्ष की छाँह में बैठे थे।

श्रीचैतन्य ने सार्वभौम के मुँह से रामानन्द राय का जैसा कुछ वर्णन सुना था उससे वे समझ गये कि यही रामानन्द राय हैं। रामानन्द ने भी नहा-धोकर देखा कि एक सुन्दर गोरे रङ्ग का युवा पुरुष वृक्ष की छाया में बैठा है। इस

नवीन संन्यासी के रूप-लावण्य और इसकी अपूर्व मुख-ज्योति देखकर वे अपने दलसहित उनके समीप आये और उन्हें असाधारण पुरुष जानकर प्रणत हुए।

रामानन्द राय ने ज्योंही गौर के चरणों में प्रणाम किया त्योंही उन्होंने पूछा—"क्या आप ही रामानन्द राय हैं?" रामानन्द थे तो विद्यानगर के राजा किन्तु इतने पर भी अत्यधिक विनयी थे। उन्होंने विनीत भाव से उत्तर दिया—"जी हाँ, मैं ही वह अधम शूद्र हूँ।" तब श्रीचैतन्य ने उन्हें अपने वक्षःस्थल से लगाकर कहा—"मेरा बड़ा सौभाग्य है जो आज आपसे भेंट हो गई।" भक्त के साथ भक्त के मिलन का बड़ा ही अपूर्व दृश्य होता है। रामानन्द को श्रीकृष्ण चैतन्य का परिचय प्राप्त हुआ। तब परस्पर दोनों एक-दूसरे के चरणों पर लोटने लगे। दोनों के हृदय से प्रेम का फ़व्वारा उड़ने लगा। दोनों की जीभ से हरिनाम का उच्चारण होने लगा। दोनों की आँखों से आँसू बहने लगे।

जो लोग राजा रामानन्द के साथ थे वे इस अद्भुत दृश्य को देखने लगे। पहले तो वे सभी श्रीकृष्ण चैतन्य की कम उम्र, कच्चे सोने जैसा रङ्ग और उनके मुख की स्वर्गीय ज्योति देखकर विमुग्ध हो गये, फिर जब उन्होंने देखा कि हमारा राजा रामानन्द राय एक संन्यासी के आगे बालक की भाँति उसके चरणों पर लोट रहा है तब उनके अचरज का ठिकाना न रहा। श्रीचैतन्य और रामानन्द कुछ देर तक आपस में

प्रेमालिङ्गन और हरि-चर्चा करने के बाद चुप हो गये। चैतन्य देव ने रामानन्द राय से कहा—"सार्वभौम भट्टाचार्य ने आपके गम्भीर तत्त्वज्ञान और अपूर्व कृष्णानुराग का उल्लेख करके आपसे भेंट करने के लिए मुझसे कहा था। इसी कारण आज आपसे मिलकर मेरा हृदय आनन्द से उत्फुल्ल हो रहा है। आपके शरीर का स्पर्श करने से मेरे प्राणों में कृष्ण-प्रेम की धारा बह रही है। आप परम भागवत हैं।" श्रीकृष्ण चैतन्य के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर रामानन्द ने कहा—सार्वभौम भट्टाचार्य ने इस अधम का उद्धार करने के लिए ही आपको यहाँ भेजा है। मैं दुनियादार आदमी हूँ और आप साक्षात् नारायण हैं। आज जो सैकड़ों आदमी मेरे साथ आये हैं ये सभी आपके दर्शन करके कृतार्थ हो गये। आपके मुँह से निकली हरिध्वनि सुनने से इनका भला होगा। यह देखिए, कितने आदमी हरिनाम का कीर्तन कर रहे हैं! क्या यह साधारण मनुष्य के गुण से हो सकता है? मेरा परम सौभाग्य है कि आज आपके दर्शन हो गये।

रामानन्द के साथ श्रीकृष्ण चैतन्य की इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि एक ब्राह्मण ने चैतन्य देव को अपने यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण दिया। रामानन्द राय ने कहा—"आप अधम पर कृपा करने को जब यहाँ पधारे ही हैं तब छः-सात दिन तक यहीं ठहरिए। आपके साथ भगवत् की चर्चा करके जीवन को शीतल करूँगा।" रामानन्द की बात मानकर

श्रीचैतन्य ने कई दिनों तक विद्यानगर में ठहरना स्वीकार कर लिया। उन्होंने रामानन्द से कहा—"मुझे बड़ी इच्छा है कि तुम्हारे मुँह से कृष्ण का गुण-गान सुनूँ।" अब रामानन्द उनके चरणों में प्रणाम करके अपने घर को गये। बाजेवाले उनके साथ बाजे बजाते चले गये।

२

दिन डूबने पर रामानन्द राय ने श्रीकृष्ण चैतन्य के समीप जाकर उनके चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। चैतन्य ने भी राय को गाढ़ आलिङ्गन प्रदान किया। अन्त में भक्ति-तत्त्व की आलोचना करने के लिए दोनों एक निर्जन कुटी में गये। श्रीचैतन्य रामानन्द राय से भक्ति-तत्त्व विषयक प्रश्न करने लगे। वे उनके प्रश्नों का उत्तर देने लगे।

उस दिन बहुत रात बीते तक आलोचना होती रही। रात बीतने पर श्रीकृष्ण चैतन्य को प्रणाम करके राय ने कहा—आप यहाँ दस दिन तक ठहरकर कृपा वितरण कीजिए।

अब वे अपने घर चले गये। सायङ्काल के समय वे फिर एकान्त स्थान में जा बैठे। वही चर्चा छिड़ गई। दस रात तक चैतन्य देव के साथ रामानन्द की भक्ति-विषयक बात-चीत होती रही। चैतन्य ने रामानन्द से कहा—"यहाँ पर तुमसे कृष्णतत्त्व की नई बातें सुनकर मैं अत्यन्त सुखी हुआ।" रामानन्द ने विनीत भाव से उत्तर दिया—प्रभो, तुमने मुझसे

जो कुछ कहलाया है वही मैंने कहा है। तुमने अपनी ही बातें मेरे मुँह से प्रकट करा ली हैं। मैं हूँ ही किस लायक़!

इस प्रकार दस दिन बीतने पर जब चैतन्य देव बिदा होने लगे तब रामानन्द रोते हुए उनके चरणों पर गिरे। लिखा है कि उस समय वे अचेत हो गये थे। श्रीचैतन्य ने प्रेमावेश में उनकी देह को छूकर उन्हें सचेत किया और हाथ पकड़कर उनको उठाकर बिठाया। फिर गाढ़ आलिङ्गन करके कहा— मैं अब पुरी को जाता हूँ; तुम राज-काज छोड़-छाड़कर मेरे पास चले आना। वहाँ हम-तुम भगवान् की चर्चा किया करेंगे।

३

भक्त लोग अनेक अवसरों पर साहित्य की चर्चा में विशेष आनन्दित हुआ करते हैं। रूप, सनातन और नरोत्तम दास आदि नाटक एवं कविता प्रभृति की रचना करके भाषा की पुष्टि और धर्म-प्रचार की सहायता कर गये हैं। रामानन्द राय ने भी साहित्य के बीच होकर धर्म के मधुर भाव का प्रचार करने के लिए नाटक बनाया था। एक दिन प्रभु के अनुगत शिष्य प्रद्युम्न मिश्र ने प्रभु के समीप आकर कहा— "कृपा करके मुझे कृष्णतत्व सिखाइए।" श्रीचैतन्य ने कहा— "तुम रामानन्द राय के समीप जाओ। वे तुम्हें यह विषय भली भाँति सिखा देंगे।" प्रद्युम्न मिश्र गुरुदेव से यह बात सुन-

कर रामानन्द के घर गये। वे उस समय घर में ही थे। उनके नौकर ने मिश्र से बैठने के लिए कहा। मिश्र के यह पूछने पर कि 'राय कहाँ हैं', नौकर ने कहा—"बाग़ीचे में दो लड़कियों को नाटक की तालीम दे रहे हैं।" वैष्णव-लेखक कहते हैं—"राय उस समय नाटक बनाकर दो कम-उम्र लड़कियों को इस नाटक के अभिनय की शिक्षा ही न देते थे प्रत्युत उन्हें स्वयं स्नान कराते और अपने हाथ से उनकी देह को पोंछ देते थे। किन्तु यह काम करने पर भी उनके चित्त में रत्ती भर भी विकार न उपजता था।" उच्च श्रेणी के भगवद्भक्तों के लिए कोई भी बात आश्चर्य की नहीं है। राय रामानन्द परम भक्त थे, वे निःसन्देह सभी प्रलोभनों को लाँघकर कार्य कर सकते थे।

मिश्र बड़ी देर तक रामानन्द के घर बैठे-बैठे उनके आने की प्रतीक्षा करते रहे। किन्तु वे बाग़ीचे से घर न आये। जब मिश्र ने उनसे भेंट करने का अत्यन्त आग्रह किया तब नौकर ने बाग़ में उनका सन्देशा राय को जा सुनाया। थोड़ी देर में उन्होंने घर लौटकर मिश्र की चरण-वन्दना की और आने का कारण पूछा। मिश्र ने भी रामानन्द की यथोचित भक्ति की। किन्तु उस दिन उन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट नहीं किया। इधर-उधर की बातचीत करके चलते हुए।

कई दिन बाद मिश्रजी चैतन्य देव के पास पहुँचे। उन्होंने पूछा—"कहो, उस दिन राय से कृष्णतत्त्व की कैसी शिक्षा

मिली ?" मिश्र ने जब उस दिन की घटना का उल्लेख किया तब श्रीचैतन्य ने कहा—"रामानन्द जो दो स्त्रियों को नाटक की तालीम देते हैं उससे उनके चित्त में किसी प्रकार की मलिनता को जगह नहीं मिलती।" उन्होंने रामानन्द के चित्त की निर्मलता को विशेष रूप से समझाने के लिए कहा—"काठ की पुतली देखने से मेरे मन में विकार उत्पन्न हो सकता है; किन्तु रामानन्द का मन सभी दशाओं में निर्मल बना रहता है।" प्रभु के मुँह से राय की ऐसी प्रशंसा सुनकर प्रद्युम्न मिश्र अपने मन की वासना को पूर्ण करने के लिए फिर रामानन्द के घर पहुँचे। उन्होंने मिश्र को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके बिठलाया। अब उनसे आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा—"मैं आपसे कृष्ण-तत्त्व सीखने आया हूँ।" इस बात से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर राय ने कहा—"मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप जैसा महापुरुष मुझसे कृष्णतत्त्व की आलोचना करने आया है।" अन्त में एकान्त स्थल में बैठकर उन्होंने कृष्ण-तत्त्व का वर्णन करना आरम्भ किया। धीरे-धीरे रामानन्द भाव में उन्मत्तप्राय हो गये। वक्ता और श्रोता दोनों को ही सुधि-बुधि न रही। दिन डूबने पर राय ने बातचीत बन्द की। कृष्ण-प्रेम का नया तत्त्व सीखकर मिश्रजी रामानन्द के घर से बिदा हुए। चलते समय प्रद्युम्न ने रामानन्द से कहा कि मैं कृतार्थ हो गया। इसके बाद वे आनन्द से नृत्य करने लगे।

प्रद्युम्न मिश्र ने घर जाकर भोजन आदि किया, फिर शाम को वे चैतन्य देव के समीप पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके बैठ गये। प्रभु ने पूछा—"कहो मिश्र, रामानन्द से कृष्ण-कथा कैसी क्या सुनी?" उन्होंने उत्तर दिया—"प्रभो, आपकी कृपा से आज राय के मुँह से कृष्ण-कथा सुनकर प्राण शीतल हो गये। रामानन्द, मनुष्य के चोले में रहने पर भी, मानो कृष्ण-प्रेम में सदा मग्न रहा करते हैं।" फिर प्रद्युम्न मिश्र ने कहा—प्रभो, राय ने मुझसे एक बात कही है कि 'कोई मुझे कृष्ण-वक्ता न समझे, मैं तो बिलकुल साधारण व्यक्ति हूँ, असल में गौरचन्द्र ही मेरे मुँह से अच्छी-अच्छी बातें कहला लेते हैं। मैं तो उनके हाथ की वीणा हूँ—वे जैसा बजाते हैं वैसा ही सुर निकलने लगता है'।

रूप, सनातन और जीव गोस्वामी

१

परम भक्त रूप और सनातन का नाम बङ्गाल में किसी से छिपा हुआ नहीं है। इनका जन्म उच्च ब्राह्मण-वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम था कुमार देव। रूप और सनातन के पूर्वपुरुष बङ्गाल के निवासी न थे। कुमार देव बाक्लाचन्द्रद्वीप नामक गाँव में रहते थे। उन्हें लेन-देन और ऐसे ही काम-काज से यशोहर ज़िले के अन्तर्गत फ़तहाबाद नामक स्थान में जाना-आना पड़ता था। अन्त में उन्होंने वहां पर अपने रहने के लिए घर बना लिया। कुमार देव के कई लड़के-बच्चे हुए थे; उनमें रूप, सनातन और वल्लभ इसी फ़तहाबाद में उत्पन्न हुए। वल्लभ का दूसरा नाम अनुपम भी था। वैष्णव-समाज में ये इसी नाम से परिचित हैं। कुमार देव बड़े नैष्ठिक हिन्दू थे। उनकी धर्मनिष्ठा देख बहुत लोग उनकी प्रशंसा किये बिना न रह सकते थे। किन्तु जातिभेद के बन्धन में उन्होंने अपने को यहाँ तक जकड़ लिया था कि यदि कभी वे किसी मुसलमान का मुँह देख लेते तो प्रायश्चित्त किये बिना पानी न पीते थे। जो हो, उनके

जीवन की धर्मनिष्ठा का प्रभाव रूप और सनातन में विशेष भाव से सञ्चरित हुआ था।

रूप-सनातन ने अपनी बाल्यावस्था में संस्कृत भाषा का अध्ययन विशेष रूप से किया था। भविष्यत् जीवन की उनकी पुस्तकें ही इसका उज्ज्वल प्रमाण हैं। ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में बङ्गाल पर मुसलमानों का अधिकार था और उस समय बङ्गाल की राजधानी गौड़ नगर में सैयद हुसेनशाह राज-पद पर अधिष्ठित थे। गौड़ के शासक ने रूप और सनातन की विद्या-बुद्धि के समाचार पाकर उन्हें बहुत ऊँचे ओहदे पर बहाल कर दिया। सनातन तो मन्त्री बनाये गये और रूप को प्रधान राज-काज सौंपा गया। दोनों ही बुद्धिमान्, सुपण्डित, कर्तव्य-परायण और कार्यशील थे। राज्य के भले के लिए दोनों भाई जी-जान से प्रयत्न करने लगे; उनकी कार्य-कुशलता से हुसेनशाह की भाग्य-लक्ष्मी प्रसन्न हो गई। गौड़ के अधिपति ने इन सुयोग्य कर्मचारियों के काम पर प्रसन्न होकर दोनों को बहुत सी जागीर दी। अतएव दोनों भाई, राजा के अनुग्रह से, धीरे-धीरे ख़ासे धनवान् हो गये। राज-काज में फँसे रहने के कारण ये अपनी जन्म-भूमि फ़तहाबाद न पहुँच सकते थे। इसलिए इन्होंने गौड़ नगरी के समीप रामकेलि गाँव में अपने रहने के लिए भवन बनवाना आरम्भ किया। जब इन्होंने जन्मभूमि को छोड़कर रामकेलि गाँव में नया मकान बनवा लिया तब फिर इन्होंने अपने देश के

बहुत लोगों को उसी गाँव में बुलाकर स्थायी रूप से आबाद करा लिया।

धर्म-विश्वास की बड़ी विचित्र गति होती है। रूप और सनातन धन-रत्न के बीच रहकर राज-काज से ज़रा सी फ़ुरसत मिलते ही धर्म-चर्चा करते और भक्तिविषयक ग्रन्थ पढ़ते थे। उनका चित्त सदा भगवद्भक्ति से परिपूर्ण रहता था। राज-काज का गुरुतर दायित्व हाथ में रहने पर भी ये पण्डितों के साथ शास्त्रों की आलोचना किया करते थे। "हंसदूत" और "पद्यावली" नामक दो ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं। बाल्यावस्था से ही वैष्णव धर्म पर विशेष अनुराग रहने के कारण ये भक्ति-मार्ग के उपासक हो गये। भक्तात्मा के हृदय की प्रीति प्राप्त करने के लिए रामकेलि में, अपने भवन के समीप, इन्होंने कदम्ब-कुञ्ज से घिरे हुए स्थान में दो झीलें खुदवा दीं, जिनमें एक का नाम श्यामकुण्ड और दूसरी का राधाकुण्ड रक्खा गया। इस रमणीय स्थान में बैठकर ये हरि-नाम के कीर्तन और ध्यान में आत्मा को तृप्त किया करते थे। महात्मा श्री-चैतन्य जब हरि-प्रेमामृत-रस में बङ्गाल को परिप्लावित कर रहे थे तब रूप और सनातन उनके रस-पूर्ण जीवन का समाचार सुनकर उनकी ओर बहुत ही आकृष्ट हुए। अतुल ऐश्वर्य के बीच रहकर भी इन्होंने उन प्रेमिक-चूड़ामणि चैतन्य के अमृत-मय उपदेशानुसार चलने के लिए व्याकुल होकर उनकी सेवा में पत्र भेजा। इन दोनों भ्राताओं की व्याकुलता का परिचय

पाकर चैतन्य देव प्रसन्न हुए और उनके पास निम्नलिखित श्लोक बनाकर इसलिए भेजा कि दुनियादारी के काम-काज में लिप्त रहकर भी, भगवत्प्राण होकर, काम किया जा सकता है। वह श्लोक यह है—

परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु।
तमेवास्वादयत्यन्तर्नवसङ्गरसायनम्॥

"अन्य पुरुष पर अनुरक्त रहनेवाली स्त्री जिस प्रकार अपने प्रेम-पात्र के प्रति अनुराग रखकर भी घर-गृहस्थी के काम-काज में लिप्त बनी रहती है उसी प्रकार राज-काज करते हुए भी तुम भगवत्प्रेमानन्द-रस-पान में चित्त को निमग्न रक्खो।"

चैतन्य की यह प्राणप्रद अमूल्य उपदेश-वाणी पाकर रूप और सनातन तदनुसार काम करने लगे।

श्रीचैतन्य देव कुछ दिनों तक पुरी में ठहरकर श्रीवृन्दावन के दर्शनार्थ कुछ शिष्यों के साथ रवाना हुए। वे मधुर हरि-नाम की ध्वनि से दिशा-विदिशाओं को निनादित करते हुए गौड़ नगरी के समीप रामकेलि गाँव में पहुँचे। उनका शुभा-गमन होने से मानो चारों ओर मलयानिल बहने लगा, सूखे मरुस्थल में प्रेम की सरिता बहने लगी। गौर की रूप-माधुरी देखने और उनके कण्ठ से निकली हुई मधुर हरिध्वनि सुनने से रामकेलिनिवासी आबाल-वृद्ध-वनिता आकृष्ट होकर उनके समीप पहुँचने लगे। रामकेलि गाँव गङ्गा-किनारे है। वहाँ

बहुतेरे ब्राह्मण रहते हैं। ब्राह्मण तो हरिनाम की धारा में बहने लगे ही, किन्तु गौर में ऐसी मोहिनी शक्ति थी कि मुसलमान तक उनके दर्शन से मुग्ध हो, दूर से ही सिर झुकाकर, उन्हें अभिवादन करने लगे।

भक्त-चूड़ामणि गौर के शुभागमन का समाचार गौड़ के बादशाह ने भी सुना। राज के किसी-किसी कर्मचारी को यह आशङ्का हुई कि कहीं मुसलमान बादशाह गौराङ्ग पर कोई अत्याचार न कर बैठे, इसलिए उन्होंने गौर को अन्य स्थान में ले जाने का प्रयत्न किया। हुसेनशाह ने केशव वसु नामक किसी कर्मचारी को बुलाकर गौर के आगमन-सम्बन्ध में पूछ-ताछ की। तब उसने डर के मारे विशेष प्रभाव न बतलाकर कहा—"वे साधारण संन्यासी हैं, दो-चार शिष्यों के साथ देश-विदेश में घूमते-फिरते हैं।" किन्तु इससे पूर्व बादशाह को नगर-कोतवाल से गौर के प्रभाव की बात मालूम हो चुकी थी। अब केशव वसु के मुँह से गौर का इस ढँग का समाचार सुनकर दबीर ख़ाँ को बुलाया। उन्होंने गौर की अपूर्व भगवद्भक्ति का उल्लेख करके कहा—"सैकड़ों मनुष्य उनके अनुगामी हो गये हैं, उनके चरणों पर हृदय की कृतज्ञता अर्पण कर रहे हैं। ऐसे सत्पुरुष के आगमन से आज आपका देश धन्य हो गया।" हुसेनशाह ने दबीर ख़ाँ से गौर का प्रताप सुनकर कहा—"मैं तो वेतन देकर लोगों को अपने वश में नहीं कर सकता, और इन्होंने

फूटी कौड़ी दिये बिना ही इतने लोगों को अपनी मुट्ठी में कर लिया है; अतएव निःसन्देह इनमें दैवी शक्ति है।" अब इन्होंने कर्मचारियों को ऐसा प्रबन्ध कर देने की आज्ञा दी जिसमें यह नवीन संन्यासी बेखटके हरिनाम का प्रचार कर सके।

रूप और सनातन दोनों भाई नवाब के यहाँ काम-काज करते थे। सैयद हुसेनशाह ने इन दोनों के मुसलमानी नाम रख दिये थे। रूप का नाम रक्खा था 'दबीर खाँ' और सनातन का रक्खा था 'शाकिर मल्लिक'। साधारणतया इन्हीं नामों से ये दोनों भाई नवाब-सरकार में अभिहित थे।

२

रूप और सनातन का बहुत दिनों से श्रीचैतन्य पर अनुराग था। अब रामकेलि में उनके पधारने से इनके आनन्द की सीमा न रही। जिनके उपदेश को शिरोधार्य करके ये अतुल विभव के बीच हरिप्रेमानुरागी होकर जीवन को बिता रहे थे आज अपने जीवन-पथ के उन्हीं पथ-प्रदर्शक को समीप पाकर—उनके दर्शनों से परमानन्द प्राप्त करने के लिए—दोनों भाई रात को उनके समीप पहुँचे। चैतन्य को बहुत दिन पहले इनका परिचय मिल गया था—इनके धर्मानुराग का हाल उन्हें पहले से ही मालूम था। अब उन्हें सामने देख, दोनों भुजा फैलाकर, उन्हें गले लगाया और कहा—"तुम्हीं को देखने के लिए मैं यहाँ आया हूँ, तुमको देखने से

मुझे जो आनन्द हुआ है उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।" इस गहरी रात के समय भक्त लोग आनन्द से हरिध्वनि करने लगे। रूप-सनातन ने श्रीचैतन्य के अन्यान्य शिष्यों के चरण छूकर प्रणाम किया। चैतन्य ने दबीर ख़ाँ और शाकिर मल्लिक के बदले उनका नाम "रूप-सनातन" रखकर कहा— "आज से सब लोग इन्हें इन्हीं नामों से पुकारें।" भक्तों ने दुबारा हरिनाम की मधुर ध्वनि से आकाश को प्रतिध्वनित कर दिया। सैयद हुसेनशाह के दो प्रधान कर्मचारी आज विशेष भाव से श्रीगौराङ्ग की मोहिनी माया में विमुग्ध होकर अपने घर लौटे।

उनके हृदय में जो आग धुँधुवा रही थी वह श्रीगौराङ्ग के दर्शन और उनके उपदेश से और भी प्रज्वलित हो उठी। वे लोग अब संसार-शृङ्खला से मुक्त होने के लिए व्याकुल हो गये। अब उनके मन में यही चिन्ता रहने लगी कि गौर और उनके भक्तों के साथ एक होकर हम किस प्रकार दिन-रात रहा करेंगे।

गौर जहाँ जाते थे वहीं भीड़-भाड़ हो जाती थी। जब से वे रामकेलि में आये हैं तबसे उनके दर्शनार्थ लोगों के झुण्ड के झुण्ड आने लगे। गौर की यह वासना थी कि ज़रा एकान्त पाकर वृन्दावन को जायँ और हरिनामामृत-रस में प्राणों को शीतल करें; रास्ते में चलते-चलाते प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच अपने आराध्य देव की मोहन मूर्त्ति के दर्शन करके चित्त को

भाव-रस में निमग्न करें; किन्तु सैकड़ों मनुष्यों की भीड़ से घिरकर जाने में उनकी यह लालसा किस प्रकार पूर्ण होगी! इस कारण उनको यह लालसा छोड़ देनी पड़ी। वे वृन्दावन को नहीं गये, फिर पुरी धाम को लौट गये।

इधर रूप ने काम-काज के मोहजाल को तोड़कर, घर लौटकर, अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी और चैतन्य देव की खोज में एक नौकर को भेजा। जब सुना कि वे फिर वृन्दावन के दर्शनार्थ उसी ओर जा रहे हैं तब रूप भी अपने छोटे भाई अनुपम को साथ ले प्रयाग की ओर चल पड़े। चलते-चलाते पत्र-द्वारा सनातन को सब बातों की सूचना दे गये।

रूप चले गये। अब इधर सनातन भी इसी वैराग्य-मार्ग को ग्रहण करने के लिए व्याकुल हो गये। वे गौड़ेश्वर के प्रधान मन्त्री अर्थात् बादशाह के दहने हाथ थे। सनातन ने देखा कि यदि हम अपना मतलब बतलाकर बादशाह से इस्तीफ़ा मञ्जूर करने को कहें तो यह कभी होने का नहीं। ऐसी दरख़्वास्त देने पर हमारे उद्देश की सफलता में उलटा विघ्न होगा। इसलिए वे दरबार में न जाकर, बीमारी का बहाना करके घर पर रह गये और पण्डितों के साथ भागवत प्रभृति भक्ति-विषयक ग्रन्थों की आलोचना करने लगे। बादशाह ने सनातन की बीमारी की ख़बर पाकर उनको दवा देने के लिए वैद्य भेजा। वैद्य ने नाड़ी देखकर बादशाह को ख़बर दी कि सनातन तो भले-चङ्गे बैठे हैं, उन्हें कोई बीमारी नहीं।

इससे हुसेनशाह को कुछ चिन्ता हुई। इधर रूप तो सब कुछ छोड़-छाड़कर फ़क़ीर हो ही गये थे, अब सनातन भी काम-काज की तरफ़ से लापरवा हैं। इससे बादशाह शान्त न बैठ सके—तुरन्त उठकर मन्त्री के घर पहुँचे। बादशाह के आने पर सनातन और अन्यान्य लोगों ने खड़े होकर उनको ताज़ीम दी और आदर से बिठलाया। हुसेनशाह ने कहा—सनातन, तुम्हें बीमारी नहीं है, तुम काम-काज से बचकर घर में बैठे हो; बिना तुम्हारे हमारा काम-काज भली भाँति नहीं हो सकता। तुम्हारा एक भाई तो चुपचाप चोर की तरह चलता हुआ, अब तुम्हारा क्या इरादा है ?

सनातन का मन क्या अब संसारी झञ्झटों में लगता है—वे तो काम-काज की सीमा से आगे निकल गये हैं; अब उन्हें लोक-लज्जा की भी परवा नहीं। उन्होंने निडर होकर कहा—"जहाँपनाह, मुझसे अब आपका काम न होगा, मेरी आशा छोड़िए।" सैयद हुसेनशाह उस समय किसी युद्ध में लिप्त थे, सो उन्होंने सोचा था कि तीक्ष्ण-बुद्धि-सम्पन्न सुपण्डित सनातन को साथ ले वहाँ पर जायँगे। अब इस दशा में उनके नौकरी से अलग होने की बात सुनकर वे बहुत ही ख़फ़ा हुए। सनातन को राह पर लाने के लिए बादशाह ने उन्हें क़ैद करने का हुक्म दिया। कर्मचारियों ने उसी दम हुक्म की पाबन्दी की। सनातन को जेल में डलवाकर बादशाह समर-क्षेत्र पर चले गये।

३

इधर रूप ने सनातन के क़ैद किये जाने के समाचार पाकर उन्हें एक पत्र लिखा। पत्र का मर्म यह था—'श्रीचैतन्य देव के सहवास में हमें अपार आनन्द मिल रहा है; और उनका हरिभक्ति-विषयक उपदेश होने से हृदय में भक्ति का सञ्चार हो गया और नव जीवन की प्राप्ति का मार्ग हमारे लिए खुल गया है।' रूप ने उस पत्र में और भी लिखा,—'हम वहाँ से रवाना होते समय मोदी के पास दस हज़ार रुपया रख आये हैं। क़ैद से निकलने के लिए इन रुपयों की ज़रूरत हो तो ले लेना।' राजबन्दी सनातन को भाई की चिट्ठी मिली। रूप का पत्र पढ़कर श्रीचैतन्य का सङ्ग प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो सनातन ने क़ैद से निकलने का उद्योग करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने जेल-दारोग़ा को बुलवा-कर कहा—"अजी मियाँ साहब, तुम तो धर्मशास्त्र को ख़ूब जानते हो; तुम्हें यह भी मालूम है कि किस व्यक्ति के साथ उपकार करने से अधिक पुण्य होता है। भाई साहब, मैं आपके साथ कई बार सलूक कर चुका हूँ, अब आपका नम्बर है। मुझे क़ैद से निकालकर परमेश्वर का आशीर्वाद लीजिए। इसके लिए मैं आपको पाँच हज़ार रुपये भी देता हूँ।" सनातन की सब बातें सुनकर जेल-दारोग़ा ने कहा—"जो मैं आपको छोड़ दूँगा तो इसके लिए बादशाह मुझे बड़ी कड़ी सज़ा देंगे।" सनातन ने उत्तर दिया—"बादशाह तो अपने प्रति-

द्वन्द्वों से युद्ध करने को लड़ाई के मैदान में गये हैं, कौन जानता है कि वहाँ से वे जीवित लौटते हैं या नहीं, और अगर इसके लिए आपको कुछ कैफ़ियत देनी ही पड़े तो कह देना कि 'गङ्गा में नहाते समय वह पानी में डूब मरा'।" सनातन जानते थे कि द्रव्य के लालच में पड़कर मनुष्य अक्सर अपनी इच्छा के विरुद्ध काम कर गुज़रते हैं। इसलिए उन्होंने मोदी के यहाँ से पाँच हज़ार रुपये मँगवाकर जेल-दारोग़ा की मुट्ठी गरम करवा दी। मियाँ साहब इस बार लालच को न रोक सके। उन्होंने ख़ुशी-ख़ुशी रुपये ले लिये, और आधी रात के बाद राजमन्त्री का काम सिद्ध करने के लिए स्वयं उन्हें गङ्गा-पार कर आये। सनातन अब राजमार्ग को छोड़, गौराङ्ग का मधुर सङ्ग प्राप्त करने के लिए वृक्ष-लताओं से घिरे हुए जङ्गली मार्ग से चल पड़े। इस समय ईशान नामक एक नौकर उनके साथ था। नौकर के साथ चलते-चलते सनातन पातरा नामक एक पहाड़ के समीप पहुँचे। वहाँ पर भूया नाम का एक डकैत अपने अनुचरों के साथ रहता था। इस डकैत के पास एक ज्योतिषी था जो उस पहाड़ी प्रदेश में किसी बटोही के आने पर बतला देता था कि इसके पास कुछ धन-दौलत है या नहीं। सनातन जब ईशान के साथ उस स्थान में पहुँचे तब डाकू ने उस ज्योतिषी के द्वारा पता लगा लिया कि ईशान के पास आठ मोहरें हैं। ज्योतिष का फल सुनने से डाकू को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी से इन नवा-

गत व्यक्तियों का उसने खूब आदर-सत्कार किया। डाकू को इस प्रकार आव-भगत करते देख सनातन के मन में सन्देह हुआ। उन्होंने एकान्त में ईशान से पूछा—"तुम्हारे पास कुछ रुपया-पैसा तो नहीं है?" ईशान ने बतला दिया कि सात मोहरें हैं। तब सनातन ने वे मोहरें डाकू को देकर कहा—"तुम हमको इस जङ्गल से पार करने में सहायता करो।" डाकू ने मुसकुराकर कहा—"आठ के बदले सात ही मोहरें मिलीं, एक क्या हुई?" फिर उसने एक आदमी को साथ कर दिया जो सनातन को जङ्गल से बाहर कर आवे। उसने सनातन को जङ्गल और पहाड़ के उस पार पहुँचाकर रास्ता बता दिया। ईशान के साथ चलते हुए रास्ते में सनातन ने पूछा—"तुम्हारे पास क्या और भी मोहरें हैं?" ईशान ने उत्तर दिया कि एक और है। तब सनातन ने उसको हलकी सी फटकार बताकर कहा—"इस कालयवन को साथ क्यों लाया है? अब तू मेरा साथ छोड़ दे, मैं अकेला ही चला जाऊँगा, तू लौट जा।" सनातन से बिदा होकर ईशान घर को लौट पड़ा।

सनातन प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच हरिनाम कीर्तन करते हुए आगे बढ़ने लगे। हाजीपुर में पहुँचने पर उन्होंने रात बिताने के लिए एक पेड़ का आश्रय लिया। हाजीपुर में हुसेनशाह के कर्मचारी रहते थे। सनातन के बहनोई श्रीकान्त उस समय, घोड़ों के मूल्य-स्वरूप तीन लाख रुपये दिल्ली के

बादशाह को देने के लिए जाते हुए, हाजीपुर में ही डेरा डाले पड़े थे। दूर से उन्होंने हरिनाम की मधुर ध्वनि सुनी। आवाज़ को सुनते ही उन्होंने पहचान लिया कि यह तो सनातन की आवाज़ है। उन्होंने तुरन्त उनके आगे जाकर देखा तो सचमुच वही निकले। वे सिर्फ़ लँगोटी लगाये थे। उनकी देह पर और कोई वस्त्र न था। साले की यह दशा देखने से श्रीकान्त को बड़ा कष्ट हुआ। उनको आराम से रखने की उन्होंने बड़ी कोशिश की, किन्तु कुछ सार न निकला। अन्त में ठण्ड से बचने के लिए श्रीकान्त ने उन्हें एक शाल दी किन्तु सनातन ने उसे भी न लिया। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने एक पहाड़ी कम्बल ले लिया। हरिगुण कीर्तन करते हुए अब वे यहाँ से आगे बढ़े। चलते-चलते काशीजी में पहुँचे। चैतन्य देव यहाँ पर चन्द्रशेखर नामक एक भक्त के घर ठहरे हुए थे। सनातन भी, दीन-वेष में, चन्द्रशेखर के घर पहुँचे। उन्होंने गौराङ्ग के पास सँदेशा भिजवाया— 'द्वार पर एक वैष्णव खड़ा है।' इस नवागत वैष्णव को भीतर लाने के लिए गौर ने चन्द्रशेखर को आज्ञा दी। चन्द्रशेखर ने बाहर आकर देखा कि दीन-हीन वेश में एक कङ्गाल दाँतों में तिनका दबाये खड़ा है। चन्द्रशेखर ने इन्हें वैष्णव ही न समझा। इसलिए घर में जाकर चैतन्य से कहा—"वहाँ तो कोई वैष्णव नहीं है।" चैतन्य ने कहा—"वहाँ जो कोई हो उसी को बुला लाओ।" तब चन्द्रशेखर उन्हें भीतर लिवा

गये। भक्तचूड़ामणि चैतन्य देव ने सनातन को देखते ही आनन्द से विह्वल होकर उन्हें गले लगा लिया। दोनों की आँखों से आँसू बहकर वक्षःस्थल को भिगोने लगे। चैतन्य के चरण पकड़कर सनातन अपनी दीनता प्रकट करने लगे। भक्त का हाथ पकड़कर गौर ने कहा—सनातन, बस अब दीनता को रहने दो; तुम्हारी दीनता देखने से मेरी छाती फटी जाती है।

४

सनातन के बैठ जाने पर गौर ने सुना कि ये किस प्रकार सब बन्धनों को छोड़-छाड़कर आये हैं। वे समझ गये कि राजमन्त्री को यथार्थ में वैराग्य हुआ है। अब उन्होंने चन्द्र-शेखर से कहा—"सनातन का सिर घुटाकर संन्यासी का वेष कर दो।" चन्द्रशेखर ने उनका मुण्डन कराके गंगास्नान कराया और एक नया वस्त्र पहनने को दिया। सनातन ने उसे ग्रहण करना अस्वीकार करके पुराना-सा कपड़ा माँगा। तब चन्द्रशेखर ने लाचार होकर उन्हें एक पुरानी धोती दी। सनातन ने उसके दो टुकड़े करके एक को पहन लिया और दूसरे को ओढ़ लिया। सैयद हुसेनशाह का प्रधान अफ़सर आज वैराग्य धारण करके यथारीति वैष्णव-धर्म में दीक्षित हो गया—प्रकट रूप से श्रीचैतन्य का शिष्य हो गया। चैतन्य के शिष्य मधुकरी माँगकर खाया करते हैं। बनारस में एक

ब्राह्मण ने सनातन से अनुरोध किया कि हमारे घर प्रतिदिन भोजन कर जाया करो, किन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करके माधुकरीव्रत के द्वारा निर्वाह करने का अपना आशय प्रकट किया। तब से वे ज़िन्दगी भर द्वार-द्वार पर भिक्षा माँगकर जीविका निर्वाह करते रहे।

श्रीकान्त का दिया हुआ पहाड़ी कम्बल अब तक उनके पास था। अतएव श्रीचैतन्य बार-बार उस ओर देखते थे। उस ओर प्रभु के बार बार देखने से सनातन समझ गये कि प्रभु इसे पसन्द नहीं करते, अतएव उसे हटाने के लिए वे बाहर गये। बाहर जाते ही उन्होंने देखा कि एक दरिद्र व्यक्ति धूप में अपनी जीर्ण कथरी सुखा रहा है। तब सनातन ने उसे अपना पहाड़ी कम्बल देकर उसकी कथरी आप ले ली और उसी को ओढ़कर गौर के आगे पहुँचे। उनकी देह पर फटी हुई कथरी देखकर गौर ने कहा—अच्छा वैद्य कहीं रोग का थोड़ा सा भी अंश रहने देता है? मुलायम कम्बल ओढ़ने से भी कहीं वैराग्य सधा है? हरि-रस-पान करने में प्राण और मन को पूर्ण करने के लिए संसार की सारी चीज़ों से अनासक्त होना पड़ता है।

वाराणसी धाम में सनातन को दो महीने तक तत्त्व-शिक्षा देकर गौराङ्ग ने कहा—"लो, अब तुम वृन्दावन में निवास करके भक्ति-ग्रन्थों की रचना करो।" इस काम में अपनी असमर्थता दिखलाने पर गौर ने कहा—"तुम जब लिखना

आरम्भ कर दोगे तब श्रीहरि तुम्हें शक्ति प्रदान करेंगे। डर किस बात का है?" गौर की आज्ञा को शिरोधार्य करके सनातन वृन्दावन की ओर रवाना हुए। वहाँ पहुँचकर वे माधुकरी व्रत धारण करके जीविका निर्वाह करने लगे और एक पेड़ के नीचे बैठकर भक्ति-तत्त्व-रचना में प्रवृत्त हो गये।

यहाँ पर उनके जीवन की एक घटना का उल्लेख किया जाता है। सनातन एक दिन यमुना-स्नान करने जा रहे थे कि उनके पैरों में एक सुन्दर पदार्थ आ लगा। उन्होंने देखा, वह पारस पत्थर था। जिन्होंने अगाध धन-रत्न को त्याग कर संन्यास-धर्म ग्रहण किया है उनके लिए पारस पत्थर और मामूली लोहे का टुकड़ा एक ही चीज़ है। इस बहुमूल्य पदार्थ की यत्न से रक्षा करना तो दूर रहा, सनातन ने इसे छूने में भी घृणा की। एक बार सोचा कि उठाकर रख लें, किसी दरिद्र व्यक्ति को दे देंगे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। एक खपरे में डालकर उसे रास्ते के एक ओर मिट्टी में गाड़कर वे स्नान करने चले गये। फिर उसकी उन्होंने ख़बर तक नहीं ली।

५

उसी समय बर्द्वान ज़िले के अन्तर्गत मानकर नामक स्थान में एक ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम जीवन था। वे बड़े भारी दरिद्र थे। वे अपनी दुर्दशा से बचने के लिए महा-

देवजी की आराधना में प्रवृत्त हुए। भगवान् के राज्य में यह नियम है कि मनुष्य जिस विषय का दिन-रात ध्यान किया करता है, जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए साधना करता है, उसमें—अनेक स्थानों में—सफलता प्राप्त हो जाती है। बहुत साधना करने के अनन्तर जीवन ब्राह्मण को सिद्धि प्राप्त हुई। इष्टदेव ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर कहा—"जीवन, वृन्दावन में एक संन्यासी हैं, उनके पास पारस पत्थर है। तुम जाकर उनसे माँगोगे तो वे तुम्हें दे देंगे।" स्वप्न में यह सुख-संवाद सुनकर जीवन श्रीवृन्दावन में पहुँचा। वहाँ सनातन को ढूँढ़कर उन्हें उसने अपना स्वप्न-वृत्तान्त सुनाया। सना-तन को पारस पत्थर का स्मरण ही न था, इसलिए ब्राह्मण के स्वप्न-वृत्तान्त का कुछ भी अर्थ उनकी समझ में न आया। फिर स्मरण करने से उन्हें उस घटना का स्मरण हो आया। यमुना-स्नान करने को जाते समय उन्होंने जिस जगह पारस पत्थर को गाड़ दिया था वहीं पर वे उस दरिद्र ब्राह्मण को ले गये। उन्होंने उँगली के इशारे से बतलाकर ब्राह्मण से कहा—"मैं स्नान कर चुका हूँ, अब उसको छू नहीं सकता। तुम यहाँ पर खोदो, अभी मिल जायगा।" मिट्टी को हटाते ही ब्राह्मण ने देखा, नयन-मुग्धकर पृथ्वी का दुःख-दारिद्र्य-निवारक वह पारस पत्थर वहाँ मौजूद है। उसे प्राप्त करके ब्राह्मण देवता ने सनातन के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट की और उनके चरणों में प्रणत होकर स्वदेश को प्रस्थान किया।

भक्त-साधुओं के जीवन का दृष्टान्त बहुतेरे मनुष्यों के हृदय में आमूल परिवर्त्तन का सञ्चार कर दिया करता है। सनातन से पारस पत्थर लेकर दरिद्र जीवन ब्राह्मण जब रवाना हुआ तब उसके चित्त में विचारों की तरङ्ग उठने लगी। वह सोचने लगा कि मैं जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए इतना लालायित था उसी को घर में रखना तो अलग रहा, सनातन ने छूने में भी घृणा की। तो इससे बढ़कर संसार में ऐसी कौन-सी चीज़ है जिसके मिल जाने से मनुष्य इस अनायास-प्राप्त पारस पत्थर को भी तुच्छ समझने लगता है? सनातन को अवश्य ही वह वस्तु मिल गई है; जो न मिली होती तो दूर खड़े-खड़े उँगली के इशारे से क्या वे मुझे इस लापरवाही के साथ पारस दिखला सकते! यह सोचते-सोचते ब्राह्मण देवता देश को न जा सके। वे बटेश्वर गाँव से फिर वृन्दावन को लौट आये। सनातन के पास जाकर उन्होंने अपने हृदय की दशा कह सुनाई और उनके चरणों पर गिरकर व्याकुल चित्त से कहा कि महाराज, मुझे अपना शिष्य कर लीजिए।

जीवन ने कहा—"प्रभो, मैं बड़ा अधम हूँ, कृष्ण-प्रेम-धन देकर मुझे धनवान् कर दीजिए। मैं आपकी शरण में हूँ।" ब्राह्मण की व्याकुलता देखकर सनातन ने कहा—"कृष्ण-धन को प्राप्त करना बड़ा कठिन काम है। तुम घर जाकर कृष्ण का भजन करो। हाँ, अगर तुम पारस पत्थर का मोह एक-

दम छोड़ सको तो अनासक्ति के मार्ग का आश्रय करके उस मधुर कृष्ण-प्रेम से प्राणों को आप्लुत कर सकोगे।" मानकर-निवासी जीवन का अन्तस्तल परिवर्तित हो गया था। सनातन की इस बात से उसके भाव-विगलित प्राण और भी उच्छ्वसित हो उठे। बड़ी साधना करने के अनन्तर मिले हुए पारस पत्थर को उसने उसी दम, ज़ोर से बहनेवाली, यमुना में फेंक दिया।

तब सनातन गोस्वामी समझ गये कि जीवन का हृदय कृष्ण-प्रेम के लिए सचमुच व्याकुल हो रहा है। तब वे और न ठहर सके। उन्होंने जीवन को अपने गले से लगा लिया। तबसे जीवन की वंशावली वैष्णव-धर्म के आश्रय में है।

इधर रूप अपने छोटे भाई अनुपम के साथ प्रयाग में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर देखा कि गौर हज़ारों लोगों के बीच प्रेमानन्द में नृत्य कर रहे हैं। उस भाव की लहर लगने से बहुत-से लोगों का हृदय उद्वेलित हो रहा है, हरि-प्रेम-रस में ग़ोते खा रहा है। रूप और वल्लभ खड़े-खड़े इस विचित्र दृश्य को देखने लगे, और फिर बहुत-सी भीड़ के बीच घुस-कर गौर के चरणों पर जा गिरे। गौर ने हाथ पकड़कर रूप को उठाया और सनातन के समाचार पूछे। सनातन के क़ैद किये जाने की ख़बर पाकर गौर ने मानो भविष्यत् दृष्टि से कारागार से उनके मुक्त होने का समाचार जानकर कहा—सनातन बहुत जल्द जेलख़ाने से निकलेंगे और थोड़े ही दिनों में मेरे पास आ पहुँचेंगे।

प्रयाग में सङ्गम के समीप श्रीचैतन्य रहते थे। रूप और सनातन ने भी उनके डेरे के समीप ही डेरा डाला। त्रिवेणी के उस पार वल्लभ भट्ट नामक एक परम वैष्णव रहते थे। जब वे गौर के दर्शनार्थ आये तब गौर ने उनसे रूप और सनातन का परिचय करा दिया। भट्टजी ने उनके विनय और भक्ति-भाव को देख उन्हें पक्का भक्त समझ लिया। चैतन्य देव वहाँ दस दिन तक रूप को भक्ति-तत्त्व की शिक्षा देते रहे।

श्रीचैतन्य के मुँह से उपदेश सुनकर रूप कृतकृत्य हुए। उनके प्राणों में भक्तिरस का फ़व्वारा ज़ोर से छुटने लगा। वे ज़िन्दगी भर गौर के उपदेश के अक्षर-अक्षर का पालन करके हरिभक्ति की पराकाष्ठा दिखला गये हैं।

प्रयाग में कुछ दिन तक ठहरकर श्रीचैतन्य ने पुरी को जाने की इच्छा करके रूप को वृन्दावन जाने का अनुरोध किया।

६

रूप गोस्वामी ने वृन्दावन में निवास करके कृष्णलीला-विषयक नाटक लिखना आरम्भ किया। फिर छोटे भाई वल्लभ के साथ वे गौड़ देश को गये। जाते-जाते रास्ते में उसका खसड़ा लिखते जाते थे। अन्त में वे गौड़ देश को पहुँच गये। किन्तु वहाँ पहुँचने पर ज्वर आने से वल्लभ का देहान्त हो गया। अब रूप ने नवद्वीप में पहुँचकर सुना कि सभी भक्त लोग

अपने जीवन-मार्ग के गुरु और मुखिया श्रीगौराङ्ग के दर्शनार्थ पुरी को जा रहे हैं। तब वे भी उसी ओर चल पड़े। उस समय वे नाटक बना रहे थे, इसलिए रास्ता चलते-चलते नाटक के विषय को सोचते जाते थे और किसी सराय में पहुँचने पर सोचे हुए विषय को लिख लेते थे। उन्होंने सोचा था कि पुस्तक के दो भाग करेंगे, एक का नाम श्रीकृष्ण का व्रज और दूसरे का द्वारकालीला होगा। किन्तु एक दिन किसी सराय में जब वे सो गये तब स्वप्न में देखा कि सत्यभामा प्रकट होकर उनसे कह रही हैं—"तुम नाटक को एक ही भाग में समाप्त कर दो, दो भागों में विभाजित मत करो।" रूप ने श्रीकृष्ण का यही अभिप्राय समझकर नाटक को इसी प्रकार पूर्ण कर दिया।

पुरी में जाकर रूप गोस्वामी हरिदास के आश्रम में ठहरे। गौर प्रायः प्रतिदिन वहाँ जाया करते थे। जब हरिदास के आश्रम में चैतन्यदेव आये तब रूप ने उनके चरणों पर माथा रक्खा। किन्तु चैतन्य देव उन्हें भली भाँति देख न सके, इसलिए हरिदास ने कहा—"आपको रूप प्रणाम कर रहे हैं।" तब गौर ने "अच्छा, रूप आये हैं" कहकर उन्हें गले से लगा लिया। रूप ने नाटक-रचना का सम्पूर्ण विषय जब उन्हें सुनाया तब उन्होंने आनन्द से सम्मति दे दी; और स्वप्न में सत्यभामा ने जैसा करने को कहा था वैसा ही करने की सलाह दी। रूप सुपण्डित और कवि थे। हरि-

दास के आश्रम में बैठकर एक दिन वे नाटक लिख रहे थे कि वहाँ श्रीचैतन्य ने आकर उन्हें इस काम में लिप्त देखा। रूप के अक्षर बड़े सुडौल होते थे। उनके अक्षर देख चैतन्य ने सन्तोष प्रकट करके उनकी बनाई कविता पढ़ी। कविता पढ़कर उन्होंने रूप की रचना-शक्ति की विशेष रूप से प्रशंसा करके पुस्तक-रचना में ही प्रवृत्त रहने के लिए उनसे कहा।

वह रथयात्रा का समय था। इसलिए गौड़ देश से श्रीअद्वैताचार्य और नित्यानन्द प्रभृति भक्त वहाँ आये हुए थे। गौर ने रूप गोस्वामी के साथ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भक्तों का परिचय करा दिया। भक्तों से परिचय होते समय रूप ने अपने स्वाभाविक विनय और सौजन्य का परिचय दिया।

एक दिन राय रामानन्द प्रभृति के साथ श्रीगौराङ्ग हरिदास के आश्रम में रूप से भेट करने आये। गौर और राय रामानन्द प्रभृति का हरिदास और रूप गोस्वामी ने यथोचित आदर-सत्कार करके उन्हें प्रेम से आसन पर बिठलाया।

भक्त लोग रूप के बनाये नाटक को सुनने के लिए ही आये थे। गौर ने रूप से कहा कि अपना नाटक पढ़कर सुनाओ। वे लज्जा के कारण सङ्कोच करने लगे। गौर ने कहा—"भला लाज़ किस बात की है, पढ़ो।" रूप ने विदग्धमाधव और ललितमाधव से कुछ अंश पढ़ सुनाया। उनकी मधुर चित्त-विमोहिनी रचना-शक्ति का परिचय पाकर भक्त लोग प्रसन्न हुए। सुपण्डित रसज्ञ राय रामानन्द ने उनकी

रचना की बार-बार प्रशंसा की। किन्तु रूप ने जो अपने नाटक में किसी-किसी स्थान पर श्रीचैतन्य की गुणावली का विशेष रूप से उल्लेख किया था उसका गौर ने प्रतिवाद किया; किन्तु राय रामानन्द ने रूप का पक्ष लेकर गौर से कहा—"रूप ने आपके गुणों का कीर्तन यथार्थ रीति से ही किया है।" गौर ने और उनके भक्तों ने रूप की कविता की प्रशंसा करके आनन्द प्रकट किया। गौर ने रूप से कहा कि वृन्दावन में रहकर भक्ति-शास्त्र की रचना और भक्ति-धर्म का प्रचार करो।

सनातन वृन्दावन से झारखण्ड के जङ्गल में होते हुए पुरी की ओर चले। मार्ग में दूषित जल-वायु के कारण उन्हें खाज हो गई जिससे उनकी देह से रक्त और पीब बहने लगी। ऐसी ही दशा में वे पुरी आकर हरिदास के आश्रम में पहुँचे। उनसे मिलकर भक्त हरिदास परमानन्दित हुए। सनातन की इच्छा थी कि रथयात्रा के समय रथ के पहिये के नीचे गिरकर सदा के लिए संसार से अलग हो जायँ। उनका यह सङ्कल्प हरिदास सुन चुके थे। श्रीचैतन्य से जब भेट हुई तब बातचीत के सिलसिले में हरिदास का मनोगत भाव समझकर उन्होंने कहा—सनातन, यदि देह के त्याग देने से ही श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो जाती तो मैं कई बार देह का त्याग करने के लिए प्रस्तुत हो जाता। असल बात यह है कि श्रीकृष्ण को प्राप्त करने से ही जीवन सार्थक होता है।

हरिदास के आश्रम में जिस समय सनातन के साथ तन्य की भेंट हुई उस समय उन्होंने सनातन को गले लगाने के लिए हाथ फैलाये किन्तु उनकी देह के स्पर्श से बचने के लिए सनातन पीछे को हट गये। उन्होंने कहा—"प्रभो, मैं बहुत ही नीच हूँ, और इस समय तो मेरी देह खाज होने से एक तरह पर सड़ गई है! प्रभो, इस अस्पृश्य पापी से अलग ही रहिए।" जिन्होंने कितने ही कोढ़ियों को बेखटके गले लगाया है वे अपने भक्त सनातन को आलिङ्गन किये बिना भला कैसे रह सकते? उन्होंने प्रेम-पूर्वक सनातन को अपनी छाती से लगा लिया। लिखा है कि गौर की देह से लिपटते ही वे रोग-मुक्त हो गये। उनकी दिव्य कान्ति हो गई। इस प्रकार सनातन ने कुछ दिनों तक पुरी में रहकर सत्सङ्ग और सदालाप में जीवन बिताया।

एक दिन गौर ने जमेश्वरटोटा नामक स्थान में जाकर सनातन को बुला भेजा। उस समय जेठ महीना था। धूप की बेहद तेज़ी के मारे समुद्र-किनारे की बालू का एक-एक कण आग की चिनगारी की तरह गरम हो गया था। जमेश्वर-टोटा को जाने के दो मार्ग थे। एक तो पेड़ों की छाया रहने से ठण्डा; और दूसरा वही तपी हुई बालू का। गौर का सन्देशा पाते ही सनातन उसी तपी हुई बालूवाले मार्ग से चले। जलती हुई आग जैसी बालू पर चलने से सनातन के पैर जलने लगे, किन्तु गौर-दर्शन के आनन्द की उमङ्ग में

उन्होंने इस कष्ट को कुछ भी न समझा। जब वे गौर के समीप पहुँचे तब गौर ने पूछा कि तुम छाया-युक्त सिंहद्वार-वाले मार्ग से क्यों नहीं आये? इस पर सनातन ने कहा—"प्रभो, मैं साधारण नीच आदमी हूँ, मैं सिंहद्वार से आने योग्य नहीं।" उनकी मधुर बातें सुनकर गौर ने खाज से पीड़ित सनातन को अपनी छाती से लिपटा लिया।

रथयात्रा का उत्सव हो गया। अब गौर ने सनातन से कहा कि वृन्दावन में जाकर वैष्णव-शास्त्र की रचना करो। तब वे गुरु की आज्ञा मानकर विहग-कूजित निर्जन वनों और उपवनों के बीच होते हुए वृन्दावन की ओर रवाना हुए।

७

कुछ दिन के पश्चात् रूप गोस्वामी भी सनातन के साथ जा मिले। दोनों ही संस्कृत-शास्त्र के जैसे प्रकाण्ड पण्डित थे वैसे ही गम्भीर भगवद्भक्त थे। और यही कारण था कि श्रीचैतन्य ने इन दोनों भाइयों से, वृन्दावन में रहकर, भक्ति-ग्रन्थों की रचना और लुप्त वृन्दावन का उद्धार करने के लिए कहा। इन्होंने अपने प्रभु की आज्ञा के अनुसार ग्रन्थ-निर्माण करने और भक्ति-धर्म का प्रचार करने में जीवन बिता दिया। रूप गोस्वामी ने "भक्ति-रसामृत-सिन्धु, उज्ज्वल-नीलमणि, विदग्धमाधव, ललितमाधव, मथुरा-माहात्म्य और हंस-दूत" प्रभृति ग्रन्थों की रचना की; और सनातन गोस्वामी ने "भाग-

है, मैं तो बहुत बड़ा पण्डित नहीं हूँ, आइए मेरे ही साथ शास्त्रार्थ कर लीजिए।'' दिग्विजयी पण्डित तो इसके लिए तैयार ही था। अन्त में जीव ही विजयी हुए।

दिग्विजयी को परास्त करके जीव जब आश्रम में आये और शास्त्रार्थ का सब समाचार जब रूप ने सुना तब जीव पर अत्यन्त असन्तुष्ट होकर उनकी भर्त्सना करते हुए कहा— ''तुमने क्यों विद्या का अहङ्कार प्रकट करके पण्डित को परास्त किया? तुमने अनुचित काम किया है, आज से हम तुम्हारा मुँह न देखेंगे।'' मालूम होता है, रूप ने जीव को यह शिक्षा देनी चाही थी कि ज्ञानियों के लिए निरहङ्कार का दृष्टान्त दिखलाना ही कर्तव्य है, और इसी से उन्हें दण्ड दिया। चाचा अब मेरा मुँह न देखेंगे, यह बात जीव को तीर की तरह चुभने लगी। उन्होंने यमुना-किनारे जाकर सोचा कि अब जीना वृथा है, अन्न-जल त्याग कर इस देह को छोड़ देना चाहिए। सनातन ने जब अपने भतीजे जीव गोस्वामी के प्रति रूप की इस कठोर व्यवस्था के समाचार सुने तब रूप के पास जाकर उन्होंने पूछा—''जीव (प्राणी) के प्रति वैष्णव का कैसा व्यवहार होना चाहिए?'' रूप ने उत्तर दिया— ''जीव के प्रति दया-व्यवहार ही वैष्णव का प्रधान कर्तव्य है।'' तब सनातन ने कहा—''तो तुम जीव के साथ ऐसा कठोर व्यवहार क्यों करते हो?'' बड़े भाई की बात सुनकर रूप ने उसी दम भतीजे को बुलाकर गले लगाया और पहले की

तरह अपने समीप रहने की अनुमति दी। जीव ने भी माथा झुकाकर चाचा को प्रणाम किया।

रूप और सनातन गोस्वामी का परलोकवास होने पर वृन्दावन में जीव गोस्वामी वैष्णवों के सिरमौर होकर रहने लगे। उनका अगाध पाण्डित्य और स्वार्थत्याग देख बहुत लोग उनके भक्त हो गये थे।

रघुनाथ दास

१

पहले वर्त्तमान तीनबीघा स्टेशन के समीप सप्तग्राम नाम का एक प्रसिद्ध नगर था। व्यापार की मण्डी होने के कारण यहाँ लोगों का समागम होता रहता था। इस समृद्धिशाली नगर में कोई चार सौ वर्ष पूर्व हिरण्य और गोवर्द्धन दास नामक दो प्रसिद्ध धनवान् महाजन रहते थे। दोनों भाई गौड़ के अधिपति सैयद हुसेनशाह का लगान वसूल किया करते थे। सप्तग्राम विभाग से सालाना बीस लाख रुपया वसूल करके ये बारह लाख तो सरकार को दे देते थे और बाकी आठ लाख स्वयं ले लेते थे। इनकी सचाई और कार्य-कुशलता से प्रसन्न होकर गौड़ के अधिपति ने इन्हें मजूमदार की पदवी दी। इनकी सालाना आमदनी आठ लाख रुपया—आजकल के हिसाब से कोई अस्सी लाख—से कम न थी।

हिरण्य दास के सन्तान न थी। हाँ, गोवर्द्धन दास के एक लड़का था जिसका नाम रघुनाथ था। अतुल ऐश्वर्य-शाली धनवान् के घर रघुनाथ का बड़े आदर से लालन-पालन

हुआ। ख़ास कर चाचा के सन्तान न रहने के कारण रघुनाथ पर उनका भी विशेष स्नेह रहता था। इतने सुख और ऐश्वर्य के बीच रहने पर भी रघुनाथ के हृदय में बचपन से ही धर्मानुराग और वैराग्य का सञ्चार हो गया था। गोवर्द्धन दास ने पुत्र को अच्छे-अच्छे पण्डितों से शिक्षा दिलवाई थी। बालक रघुनाथ ने ख़ूब चित्त लगाकर संस्कृत पढ़ी और उसमें उन्होंने विशेष रूप से पारदर्शिता प्राप्त कर ली। उन्होंने जो ग्रन्थ बनाये हैं, उनसे यह बात सिद्ध होती है। हिरण्य और गोवर्द्धन दास के कुल-पुरोहित बलराम आचार्य के घर उस समय भक्त हरिदास रहा करते थे। साधु लोग, चुम्बक की तरह, मनुष्यों को अपनी ओर आकृष्ट करके उनके चित्त को भगवत् के प्रेम-रस से अभिषिक्त कर देते हैं। गोवर्द्धन दास का पुत्र—बलराम आचार्य के घर विद्या पढ़ने जाकर—हरिदास की सौम्य मूर्त्ति, उनका स्वाभाविक धर्मानुराग और उनकी चित्त-विमोहिनी भगवन्निष्ठा देख धीरे-धीरे उनसे हिल-मिल गया। उस समय ज्ञान और भक्ति की धारा, गङ्गा-यमुना की भाँति, उसकी हृदय-भूमि पर बहने लगी। हरि-भक्ति के मधुर भाव में उसके प्राण पूर्ण होने लगे।

संन्यास लेने के अनन्तर श्रीचैतन्य देव शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर गये थे। श्रीचैतन्य के प्रभाव की चर्चा रघुनाथ पहले ही सुन चुके थे। अब शान्तिपुर में उनके पधारने का संवाद पाकर रघुनाथ उनके दर्शन करने के लिए

व्याकुल हो गये। इसलिए उन्होंने शान्तिपुर जाने के लिए पिता से अनुमति माँगी। इच्छा न रहने पर भी पिता ने आज्ञा दे दी। उन्होंने अपने बेटे को सचमुच ज़मींदार के लड़के की हैसियत से ही वहाँ भेजा। रघुनाथ पालकी में सवार हुए, साथ में दरवान और बहुत-सी वस्तुएँ लीं; नौकर-चाकरों का दल भी साथ में था। रघुनाथ सीधे शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर पहुँचे; उन्हें देखकर श्रीचैतन्य बहुत ही प्रसन्न हुए। वे रघुनाथ को देखते ही ताड़ गये कि ये शीघ्र ही गृहस्थी के बन्धन से मुक्त हो जायँगे। फिर भी उन्होंने इस युवक को अनासक्त भाव से संसार-धर्म के पालन करने का उपदेश दिया। गौर का भक्तिभाव देखने से रघुनाथ के हृदय में भक्तिभाव और भी उद्दीप्त हो उठा। वे श्रीचैतन्य के आशीर्वाद को ग्रहण करके घर लौट आये। किन्तु घर लौट आने से ही क्या होगा, उन्होंने हृदय-मन सब कुछ तो अपने इष्टदेव के चरणों में समर्पित कर दिया था। श्री-चैतन्य के मार्ग पर चलने के लिए उनके प्राण व्याकुल हो गये। गोवर्द्धन दास के पुत्र रघुनाथ का अब घर-गृहस्थी में मन नहीं लगता, वह मन तो अब पक्षी की तरह चिदानन्द आकाश में विचरण कर रहा है। घर लौटने पर श्रीचैतन्य का सत्सङ्ग प्राप्त करने के लिए रघुनाथ का मन यहाँ तक व्याकुल हो गया कि उन्होंने किसी तरह घर में रहना न चाहा; लड़के के घर-द्वार छोड़ने के लक्षण देख गोवर्द्धन दास ने उन पर पाँच सिपा-

हियों का पहरा लगवा दिया जिसमें वे घर छोड़कर भाग न सकें। उन्होंने इससे पहले ही एक परमासुन्दरी लड़की के साथ बेटे का विवाह कर दिया था। रघुनाथ की यह दशा थी कि इसी समय ख़बर मिली कि चैतन्यदेव पुरी को जा रहे हैं। इस समाचार को सुनते ही नीलगिरि में पहुँचकर चैतन्य के दर्शन करने के लिए रघुनाथ के प्राण व्याकुल हो उठे। वे इसी समय भाग खड़े होते किन्तु ज़मींदारी के किसी काम से उन्हें रुककर यह सङ्कल्प छोड़ देना पड़ा। एक वर्ष बीत गया। किन्तु जिस प्रेम-पिपासा को चरितार्थ करने के लिए उनका चित्त अस्थिर हो रहा था उसे चरितार्थ करने में संसार की कोई भी वस्तु समर्थ न हुई। वे मौक़ा मिलते ही व्याकुल-हृदय से गुपचुप पुरी की ओर भागने लगे किन्तु पहरे-दार बार-बार उन्हें ढूँढ़कर रास्ते से लौटा लाने लगे। बहुतों ने रघुनाथ को पागल समझकर गोवर्द्धन दास से कहा—"तुम्हारा बेटा पागल हो गया है, उसे तुम बँधवाकर रक्खो।" अन्त में वे रस्सी से बाँधे गये। इस दशा में हृदय को शान्त करने के लिए रघुनाथ "हा गौराङ्ग" कहकर चिल्लाने लगे। गोवर्द्धन यद्यपि पुत्र को चौकी-पहरे के बीच रखने की तदबीर करते थे फिर भी वे समझ गये थे कि जिस आकर्षण से हमारा पुत्र आकृष्ट हो रहा है उसके मार्ग में अन्त में कोई भी रोक-टोक कारगर न होगी। इसलिए उन्होंने कहा—ऐसी सुन्दरी स्त्री और इतनी धन-दौलत जिसे

रोक नहीं सकती उसे मामूली रस्सी का बन्धन कैसे रोक सकेगा ?

गौराङ्ग की आज्ञा से उस समय नित्यानन्द पनिहाटी गाँव में घर-घर घूमकर हरिनाम की घोषणा कर रहे थे। बन्धन से छोड़े जाने पर रघुनाथ पनिहाटी गाँव में नित्यानन्द के समीप पहुँचे। चतुर वैष्णव-धर्म-प्रचारक ने उन्हें देखते ही उनके मन के भाव को समझकर कहा—"अब तो फँस गये ! जाओगे कहाँ ?" यह कहकर उन्होंने रघुनाथ से दही-चिउरा का उत्सव करने के लिए कहा। धनवान् के पुत्र रघुनाथ दास ने यह बात सुनते ही नौकरों से तैयारी करने के लिए कहा। वे लोग उसी दम दही, चिउरा, केला, शक्कर और लड्डू आदि चीज़ें बहुत अधिक परिमाण में ले आये। अनेक स्थानों से वैष्णवों ने इस महोत्सव में आकर आनन्द से भोजन किया। पनिहाटी गाँव में राघव पण्डित नामक एक धर्मानुरागी सज्जन रहते थे। इस दिन नित्यानन्द अपने शिष्यों सहित उन्हीं के घर निमन्त्रित होकर गये थे। वहाँ पर भक्तों ने नाम-कीर्त्तन आदि किया। रघुनाथ दास ने भी वहाँ उपस्थित रहकर हरिभक्तों का कीर्त्तन सुना। इससे उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। रघुनाथ दास ने इस उपलक्ष्य में नित्यानन्द की सेवा के लिए उनके सेवक को सौ रुपये और सात तोले सुवर्ण दिया। राघव पण्डित को भी कुछ रुपये और दो तोले सोना दिया।

इन घटनाओं से रघुनाथ के हृदय में भक्ति की धारा और भी प्रबल वेग से वहने लगी। नदी की धारा जिस प्रकार वेग से अनन्त सागर की ओर ही बहती जाती है उसी प्रकार रघुनाथ का मन भी अपने उपास्य देव की ओर उड़ान भरने लगा। चिउड़ा-महोत्सव के पश्चात् रघुनाथ घर को लौट गये सही, किन्तु उनके भाव में बहुत कुछ परिवर्तन देख पड़ने लगा। उन्होंने अन्तःपुर में पत्नी के पास लेटना छोड़कर बाहर-वाले कमरे में सोना आरम्भ कर दिया; काम-काज में उनका जी न लगता था—अपने उपास्य देव श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए और श्रीगौराङ्ग के दर्शनों के लिए उनका चित्त अस्थिर हो गया। इस दशा में भला मनुष्य घर में रह सकता है? वे भागने की तदबीर सोचने लगे। चारों ओर सावधानी से सन्तरी लोग रात-दिन पहरा दिया करते थे। रघुनाथ को इनकी दृष्टि से बचकर जाना है। उन्होंने देखा कि यहाँ से भाग निकलना सहज नहीं है, यदि भगवान् ही सहायता दें तो कार्य सिद्ध हो सकता है।

२

रघुनाथ दास की वासना के पूर्ण होने का समय आ गया। एक वार रात के पिछले पहर उन्होंने देखा कि सभी पहरेदार गहरी नींद में अचेत पड़े सो रहे हैं। कुछ अन्तर पर यदु-नन्दन आचार्य खड़े हैं। रघुनाथ के गुरु का नाम यदु-

नन्दन था। प्रायः प्रतिदिन बड़े तड़के जब यदुनन्दन आते तब रघुनाथ उनकी चरण-वन्दना किया करते थे। आज भी रघुनाथ ने दर्शन पाते ही उनके निकट जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। यदुनन्दन आज किसी बात की अभिलाषा प्रकट करने के लिए रघुनाथ के पास आये थे। रघुनाथ ज्योंही समीप पहुँचे त्योंही यदुनन्दन ने कहा—"हमारे घर ठाकुर-सेवा के लिए जो पुजारीजी आया करते थे वे कई दिन से नहीं आये, इससे पूजा में विघ्न होता है। तुम ब्राह्मण देवता को समझा दो कि वे नियम से पूजा कर जाया करें।" यदुनन्दन यह कहकर रघुनाथ का हाथ पकड़े उनके घर की ओर जाने लगे। रघुनाथ ने कहा—"मैं पुजारी से कह दूँगा कि वह आपके घर पूजा करने के लिए नित्य पहुँच जाया करे।" यह सुनकर यदुनन्दन अपने घर की ओर चले। रघुनाथ ने सोचा, ऐसा अवसर फिर हाथ न लगेगा; बस वे अपने सङ्कल्प की सिद्धि के लिए चल खड़े हुए। कुछ दूर निकल जाने पर एक बार पीछे मुड़कर देखा—कोई भी पीछा करनेवाला नहीं है।

रघुनाथ जब छिपकर घर से भाग गये तब गौड़ देश के वैष्णव पुरी को जा रहे थे। रघुनाथ ने सोचा कि जो हम सड़क होकर जायँगे तो यात्रियों के साथ भेंट होने की सम्भावना है; अतएव दूसरे रास्ते से जाना ही ठीक है। यह सोचकर वे जङ्गलों के भीतर होकर जाने लगे। इस प्रकार दिन भर

में वे पन्द्रह कोस मार्ग चलकर शाम को एक गाँव में ग्वाला के घर ठहरे और वहाँ थोड़ा सा दूध पीकर रात बिता दी। सवेरे फिर दक्षिण की ओर चल पड़े।

इधर रात बीतने पर रघुनाथ की खोज होने लगी। यदुनन्दन ने कहा कि हमारे घर ठाकुर-सेवा के लिए ब्राह्मण को भेज देने का भरोसा देकर वे कल घर की ओर गये थे। तब रघुनाथ के भागने के सम्बन्ध में किसी को सन्देह न रहा। गोवर्द्धन दास प्रभृति सभी जानते थे कि इस समय, रथयात्रा के उपलक्ष्य में, चैतन्य के दर्शनार्थ वैष्णव लोग पुरी को जाया करते हैं। जिस समय गौड़ के वैष्णव पुरी को जाया करते थे उस समय शिवानन्द सेन उनकी हिफ़ाज़त के लिए उनके साथ जाते और हर तरह से मार्ग में उनके लिए सुभीता करते थे। इसलिए शिवानन्द के नाम एक पत्र लिखकर गोवर्द्धन दास ने दस आदमियों को भेजा। खोज करनेवाले बड़ी फुर्ती से आगे बढ़े। झाँकड़ा नामक स्थान में उन्हें शिवानन्द-प्रमुख पुरी के यात्री मिल गये। चिट्ठी पढ़कर शिवानन्द ने कहा "रघुनाथ हमारे साथ नहीं आये।" तब वे आदमी निराश हो उक्त दुःसंवाद लेकर घर लौट आये। घर में रोना-धोना मच गया। पिता और काका दोनों शोक में निमग्न हो गये। प्राणप्रिय एकलौते बेटे के लिए माता हाहाकार करने लगी। पति की आशा से एकदम निराश होकर युवती पत्नी छाती पीटने लगी। आत्मीय और स्वजन भी रघुनाथ के लिए

आँसू बहाने लगे। ऐसे धनवान् का बेटा किस प्रकार संन्यासी हो गया, बहुत आदमियों को यही सोचकर विस्मय हुआ।

इधर चैतन्य के दर्शनार्थ रघुनाथ बड़ी उमङ्ग से मार्ग को अतिक्रमण करने लगे। अ-निद्रा, अनाहार और मार्ग के विविध कष्टों की ओर उनका ध्यान ही न था। इस प्रकार बारह दिन के बाद वे पुरी में जा पहुँचे। इन बारह दिनों के बीच उन्होंने सिर्फ़ तीन दिन रसोई बनाकर भोजन किया था।

३

पुरी में जिस समय रघुनाथ पहुँचे उस समय देखा कि गौर स्वरूप दामोदर और मुकुन्द दत्त आदि भक्तों के साथ बातचीत कर रहे हैं। मुकुन्द दत्त ने रघुनाथ को देखकर कहा—"ओहो, रघुनाथ आ गये!" गौर ने भी रघुनाथ को देख 'आओ, आओ' कहकर गले लगाया और प्रेम से बिठाया। रघुनाथ ने गुरुदेव के चरणों पर माथा रखकर प्रणाम किया। गौर ने कहा—"श्रीकृष्ण की कृपा के तुल्य बलवान् संसार में कोई भी शक्ति नहीं है। उन्हीं की कृपा ने सांसारिक उलझनों से तुम्हारा उद्धार किया है।" श्रीचैतन्य की बात सुनकर परमभक्त रघुनाथ ने कहा—"मैं श्रीकृष्ण की कृपा को भला क्या जानूँ; मैं तो तुम्हारी ही कृपा के भरोसे हूँ।" फिर चैतन्य ने रघुनाथ के पिता और चाचा की चर्चा करके कहा कि वे भी ब्राह्मणों और वैष्णवों की सेवा तो करते हैं किन्तु वे वास्तविक

वैष्णव नहीं हैं, वे तो इस समय मल के कीट की भाँति धन-सम्पत्ति के पचड़े में पड़े हैं।

गौराङ्ग ने देखा कि रास्ते की थकावट से रघुनाथ का चेहरा फीका और शरीर सुस्त हो गया है। अतएव उन्होंने स्वरूप दामोदर से कहा—"तुम रघुनाथ की हिफ़ाज़त करो, इनके खान-पान की व्यवस्था तुम्हीं किया करो।" यह कहकर उन्होंने रघुनाथ दास का हाथ स्वरूप दामोदर को थमाकर कहा—"इन्हें मैं तुम्हीं को सौंपता हूँ, तुम सब बातों में इन पर नज़र रखना।" प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके स्वरूप ने कहा—"बहुत अच्छा"। रघुनाथ ज्योंही समुद्र-स्नान करके स्थान पर आये त्योंही स्वरूप ने उनके लिए जगन्नाथ देव का कई प्रकार का प्रसाद और महाप्रसाद ला दिया। रघुनाथ ने पाँच दिन तक स्वरूप की कुटी में भोजन करके सोचा कि ऐसी बढ़िया-बढ़िया चीज़ों के खाने से भला कोई बैरागी हो सकता है! इस विचार के मन में आते ही उन्होंने एक और तदबीर सोची। वे प्रतिदिन जगन्नाथदेव की पुष्पाञ्जलि का दर्शन करके सिंहद्वार पर अन्यान्य भिखारियों के साथ खड़े होने लगे। सिंहद्वार पर जो भिक्षुक खड़े होते थे उन्हें लोग, कृपा करके, इच्छानुरूप खाद्य पदार्थ देते थे। धनवान् के बेटे रघुनाथ दास भी जगन्नाथजी की आरती देखकर इन्हीं भिखारियों के साथ, थोड़ी-बहुत भीख माँगने के लिए, खड़े हो जाते थे। किन्तु लोगों ने रघुनाथ का परिचय पाकर उन्हें

अधिकाधिक परिमाण में विविध वस्तुएँ देना आरम्भ कर दिया। रघुनाथ ने देखा कि यहाँ भी गुज़र न होगी,—हम पर लोगों की नज़र जम गई है। उनका अभिप्राय यह था कि जीवन धारण करने के लिए साधारण भिक्षा माँग लिया करेंगे, किन्तु यहाँ उस सङ्कल्प में रोक-टोक हुई। जिन लज़्ज़तदार चीज़ों के डर से वे सिंहद्वार पर भिखारियों के बीच खड़े होते थे उन चीज़ों ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा!—इससे बचने का उपाय नहीं है। इसलिए उन्होंने सिंहद्वार की भिक्षावृत्ति भी छोड़ दी।

हृदय की प्यास बुझाने के लिए रघुनाथ 'बैरागी' हुए हैं। वह प्यास किस प्रकार शान्त होगी?—इसके लिए उन्होंने गौराङ्ग देव से शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा स्वरूप दामोदर को जतलाई। जब स्वरूप ने रघुनाथ की वासना गौराङ्ग पर प्रकट की तब उन्होंने रघुनाथ से कहा—स्वरूप को ही मैंने तुम्हारा भार सौंपा है, साधनतत्त्व में मेरी अपेक्षा वे विशेष पारदर्शी हैं। हाँ, यदि मुझसे कुछ उपदेश सुनना चाहो तो मैं संक्षेप में तुमसे यह कहता हूँ कि न तो ग्राम्य (गड़बड़ शड़बड़) बातें कहना-सुनना और न अच्छा-अच्छा खाना-पहनना। स्वयं मान की आकांक्षा छोड़कर दूसरों का मान करना और हृदय में हर दम राधाकृष्ण की युगल-मूर्त्ति का ध्यान किया करना।

भक्त रघुनाथ ने श्रीचैतन्य से यह उपदेश सुनकर उन्हें कृतज्ञता-पूर्वक प्रणाम किया और महाप्रभु ने भी उन्हें गले लगाकर आलिङ्गन किया।

प्रति वर्ष की भाँति इस साल भी गौड़ के वैष्णव भक्त पुरी में पधारे। उनसे परिचय होने पर विनम्र रघुनाथ ने सबके चरण छूकर प्रणाम किया। घर से रघुनाथ के भागने पर उनके पिता ने उन्हें खोजने के लिए दस आदमी भेजकर शिवानन्द सेन के पास पत्र भेजा था; उनसे मालिक के बेटे का कुछ भी संवाद न मिलने पर वे लोग निराश होकर सप्तग्राम को लौट गये—इन बातों का विस्तृत वर्णन उन लोगों ने रघुनाथ को सुनाया। रघुनाथ ने चुपचाप सब कुछ सुन लिया।

चार महीने पूरे हो गये। गौड़ देश के भक्त अब अपने-अपने घर को लौटे। जब वे देश में पहुँच गये तब गोवर्द्धन दास ने पुत्र के समाचार जानने के लिए शिवानन्द सेन के पास आदमी भेजे। तब शिवानन्द ने रघुनाथ के पुरी पहुँचने और वहाँ पर कठोर वैराग्य में निरत होने का सब समाचार लिख भेजा। पुत्र के कठोर वैराग्य ग्रहण करने और फेंके हुए (परित्यक्त) अन्न पर गुज़र करने की बात सुनकर गोवर्द्धन और उनके घर के सब लोग दुःख और कष्ट से जर्जरित होने लगे; कितने ही आदमी जिनके दान, आश्रय और अन्न से निर्वाह करते हैं उन्हीं का पुत्र आज दीन-हीन कङ्गाल की तरह जीवन बिता रहा है। यह चिन्ता उनके वक्षःस्थल में बर्छी की नोक की तरह कसकने लगी। पुत्र यदि स्वीकार कर ले, तो पिता उसे पुरुषोत्तमपुरी में राजकुमार की भाँति रख सकते हैं, किन्तु वे जानते थे कि रघुनाथ ने तो भक्तिमार्ग को अङ्गीकार

किया है—वह धन-दौलत से उदासीन है। फिर भी गोवर्द्धन दास ने कुछ आदमियों के हाथ चार सौ रुपये और अनेक प्रकार की चीज़ें पुरुषोत्तमपुरी में रघुनाथ के पास भिजवाईं। रघुनाथ ने पिता के अप्रसन्न होने के विचार से रुपये लेकर आदमियों को विदा कर दिया।

रुपये लेकर रघुनाथ क्या करें? उन्होंने सोचा कि इस द्रव्य के द्वारा गौरचन्द्र की सेवा की जाय। इसलिए महीने में दो बार उनका निमन्त्रण कर उन्हें भोजन कराने की व्यवस्था की। रघुनाथ की इच्छा पूर्ण करने के लिए गौर महीने में दो बार उनकी कुटी में भोजन करने आया करते थे। इस निमन्त्रण में, महीने में, मुश्किल से आठ आने ख़र्च होते थे; क्योंकि उस समय सभी वस्तुएँ सस्ती थीं। आजकल की-सी महँगी न थी। किन्तु कुछ दिन में रघुनाथ के मन में एक नये भाव का सञ्चार हुआ। उन्होंने सोचा कि धनवान् के द्रव्य से प्रभु को भोजन कराना ठीक नहीं है, इससे उनके हृदय को भली भाँति तृप्ति नहीं होती। फलतः रघुनाथ ने निमन्त्रण करना बन्द कर दिया। कुछ दिनों में गौर को जब रघुनाथ के निमन्त्रण बन्द कर देने का कारण मालूम हुआ तब उन्होंने विशेष आनन्द प्रकट करके कहा—रघुनाथ ने इसलिए निमन्त्रण करना बन्द कर दिया है कि दुनियादार आदमी का अन्न खाने से मन रुष्ट हो जाता है—मलिन हो जाता है और श्रीकृष्ण के भजन में विघ्न होता है।

४

अब तक रघुनाथ सिंहद्वार पर खड़े होकर भीख माँग लाया करते थे किन्तु बहुत बड़े धनाढ्य के पुत्र रघुनाथ को भिक्षा माँगते देख लोग उन्हें अच्छी-अच्छी चीज़ें खाने को देते थे। इससे रघुनाथ ने देखा कि भली भाँति वैराग्य का पालन करने में विघ्न होता है। अतएव वे सिंहद्वार पर भीख माँगना छोड़, छत्र में जाकर भिक्षा माँगने और इस प्रकार गुज़र करने लगे।

रघुनाथ दास के वैराग्य और धर्मनिष्ठा को देख गौर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने रघुनाथ को अपनी दो प्रिय वस्तुएँ दे दीं—गोवर्द्धन शिला और गुञ्जामाला। ये दोनों चीज़ें शङ्करानन्द सरस्वती ने वृन्दावन से लाकर उनको दी थीं। गोवर्द्धन शिला और गुञ्जामाला को राधाकृष्ण के स्मरण का प्रधान उपाय मानकर उन्होंने बड़े आदर से अपने पास रक्खा था। किन्तु रघुनाथ पर गौर इतने सन्तुष्ट हुए कि ये दोनों प्रिय वस्तुएँ उन्हीं को सौंप दीं और कहा—"तुमको मैं गोवर्द्धन शिला और गुञ्जामाला देता हूँ, तुम भक्ति के साथ इनकी सेवा करना।" श्रीचैतन्य की आज्ञा के अनुसार रघुनाथ उक्त वस्तुओं की पूजा करने लगे।

अब तक रघुनाथ के हृदय में जो वैराग्यानल धधक रहा था वह दिन प्रति दिन प्रज्वलित होने लगा। सिंहद्वार की भिक्षा छोड़कर वे छत्र में भिक्षा माँगकर जीवन धारण करते थे।

अब उन्होंने इसके छोड़ने का भी सङ्कल्प कर लिया। जो महा-प्रसाद सड़ जाता अथवा और किसी तरह ख़राब हो जाने से बिगड़ जाता था उसे दूकानदार लोग मोरी में फेंक देते थे। अक्सर उसे तैलङ्ग गायें तक न खाती थीं। उसी परित्यक्त भात को रात के समय घर लाकर रघुनाथ धो डालते और उनमें जो चावल ज़रा भी ठीक होते उन्हें छाँट-छाँटकर इकट्ठा कर लेते और थोड़े से नमक के साथ इसी को खाते थे। रघु-नाथ के आहार की व्यवस्था सुनकर एक दिन उनकी कुटी में गौर ने आकर कहा—"रघुनाथ, मैंने सुना है कि रात को तुम कोई अच्छी चीज़ खाया करते हो, बतलाओ मुझे क्यों नहीं देते!" फिर वे रघुनाथ से उसी भात का ग्रास लेकर खाने को आग्रह से प्रवृत्त हुए। दूसरा ग्रास मुँह में देते ही स्वरूप ने छीनकर कहा—"प्रभो, यह भोजन तुम्हारे उपयुक्त नहीं है।" गौर ने कहा—मैं नित्य प्रति कितना ही सुन्दर-सुन्दर प्रसाद खाया करता हूँ किन्तु ऐसा स्वादिष्ट प्रसाद मैंने कभी नहीं खाया।

श्रीचैतन्य के मधुर सहवास में, भक्तों के साथ भगवत्-चर्चा करने में, श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान और नाम-कीर्तन करने में रघुनाथ ने पुरुषोत्तमपुरी में सोलह वर्ष बिताये। श्रीचैतन्य जब प्रेमोन्माद में दिन-रात रहने लगे तब उनकी देह-रक्षा के लिए रघुनाथ सदा उनके पास रहने लगे। इस कारण वे गौर-जीवन का अपूर्व सौन्दर्य देखते और उनकी सुधा-

सनी बातें सुनते थे। गौर का तिरोभाव होने पर रघुनाथ को अपार शोक हुआ। स्वरूप का देहान्त होने पर वे पुरी को छोड़कर वृन्दावन चले गये। इन महात्माओं के वियोग से उन्हें इतना शोक हुआ कि उन्होंने गोवर्द्धन पर्वत की चोटी से कूदकर प्राण त्याग करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। किन्तु रूप और सनातन ने समझा-बुझाकर उन्हें इस काम से रोक लिया।

वे वृन्दावन में राधाकुण्ड के किनारे बैठकर कठोर साधना करने लगे। अन्न-जल छोड़कर वे थोड़ा-सा मट्ठा (छाँछ) ही पीकर जीवन धारण करने लगे। इस प्रकार वे दिन भर नाम-जप और नाम-कीर्त्तन किया करते थे। रात को सिर्फ़ डेढ़ घण्टे के लगभग सोते थे। रघुनाथ प्रतिदिन एक लाख हरिनाम का जप करते और चैतन्य की गुणावली का चिन्तन किया करते थे।

'श्रीचैतन्यचरितामृत' में लिखा है कि रघुनाथ के अनन्त गुणों का लेखा कौन कर सकता है? उनके नियम पाषाण की लीक की तरह पक्के थे। वे साढ़े सात पहर तक भगवान् का स्मरण किया करते और चार घड़ी में आहार-निद्रा आदि कर लेते थे। भला उनके वैराग्य का क्या कहना है! उन्होंने जन्म भर जीभ से स्वाद का काम नहीं लिया। फटे कपड़ों को छोड़ सुन्दर वस्त्र नहीं पहना। बड़ी सावधानी से प्रभु की आज्ञा का पालन किया।

संस्कृत भाषा का रघुनाथ को ख़ासा ज्ञान था। वृन्दावन धाम में रहते समय उन्होंने संस्कृत में कई ग्रन्थ बनाये थे।

चैतन्य-चरितामृत ग्रन्थ के प्रणेता कृष्णदास कविराज रघुनाथ दास के मन्त्र-शिष्य थे। इन्हें अपने गुरु रघुनाथ दास से ही गौराङ्ग-चरित का बहुत कुछ मसाला मिला था। रघुनाथ बहुत समय तक रहकर, कोई ८५ वर्ष की अवस्था में, स्वर्गवासी हुए।

श्रीनिवास आचार्य

१

कोई चार सौ वर्ष पूर्व बर्द्दवान ज़िले के अन्तर्गत चाकन्दी नामक गाँव में गङ्गाधर भट्टाचार्य नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। यह गाँव गङ्गा-किनारे होने के कारण बड़ा ही सुहावना लगता था। चाकन्दी गाँव नवद्वीप से लगभग ७–८ मील के अन्तर पर है। यद्यपि संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के लिए नवद्वीप ही प्रधान था फिर भी चाकन्दी गाँव में अध्यापक लोग पाठशाला स्थापित करके छात्रों को विद्या-दान करते थे। इस कारण अन्यान्य स्थानों से अनेक शिक्षार्थी यहाँ आकर विद्योपार्जन करते थे। गङ्गाधर ने अपने गाँव में ही उपयुक्त अध्यापक से शिक्षा प्राप्त की और साहित्य, व्याकरण आदि में दक्षता प्राप्त करने से वे प्रतिष्ठित माने जाने लगे।

मनुष्य के मन की गति बड़ी विचित्र होती है। बचपन में कोई असत् मार्ग पर चलता है और कोई सत् मार्ग पर—पवित्रता के मार्ग पर—चलकर जीवन को मधुमय बनाने का यत्न करता है। जिस समय गङ्गाधर पाठशाला में पढ़ते थे उस समय छात्र प्रायः ज्ञान के अहङ्कार से मस्त होकर दूसरों को अपनी

अपेक्षा कम लिखा-पढ़ा समझते और धर्म के प्रति उदासीनता प्रकट करते थे। किन्तु गङ्गाधर का स्वभाव और ही तरह का था। युवावस्था का आरम्भ होने से पहले ही उनका चित्त धर्मानुगत हो गया था। निमाई पण्डित के पाण्डित्य के यश:सौरभ से जब चारों दिशाएँ आमोदित होने लगीं तब वे उनसे मिलने को नवद्वीप जाने की इच्छा करने लगे किन्तु गौर की प्रशंसा को अन्य छात्र न सह सकते थे, इस कारण गङ्गाधर की इच्छा को उन्होंने पूर्ण न होने दिया।

किन्तु मनुष्य के मन की स्वाभाविक वासना को भला कौन रोक सकता है? गया से लौटकर गौर एक नये भाव में मत्त हो सबको मतवाला करने लगे—उनके नाम-कीर्त्तन से नवद्वीप में प्रेम की बाढ़ आ गई। इस लीला के विषय को गङ्गाधर सुनने लगे; जिन गौर के प्रति उनके मन का अनुराग बाल्यकाल से ही था वह अब और भी बढ़ गया। उन्हीं भक्त-चूड़ामणि को देखने के लिए वे घर से रवाना हुए, किन्तु मार्ग में समाचार मिला कि गौराङ्ग संन्यास ग्रहण करने के लिए कटवा में केशव भारती के आश्रम को गये हैं। इस संवाद को सुनने से उनके मन में गौराङ्ग के प्रति भक्ति की मात्रा और भी बढ़ने लगी। अब वे कटवा की ओर ही चल पड़े।

इधर गौर को देखने के लिए केशव भारती के आश्रम में बड़ी भीड़भाड़ हुई। गङ्गाधर भी वहाँ पहुँचे। नाई ने शची के लाल का सिर मूँड़ दिया। हज़ारों आदमियों की

रोदन-ध्वनि के बीच केशव भारती ने उन्हें दीक्षा दे दी और उसी समय उनका नाम कृष्ण चैतन्य रख दिया। गङ्गाधर ने यह दृश्य अपनी आँखों देखा। जिनको देखने के लिए वे व्याकुल थे आज वे ही अपनी बुढ़िया माँ और प्राण-सदृश पत्नी को छोड़ भिखारी हो गये—इस चिन्ता ने गङ्गाधर के चित्त में एक आवेग उत्पन्न कर दिया। वे रोते-रोते व्याकुल हो गये और जब सँभल न सके तो अचेत होकर नीचे गिरने लगे। अन्त में चेत होने पर वे श्रीकृष्णचैतन्य कहकर लगातार रोदन करने लगे। गङ्गाधर इस प्रकार श्रीकृष्ण चैतन्य कहकर रोदन करते हुए अपने गाँव चाकन्दी में पहुँचे। चैतन्य में उनका यह अनुराग देख गाँववाले विमुग्ध हो गये। बहुतेरे कहने लगे कि जब चैतन्य पर इनका इतना अधिक अनुराग है तब तो ये सचमुच चैतन्य-दास हैं। बस, इस समय से गङ्गाधर के बदले इनका नाम चैतन्यदास पड़ गया।

इससे पहले ही चैतन्यदास का विवाह हो चुका था। उनकी पत्नी का नाम था लक्ष्मीप्रिया—अब तक उनके कुछ सन्तान न हुई थी। इसके लिए चैतन्यदास को कुछ फ़िक्र भी न थी। लक्ष्मीप्रिया के सन्तान होने की अवस्था बीत चुकी थी। चैतन्यदास भगवत्प्रेम में ही सदा मस्त रहा करते थे। किन्तु अकस्मात् एक दिन उनके मन में पुत्र की लालसा हुई। उस समय महात्मा श्रीचैतन्य देश-देशान्तर की यात्रा करके पुरी में रहने लगे थे। श्रीचैतन्य की कृपा

से अपनी कामना पूर्ण होने का विचार करके चैतन्यदास लक्ष्मीप्रिया को साथ ले पुरी जा पहुँचे। चैतन्यदास वहाँ जाकर चैतन्यदेव के चरणों पर लोट गये। लिखा है कि गौर ने चैतन्यदास के मन की बात को भाँपकर अपने सेवक गोविन्द को बुलाया और कहा—"तुम चैतन्यदास से कहना कि यहाँ जिस इच्छा से आये हो वह पूर्ण होगी। उसकी सन्तान में हमारा प्रेम सञ्चारित होकर उसकी आत्मा को सञ्जीवित किये रहेगा।" यह आशा-पूर्ण वाणी सुनकर चैतन्यदास बहुत ही प्रसन्न हुए, और श्रीकृष्ण चैतन्य को प्रणाम करके उनका आशीर्वाद ले अपनी पत्नी लक्ष्मीप्रिया के साथ पुरी से गौड़ देश को लौट पड़े। चैतन्यदास पहले अपनी ससुराल जाजिग्राम को गये। लक्ष्मीप्रिया के पिता बलरामदास, जमाई और बेटी के आने से, परम प्रसन्न हुए। कुछ दिन वहाँ ठहरकर वे चाकन्दी में आ गये। कुछ समय में लक्ष्मीप्रिया गर्भवती हुई। बलरामदास ने इस समाचार से अत्यन्त आनन्दित होकर जमाई के घर बहुत-सी चीज़ें भेजीं। चैतन्यदास बड़े सीधे-सादे आदमी थे। सब लोग उन्हें हृदय से चाहते थे; लक्ष्मीप्रिया के सन्तान होने की सम्भावना सुनकर गाँववालों ने भी इस समय उनके घर अनेक वस्तुएँ भेजी थीं।

वैशाखी पौर्णिमा को लक्ष्मीप्रिया के एक सुलक्षण-युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। सन्तान होने का संवाद सुनकर पड़ो-

स्त्रियों ने उनके घर आकर मङ्गलध्वनि की। ब्राह्मण मधुर-कण्ठ से वेद-पाठ करने लगे और अन्यान्य लोग एकत्र होकर मङ्गल-गाथाओं का गान करने लगे। सन्तान का मुँह देख-कर लक्ष्मीप्रिया आनन्द-महोदधि में गोते खाने लगीं। अन्न-प्राशन का समय उपस्थित होने पर चैतन्यदास ने पुत्र का अन्न-प्राशन और नामकरण संस्कार किया। इस शुभ कार्य के उपलक्ष्य में बहुतेरे आत्मीय और मित्र निमन्त्रित होकर आये। उनकी आनन्द-ध्वनि से चैतन्यदास का घर गूँज उठा। पुत्र का नाम श्रीनिवास रक्खा गया।

२

लक्ष्मीप्रिया बड़ी धर्मपरायणा थीं। उनका दुलारा बेटा जब थोड़ा-बहुत बोलने लगा तब वे उसे श्रीचैतन्य और उनके शिष्यों के नाम, कविता के बहाने, रटाने लगीं। बेटा भी उन नामों को अस्पष्ट स्वर में दुहराने लगा।

देखते-देखते श्रीनिवास को पाँचवाँ वर्ष लगा, तब गङ्गा-धर ने उसे उपयुक्त गुरु के यहाँ विद्या पढ़ने भेजा। महापुरुषों के जीवन में बचपन से ही अनेक बातों में, साधारण बालकों की अपेक्षा, अनेक विशेषताएँ प्रकट होती हैं। श्रीनिवास का विद्यारम्भ हो गया, किन्तु इस बचपन में ही ज्ञान के प्रति उनका अनुराग देख लोगों को बड़ा अचरज हुआ। उनके यज्ञोपवीत के समय कई दिन तक पढ़ाई बन्द रक्खी गई। किन्तु तीसरे

दिन श्रीनिवास इस नियम को न मान सके। वे पढ़ने के लिए व्याकुल हो गये और रोने लगे। श्रीनिवास के शिक्षक ने आकर जब सुना कि पढ़ाई रोक दी जाने से वह रो रहा है तब वे समझ गये कि भविष्यत् में श्रीनिवास विख्यात पण्डित होगा।

असाधारण बुद्धि और स्मरणशक्ति के कारण श्रीनिवास थोड़े ही समय में व्याकरण, काव्य और अलङ्कार आदि के ख़ासे पण्डित हो गये। सब लोग उनके पाण्डित्य की प्रशंसा करने लगे। किन्तु श्रीनिवास केवल ज्ञान के ही पीछे न पड़े रहते थे, प्रत्युत वैष्णवों के समीप जाकर भक्तितत्त्व की आलोचना तथा श्रीचैतन्य एवं उनके पार्षदों की जीवन-कथा सुनकर आनन्द का अनुभव करते थे। वचपन में बालक अपने माता-पिता का जैसा आचरण देखते हैं वैसा ही उनका जीवन गठित होता है। श्रीनिवास के पिता श्रीकृष्ण चैतन्य के अनन्य भक्त थे। उनके जीवन का मधुमय दृष्टान्त भी श्रीनिवास को बाल्यकाल से वैष्णवधर्म के मार्ग पर ले गया था। जैसी-जैसी उनकी उम्र बढ़ती गई वैसे-वैसे उनकी देह में रूप और लावण्य प्रकट होने लगा—ज्ञान की ज्योति से हृदय ज्योतिष्मान् हुआ और भगवद्भक्ति से आत्मा मधुमय होने लगा। सारे गुणों का समावेश होने के कारण श्रीनिवास सभी के चित्त को आकर्षित करने लगे। उन पर सभी की दृष्टि पड़ने लगी। सभी सोचने लगे कि श्रीनिवास साधारण मनुष्य नहीं हैं—असाधारण पुरुष हैं।

श्रीनिवास बाल्यकाल से ही भक्तिमार्ग के पथिक हो गये थे। वे एक दिन अपनी ननसाल जाजिग्राम को जा रहे थे कि कटवानिवासी श्रीनरहरि सरकार के साथ उनकी भेट हुई। नरहरि सरकार वैष्णव-समाज में "सरकार ठाकुर" के नाम से परिचित और संक्षेप में "साकार ठाकुर" कहलाते थे। श्रीनिवास भी उनका नाम सुनकर उनके दर्शनों के लिए उत्कण्ठित थे। श्रीनिवास की प्रतिभा और भगवद्भक्ति की ख़बर सुनकर सरकार ठाकुर भी उन्हें देखने के लिए उत्सुक थे। आज शुभ मुहूर्त में रास्ते में ही परस्पर भेट हो जाने से दोनों के हृदय में आनन्द की तरङ्गें उठने लगीं। सरकार ठाकुर के चरणों पर श्रीनिवास के प्रणत होते ही उन्होंने उनको छाती से लगा लिया। श्रीनिवास ने बड़ी नम्रता से अपनी दीनता प्रकट की और सरकार ठाकुर ने तरह-तरह से मधुर वाक्यों-द्वारा उनके प्राणों में आशा का सञ्चार किया तथा उनकी आत्मा को और भी भगवत्सुखी किया।

सरकार ठाकुर से भेट होने के अनन्तर श्रीनिवास के हृदय का भाव और भी प्रबल हो उठा। उन्होंने घर आकर चैतन्यदास से श्रीचैतन्य की लीला के वर्णन करने का अनुरोध किया। जिनका नाम सुनने से पिता मतवाले हो जाते हैं उनकी लीला-कथा सुनने के लिए बेटे को इच्छा हुई है, इससे उनका हृदय आनन्द से अधीर हो उठा। प्रेमिक-चूड़ामणि चैतन्य देव और उनके पारिषदों की कथा कहते-कहते

चैतन्यदास आनन्द में विह्वल हो गये। श्रीनिवास भी पिता के मुँह से गौर की चित्त-विमोहिनी लीला-कथा सुनकर भावावेश में लगभग अचेत हो गये।

इस प्रकार पिता-पुत्र मधुर भक्ति और भक्तों के चरित-प्रसङ्ग में समय बिताने लगे।

कुछ दिनों में चैतन्यदास को ज्वर आने लगा और इसी बीमारी में उनका देहान्त हुआ। लक्ष्मीप्रिया रो-रोकर बेचैन हो गईं। श्रीनिवास की हिम्मत टूट गई। उनकी आँखों से विषाद के आँसू बहने लगे। सुबुद्धि-सम्पन्न श्रीनिवास ने पिता के वियोगशोक से सन्तप्त रहने पर भी माता को ढाढ़स बँधाया और ठीक समय पर पिता का श्राद्ध आदि किया।

श्रीनिवास इससे पहले ही जाजिग्राम-निवासी अपने नाना बलराम आचार्य की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हो गये थे। अब चैतन्यदास का देहान्त हो जाने पर वे अपनी माता के साथ जाजिग्राम में जाकर नाना के घर रहने लगे। श्रीनिवास उस समय युवा पुरुष थे, किन्तु इसी उम्र में उनके पाण्डित्य और धर्मानुराग की चर्चा चारों ओर फैल गई थी। जाजिग्राम में उनके बस जाने पर गाँववालों को बड़ा आनन्द हुआ। श्री-निवास भी वहाँ जाकर, भक्त वैष्णवों के साथ एकत्र हो, भक्ति और भक्तों की चर्चा करके आनन्द मनाने लगे।

जिन्होंने उस समय भक्ति के प्रभाव से बङ्गाल को मतवाला बना दिया था उन्हीं गौराङ्ग को देखने के लिए श्रीनिवास के

प्राण व्याकुल हो उठे। वे अब स्थिर न रह सके। उस मोहन-मूर्ति को एक बार देखकर जीवन को शीतल करने के लिए उन्होंने सरकार ठाकुर प्रभृति चैतन्यानुगत भक्तों से सलाह करके पुरुषोत्तमपुरी की यात्रा कर दी। जाते समय सरकार ठाकुर ने एक मनुष्य को उनके साथ कर दिया।

इस आदमी के साथ श्रीनिवास पुरी की ओर चले। बड़े आनन्द से वे रास्ते में जा रहे थे कि एक हृदय-विदारक संवाद उन्होंने सुना। जिनके मुख-चन्द्र को देखने के लिए वे बड़ी उत्सुकता से जा रहे थे वही श्रीकृष्ण चैतन्य अदृश्य हो गये। चैतन्य के गुप्त होने का संवाद सुनते ही श्रीनिवास मूर्च्छित होकर गिर पड़े। फिर चेत होने पर सिर पीटने लगे और घबराहट के मारे दुबारा मूर्च्छित होकर गिर पड़े। आँसुओं से उनका वक्षःस्थल भीगने लगा। इस सुन्दर युवा पुरुष का यह भाव देख दर्शकों का हृदय भी दुःख से विदीर्ण होने लगा। बहुतों की आँखों से आँसू बहने लगे।

३

इस प्रकार विलाप और रोदन करने में दिन बीत गया। सन्ध्या समय अशान्ति की ज्वाला मानो हृदय में और भी प्रबलतर हो उठी। श्रीनिवास ने सोचा कि जब इस जीवन में श्रीचैतन्य-दर्शन की आशा रही नहीं तब इस देह को त्याग देना ही ठीक है। उनका हृदय शोक से दबा हुआ था और शरीर

थक गया था। इस दशा में जब वे लेटकर सोच-विचार करने लगे तब नींद आ गई। लिखा है कि श्रीचैतन्य ने स्वप्न में दर्शन देकर उनसे कहा—"दुःख को हटाकर शीघ्र ही पुरी को जाओ। वहाँ गदाधर प्रभृति भक्त तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" निद्रा टूटने पर श्रीनिवास को, इस दुःख के समय भी, सान्त्वना मिली। रात बीतने पर सबेरे वे आगे को चले।

चलते-चलते पुरुषोत्तमपुरी में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर क्या देखा कि गौर के वियोग में सभी के प्राण व्यथित हैं। गदाधर पण्डित का आश्रम पूछने पर एक व्यक्ति ने कहा—"गौर के वियोग में पण्डित गोस्वामी जीवन्मृत की भाँति रहते हैं।" फिर वह श्रीनिवास को साथ लेकर पण्डित गदाधर के आश्रम तक पहुँचा आया। समुद्र-किनारे एक सुन्दर बाग़ में गदाधर रहते थे। श्रीनिवास ने आश्रम में जाकर देखा कि गदाधर अचेत पड़े हैं और उनकी आँखों से लगातार आँसू जारी हैं। उनकी यह दशा देख श्रीनिवास ने और कुछ कहने का साहस न किया। वे बग़ीचे के एक कोने में ठहर गये। दूसरे दिन समुद्र-स्नान और जगन्नाथ देव के दर्शन करके चैतन्यानुगत-प्राण परम भक्त गदाधर पण्डित की कुटी के द्वार पर जाकर वे श्रीचैतन्य का नाम लेते हुए गदाधर के चरणों पर लोट गये। श्रीचैतन्य का नाम सुनते ही गदाधर के शरीर में मानो तड़ित्‌शक्ति सञ्चरित हुई और उन्हें नवीन बल प्राप्त हुआ—

उनके शोक-सन्तप्त हृदय में शान्ति का जल सिञ्चित हुआ। सोकर जागे हुए व्यक्ति की भाँति वे उठ बैठे। उन्होंने श्रीनिवास को हृदय से लगाकर कहा—तुम कौन हो, जिन्होंने ऐसे मधुर नाम का उच्चारण करके मेरे प्राणों को शीतल कर दिया!

श्रीनिवास को स्नेहालिङ्गन करते ही पण्डित गदाधर समझ गये कि यह असाधारण युवक है। अन्त में पूरा परिचय पाकर उन्होंने कहा—"भैया, मैंने तुम्हारे ही विषय में स्वप्न देखा है। मैंने स्वप्न में जो कुछ देखा है वह तुम्हारी बात से सोलहों आने मिल गया। तुमको देखते ही आज मेरे प्राण शीतल हो गये।" अब उन्होंने श्रीनिवास के साथ एक आदमी करके कहा कि इन्हें पुरी के भक्तों का दर्शन करा लाओ। उसके साथ जाकर श्रीनिवास ने सार्वभौम आचार्य और राय रामानन्द प्रभृति भक्तों के दर्शन किये। फिर वे हरिदास के समाधिस्थल पर पहुँचे। हरिदास के नामानुराग और उनके अपूर्व मधुर जीवन की कथा सुनकर श्रीनिवास भाव में मग्न हो गये, उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। जब वे सँभल न सके तो मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

पुरी के अनेक स्थानों का दर्शन और भक्तों से भेट करके श्रीनिवास गदाधर पण्डित के आश्रम में लौट आये। वहाँ उन्हें गदाधर पण्डित ने महाप्रसाद भोजन कराया। जब भोजन कर चुके तब गदाधर पण्डित ने कहा—"महाप्रभु मुझे आज्ञा दे

गये हैं कि मैं तुम्हें भागवत पढ़ाऊँ। वे यह भी कह गये हैं कि तुम (श्रीनिवास) वृन्दावन में जाकर रूप और सनातन के बनाये भक्तिशास्त्र को पढ़ो और गौड़ देश में भक्ति धर्म का प्रचार करो। किन्तु दुःख की बात यह है कि मेरे पास जो भागवत की पोथी है उसके कितने ही अक्षर, आँसू गिरने के कारण, मिट गये हैं। मैं सरकार ठाकुर के नाम एक चिट्ठी लिखे देता हूँ। इसे लेकर तुम झटपट गौड़ देश को जाओ; वे तुम्हें भागवत की नई पोथी देंगे। मैं बहुत दिनों तक जीवित न रहूँगा; नई पुस्तक लेकर चटपट मेरे पास आ जाओ।" अब श्रीनिवास तुरन्त ही गदाधर की चिट्ठी लेकर गौड़ देश को गये।

गौड़ देश में पहुँचकर श्रीनिवास श्रीखण्ड नामक स्थान में सरकार ठाकुर के समीप पहुँचे और उन्हें गदाधर पण्डित की चिट्ठी दी। श्रीनिवास ने विशेष रूप से बतलाया कि गौर का तिरोभाव हो जाने से श्रीक्षेत्र बिलकुल श्रीहीन हो गया है। बङ्गाल में इससे पहले ही गौर के तिरोभाव की ख़बर फैल चुकी थी। गौर के लिए सरकार ठाकुर और श्रीनिवास दोनों ही रोदन करने लगे। श्रीखण्ड में श्रीनिवास सिर्फ़ एक ही दिन ठहरे और भागवत पढ़ने के लिए तुरन्त ही पुरी को चल दिये।

श्रीनिवास अभी रास्ते में ही थे कि उन्हें गदाधर पण्डित के वैकुण्ठधाम पधारने के समाचार मिले। यह संवाद सुनने

से उनका वक्षःस्थल विदीर्ण होने लगा, आँखों से आँसू बरसने लगे। वे अब पुरी का रास्ता छोड़कर फिर गौड़ को लौट चले। अभी वे घर न पहुँचे थे कि रास्ते में ही उन्हें अद्वैताचार्य और नित्यानन्द के देहान्त होने का संवाद मिला। इससे पहले ही गदाधर के परलोक-गमन का संवाद सुनने से उनकी हिम्मत टूट गई थी। अब भक्ति-धर्म के इन प्रसिद्ध नेताओं के लोकान्तरित होने का समाचार सुनने से वे शोक से अधीर हो रो-रोकर धूल में लोटने लगे—छाती पीटने और सिर के बालों को नोचने लगे।

इस प्रकार रोने और विलाप करने में ही सारी रात बीत गई। सवेरा होने पर श्रीनिवास गौड़ की ओर चले और श्रीखण्ड में पहुँचकर सरकार ठाकुर को रो-रोकर सब हाल सुनाने लगे। श्रीनिवास कुछ दिन तक श्रीखण्ड में सरकार ठाकुर के पास रहे और फिर श्रीगौराङ्ग का जन्मस्थान तथा लीला-भूमि देखने को गये। नवद्वीप में पहुँचने पर गौर के तिरोभाव और उनकी लीला का स्मरण करके श्रीनिवास का मन भाव से परिपूर्ण हो गया। आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

गौराङ्ग की पत्नी विष्णुप्रिया देवी, स्वामी के संन्यासी हो जाने पर, कठोर ब्रह्मचर्य का पालन कर रही थीं। घर के भीतर रहतीं और किसी पुरुष का मुँह न देखती थीं। कुछ लोग उनकी परिचर्या किया करते थे। दिन भर वे हरिनाम का जप और अपने देवतुल्य स्वामी के गुणों का कीर्तन करतीं

और दिन डूबने पर थोड़े से चावल बनाकर अपने इष्टदेव को भोग लगा कर खा लेती थीं। गौर-भक्त श्रीनिवास जब नवद्वीप में पहुँचे तब उन्हें यह संवाद सुनाया गया। कहा जाता है कि विष्णुप्रिया देवी ने उनके आने से पहले ही रात को स्वप्न में देखा था कि श्रीगौराङ्ग उनके सामने उपस्थित होकर श्रीनिवास की गुणावली का उल्लेख करके उनके आगमन का समाचार सुना रहे हैं। शची देवी की रक्षा का भार गौर ने दामोदर पण्डित को सौंपा था। शची देवी का देहान्त हो जाने पर उक्त पण्डितजी ही विष्णुप्रिया देवी की खोज ख़बर लेते रहते थे। विष्णुप्रिया की अनुमति से श्रीनिवास गौर के घर बुलाये गये। वहाँ उन्होंने विष्णुप्रिया को उद्देश करके साष्टाङ्ग प्रणाम किया। विष्णुप्रिया ने घर के भीतर से ही उन्हें देखा और दासियों के द्वारा उन्हें वात्सल्य भाव से आशीर्वाद दिलाया। फिर अपने बाहरी घर में उन्हें कई दिनों तक टिकाया। इसके अनन्तर विष्णुप्रिया ने उन्हें शान्तिपुर और खड़दह के दर्शनार्थ भेजा। साध्वी विष्णुप्रिया की चरण-रज को माथे से लगा-कर श्रीनिवास, अद्वैत की निवास-भूमि शान्तिपुर और नित्या-नन्द के प्रचार-क्षेत्र खड़दह को देखने गये। शान्तिपुर में अद्वैत की पत्नी सीता देवी ने श्रीनिवास को बड़े आदर से अपने घर ठहराया और अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन कराया। सीता देवी के चरणों की वन्दना करके और उनका आशीर्वाद लेकर श्रीनिवास खड़दह को गये। वहाँ वे नित्या-

नन्दजी के घर ठहरे। वहाँ पर नित्यानन्द की दोनों पत्नियों और पुत्र वीरभद्र ने उन्हें बड़े आदर से ठहराकर भोजन आदि कराया। वहाँ कुछ दिन तक रहकर वे उनकी चरण-रज लेकर खानाकुल कृष्णनगर में अभिराम गोस्वामी के घर गये। वहाँ भी गोस्वामी और उनकी पत्नी मालिनी देवी ने श्रीनिवास की बड़ी आव-भगत की। जब वे वहाँ से चलने लगे तब अभिराम गोस्वामी ने कहा—श्रीनिवास, शीघ्र वृन्दावन में जाकर गोपाल भट्ट से दीक्षा लो। उस पुण्यभूमि में तुम रूप, सनातन और रघुनाथ दास प्रभृति भक्तों के दर्शन करके सुखी होगे। श्रीचैतन्य कृपा करके तुम्हारे द्वारा अपना काम करा लेंगे—उन्हीं की कृपा से तुम गौड़ देश में भक्ति की धारा प्रवाहित करने में समर्थ होगे।

अब श्रीनिवास माता की आज्ञा लेकर श्रीवृन्दावन को गये। रास्ते में वे कटवा में पहुँचकर श्रीचैतन्य के संन्यासी होने का स्मरण करके आँसू बहाने लगे। वहाँ से नित्यानन्द के जन्मस्थान एकचक्रा, वहाँ से गया और फिर प्रयाग एवं अयोध्या आदि स्थानों का दर्शन करते हुए मथुराजी पहुँचे। किन्तु यहाँ पर इन्हें एक घोर दुःखद समाचार सुनना पड़ा। वह यह कि सनातन गोस्वामी भवधाम छोड़कर वैकुण्ठवासी हो गये। इस संवाद से अत्यन्त विकल होकर विलाप करते हुए वे वृन्दावन की ओर चले। इसके बाद उन्हें रघुनाथ दास और रूप गोस्वामी के परलोक-वास की

ख़बर मिली। एक शोक को वे अभी सँभाल भी न सके थे कि यह दूसरा पहाड़ उन पर आ गिरा। इन सब चोटों को सहकर वे वृन्दावन में पण्डिताग्रगण्य श्री जीव गोस्वामी के आश्रम में पहुँचे। इन्हें देखते ही जीव गोस्वामी ने बहुत ही प्रसन्न होकर कहा—"कल रात को मुझे तुम्हारे आगमन का स्वप्न हुआ है।" फिर वे उन्हें गोपाल भट्ट के समीप ले गये। वैष्णव ग्रन्थकारों ने लिखा है कि गोपाल गोस्वामी को भी रात को स्वप्न में श्रीनिवास के वृन्दावन में पहुँचने का समाचार मालूम हो गया था। श्रीनिवास ने भट्ट गोस्वामी को प्रणाम किया तब उन्होंने श्रीनिवास के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"आज तुम्हें देखकर मैं बहुत सुखी हुआ। मैं बहुत दिन से तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। महाप्रभु ने तुम्हारे विषय में जो कुछ लिखा था वह मैंने रख छोड़ा है।" श्रीकृष्ण चैतन्य के पत्र को देख श्रीनिवास भाव में मग्न हो नीचे गिर पड़े। चेत होने पर कुछ देर में जीव गोस्वामी उन्हें अपने आश्रम में ले गये और दूसरे दिन भट्ट गोस्वामी से दीक्षा लेने का भी निश्चय हो गया।

४

दीक्षा के दिन जीव गोस्वामी श्रीनिवास को भट्ट गोस्वामी के पास ले गये तब उन्होंने श्रीनिवास की दीक्षा का कार्य रीति-

पूर्वक किया। दीक्षा के दिन बहुत-से भक्तों को निमन्त्रण दिया गया। दीक्षा हो चुकने पर श्रीनिवास ने भट्ट गोस्वामी और जीव गोस्वामी की चरण-वन्दना करके सब लोगों को अभिवादन किया। श्रीनिवास ने वृन्दावन में रहकर श्री जीव गोस्वामी से भक्ति-ग्रन्थों का अध्ययन किया। थोड़े समय में ही उन्होंने रूप और सनातन गोस्वामी के बनाये तथा अन्यान्य भक्ति-ग्रन्थों का अध्ययन करके भक्तितत्त्व में विशेष पारदर्शिता प्राप्त कर ली। उनके पाण्डित्य का यश चारों ओर फैल गया। यहाँ रहते समय भक्त नरोत्तम दास और श्यामानन्द के साथ उनका परिचय हुआ। इन तीनों भक्तों ने भक्तितत्त्व पर विचार करने और नाम-कीर्तन करने में समय बिताया।

श्री जीव गोस्वामी ने श्रीनिवास आचार्य को बङ्गाल में भक्तिधर्म का प्रचार करने के उपयुक्त पात्र समझा। ग्रन्थों के बिना भक्तिधर्म का प्रचार किस प्रकार होगा? इसके लिए उन्होंने रूप-सनातन-विरचित और अपने बनाये तथा अन्यान्य ग्रन्थ देकर उन्हें बङ्गाले को भेजने की व्यवस्था की। रासोत्सव के समय एक दिन बड़ी भीड़भाड़ में वैष्णव-मण्डली के बीच श्री जीव गोस्वामी ने बङ्गाल में भक्ति-धर्म का प्रचार करने की आवश्यकता के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य प्रकट किया, और श्रीनिवास आचार्य के पाण्डित्य तथा उनके भक्ति-भाव का उल्लेख करके कहा—"बङ्गाल में भक्तिधर्म का प्रचार

के पास लिख भेजा और नरोत्तम तथा श्यामानन्द को घर भेजकर कहा—यदि पुस्तकें न मिलेंगी तो मैं घर न आऊँगा।

इस प्रकार वे विष्णुपुर के गली-कूचों में घूमने लगे। एक दिन वे एक पेड़ के नीचे बैठे थे कि कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण-कुमार के साथ उनका परिचय हुआ। कृष्णदास ने उन्हें साधारण आदमी समझा था किन्तु उनके पाण्डित्य का परिचय पाकर वह दङ्ग हो गया। इसके साथ श्रीनिवास ने राजा हम्मीर की सभा में जाना चाहा तो कृष्णदास उन्हें वहाँ ले गया। राजा की सभा में भागवत का पाठ होता और राजा स्वयं सुनते थे। कृष्णदास जब श्रीनिवास को राजसभा में ले गया तब एक पण्डित भागवत के श्लोक का अर्थ कर रहा था। श्रीनिवास मैले-कुचैले कपड़े पहने सभा में एक तरफ़ जा बैठे। किन्तु भागवत का अशुद्ध अर्थ सुनकर वे चुपचाप बैठे न रह सके; उन्होंने पण्डित को उसकी भूल बतला दी। राजपण्डित ने पहले तो श्रीनिवास को मैले-कुचैले कपड़े पहने देख उन्हें साधारण मनुष्य समझ उनके प्रतिवाद की कुछ परवा न की किन्तु श्रीनिवास ने जब दुबारा टोककर भूल बतलाई तब पण्डित ने क्रोध करके कहा—"कौन साधारण-सा आदमी मेरे किये हुए अर्थ को ग़लत बतलाता है?" तब वीर हम्मीर ने श्रीनिवास से अर्थ करने के लिए कहा। श्रीनिवास के श्लोक पढ़कर उसका अर्थ करने पर सभी श्रोता उनकी सुमधुर और युक्ति-पूर्ण व्याख्या सुनकर मुग्ध

डाकुओं के मुखिया राजा वीर हम्मीर भक्तिमार्ग के पथिक हो गये।

६

वनविष्णुपुर से श्रीनिवास आचार्य जाजिग्राम में अपनी माता के समीप पहुँचे। बहुत दिनों में पुत्र को देखकर माता को अपार आनन्द हुआ। अब आचार्य अपने घर रहकर अध्ययन-अध्यापन और भक्तों के साथ हरिनाम-कीर्तन करने लगे। आचार्य के पाण्डित्य और भगवद्भक्ति पर लोग मुग्ध हो गये। चारों ओर उनकी वाहवाह होने लगी। नरोत्तम दास और श्यामानन्द भी आचार्य के समीप आकर भक्तितत्त्व की चर्चा और नाम-कीर्तन करने लगे।

कुछ दिनों में श्रीनिवास की माता लक्ष्मीप्रिया का देहान्त हो गया। उनका श्राद्ध आदि श्रीनिवास ने किया। माता का वैकुण्ठवास होने के अनन्तर, श्रीखण्ड-निवासी सरकार ठाकुर के अनुरोध से उन्होंने विवाह कर लिया। उस समय उनकी अवस्था उनचास वर्ष की थी। आचार्य धर्मानुगत होकर संसार-धर्म का पालन करने लगे। जो उनके घर आकर टिकता था उसका यथेष्ट आदर किया जाता था। इस प्रकार कुछ दिनों तक अपने गृहस्थाश्रम में रहकर वे फिर वृन्दावन को गये। उस समय उनके दीक्षागुरु गोपाल भट्ट का शरीरान्त हो चुका था। इन्हें देखकर श्री जीव गोस्वामी और अन्यान्य

भक्तों को परमानन्द हुआ। जीव गोस्वामी ने इस समय अपनी बनाई कुछ और पुस्तकें आचार्य श्रीनिवास को दीं। कुछ दिन तक वृन्दावन-वास करके आचार्य फिर गौड़ देश में अपने घर लौट आये। यहाँ आकर पहले की तरह अपने जीवन का कार्य करने लगे। इन्हीं के प्रभाव से भक्ति-शास्त्र का मर्म लोगों की समझ में आया। वे वैष्णवों के उत्सवों में जाकर भागवत तथा अन्यान्य भक्तिशास्त्रों का पाठ और अर्थ सुनाकर लोगों के चित्त को विमुग्ध किया करते थे। एक ओर उनमें जैसा गम्भीर पाण्डित्य था दूसरी ओर वैसी ही भगवन्निष्ठा थी। इन दोनों ने उनके जीवन को एक अपूर्व शोभा से युक्त कर दिया था। उस समय गौड़ देश के वैष्णवों के मुखिया की हैसियत से उन्होंने बहुत अधिक आदमियों को भक्तिमार्ग का पथिक कर दिया था। यहाँ रहते समय उन्होंने सुविख्यात रामचन्द्र कविराज को वैष्णव धर्म की दीक्षा दी थी। रामचन्द्र सुपण्डित होने के अतिरिक्त घोर तार्किक थे। किन्तु श्रीनिवास के पाण्डित्य के आगे उन्हें हार माननी पड़ी। आचार्य से दीक्षा लेकर और उन्हीं के अनुगत शिष्य होकर रामचन्द्र सदा उन्हीं के साथ रहने लगे।

श्रीनिवास आचार्य ने गुरु की आज्ञा से अपना दूसरा विवाह भी किया था। किन्तु घर-गृहस्थी में रहकर भी वे मुक्त जीव की भाँति रहते थे। इससे यौवन के भक्तिभाव में

रत्ती भर भी अन्तर नहीं पड़ा। उन्होंने संसार-धर्म का पालन भी आदर्श रूप से किया था। श्रीनिवास इस प्रकार गौड़ देश में सबके भक्ति-भाजन होकर निवास करने लगे। वनविष्णुपुर के राजा साहब उनके शिष्य होकर हरिनाम लेने में मधुमय जीवन बिता रहे थे। अधिक अनुराग होने के कारण वे जाजिग्राम में अपनी रानी के साथ आकर आचार्य के दर्शन किया करते और अपने पुराने अपराध का उल्लेख करके रो-रोकर आचार्य के चरणों पर लोटने लगते थे। आचार्य उन्हें समझाकर कहते कि भगवान् ने तुम्हारे सभी अपराधों को क्षमा कर दिया है। राजा ने वनविष्णुपुर में श्रीनिवास के रहने के लिए भवन बनवा दिया था और अनेक प्रकार से उन्हें द्रव्य तथा सम्पत्ति देकर सहायता की थी। आचार्य बीच-बीच में विष्णुपुर में राजा के दिये हुए भवन में जाकर ठहरते और राजा के साथ भगवत्-कथा की चर्चा एवं नाम-कीर्तन किया करते थे।

वैष्णवों के लिए वृन्दावन प्रधान चित्ताकर्षक स्थान है। श्रीनिवास बुढ़ापे में वहाँ फिर पहुँचे। वे फिर गौड़ देश को नहीं लौटे। उनके जीवन का कार्य समाप्त हो गया। श्री-कृष्ण चैतन्य ने श्रीनिवास के पिता चैतन्यदास से कहा था—"तुम्हारे जो पुत्र होगा उसमें हमारा भाव प्रकट रहेगा।" सो श्रीनिवास के जीवन में बहुत अधिक परिमाण में वह लक्षित हुआ था। रूप, सनातन और जीव गोस्वामी के

बनाये ग्रन्थों के गम्भीर तात्पर्य का इन्होंने बङ्गाल में प्रचार किया; तथा शुष्क ज्ञानाभिमानियों को भक्ति-परायण बना दिया। चैतन्य के भक्तिधर्म को इन्होंने पाण्डित्य के साथ बङ्गाल में प्रतिष्ठित किया—और भक्ति के कोमल तथा मधुर भाव द्वारा सर्वसाधारण के चित्त को हरि-नाम-रस से सींच दिया। इस प्रकार इन्होंने चैतन्य की भविष्यद्वाणी को सफल किया।

नरोत्तम दास

१

कोई चार सौ व ' पहले रामपुर बोआलिया के अन्तर्गत पद्मा नदी के किनारे खेतरी गाँव में कृष्णानन्द दत्त नाम के एक कायस्थ राजा रहते थे। उनकी उपाधि मजूमदार थी। राजा साहब की पत्नी का नाम नारायणी था। वैष्णव लेखक कहते हैं कि जिस प्रकार श्रीनिवास आचार्य ने श्रीचैतन्य के आकर्षण से जन्म लिया था उसी प्रकार इनके भी नित्यानन्द के शुभ आशीर्वाद से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम नरोत्तम रक्खा गया। माघी पौर्णिमा को नरोत्तम का जन्म हुआ। पुत्र उत्पन्न होने से माता-पिता को अपार आनन्द हुआ। पुत्र का मुँह देखने से भावावेग में कृष्णानन्द की आँखों से आँसू बरसने लगे। सन्तान उत्पन्न होने की ख़ुशी में राजा ने सबको यथायोग्य दान देकर सन्तुष्ट किया। नया बालक उत्पन्न होने के कारण खेतरी में घर-घर आनन्द-बधावा हुआ।

ठीक समय पर राजा कृष्णानन्द ने बड़ी धूमधाम के साथ पुत्र का नामकरण संस्कार किया। राजकुमार के चेहरे पर

अपूर्व ज्योति देखकर किसी ज्योतिषी ने कहा था—इस बालक का नाम नरोत्तम रक्खा जाय।

नरोत्तम ठीक समय पर विद्या पढ़ने को बिठाये गये। राजकुमार को पढ़ाने के लिए अच्छे-अच्छे मास्टर ढूँढ़े गये। नरोत्तम का जैसा सुन्दर रूप था वैसी ही उनकी प्रखर बुद्धि थी। वे थोड़े ही समय में साहित्य और व्याकरण आदि में व्युत्पन्न हो गये। उनकी असाधारण बुद्धि देख सभी वाहवाह करने लगे। नरोत्तम की जैसी-जैसी उम्र बढ़ने लगी वैसे-वैसे वे अनेक विद्याओं के ज्ञाता हो गये। चारों ओर उनका नाम हो गया। जो भविष्यत् में जीवन के अपूर्व वैराग्य और भक्ति के प्रभाव से सर्वसाधारण के चित्त को मोहित करेंगे वह भाव उनके बचपन से ही हृदय में प्रकट होने लगा। अपने बेटे के विवाह के लिए कृष्णानन्द उद्योग करने लगे; कायस्थ-ख़ानदान की सुन्दरी कन्या ढूँढ़ने के लिए कर्मचारियों को हुक्म दिया गया। किन्तु नरोत्तम के प्राण-पक्षी तो राज-पद और ऐश्वर्य के सुख से दूर—चिदानन्द आकाश में—विचर रहे थे। वे एकान्त में हरिनाम का कीर्तन करने लगे। विद्यार्थिदशा में उन्होंने गौर का और उनके पार्षदों का नाम सुना था, इसलिए वे सदा गौर-लीला कथन करने और अद्वैताचार्य तथा नित्यानन्द प्रभृति की मधुर कार्यावली के प्रसङ्ग में बड़ा आनन्द मनाते थे। इन भक्तों के प्रभाव ने उनके मन पर यहाँ तक अधिकार कर लिया था कि वे अपना विवाह कराने

में बिलकुल अनिच्छा प्रकट करने लगे। घर-गृहस्थी के प्रति बेटे की उदासीनता और विवाह में अनिच्छा देख राजा कृष्णानन्द को बड़ी चिन्ता हुई। चित्त की ऐसी दशा होने पर मनुष्य संसार-सुख को धता बताकर संन्यासी हो जाया करता है—इसलिए नरोत्तम पर नज़र रखने के लिए पहरेदार नियुक्त कर दिये गये कि कहीं यह भाग न खड़ा हो। इसी बीच श्रीनिवास का नाम सुनकर नरोत्तम दास उन पर अत्यन्त अनुरक्त हो गये थे। अब वे उनके दर्शनों के लिए व्याकुल थे।

दुनियादारी से बचकर भाग निकलने के लिए नरोत्तम मौक़ा ढूँढ़ने लगे। राजभवन के पहरेदार उनके उद्देश्य को विफल करने के लिए हमेशा उन पर इस तरह नज़र रखते थे जैसे कि क़ैदी पर रक्खी जाती है। किन्तु नरोत्तम का मन उदास रहता था; वे अपने हृदय में शक्ति और शान्ति प्राप्त करने के लिए गौराङ्ग और उनके भक्तों का नाम ले-लेकर रोया करते थे।

इन्हीं दिनों खेतरी गाँव में एक ब्राह्मण देवता रहते थे। उनका नाम कृष्णदास था। वे थे भी कृष्ण-परायण। जब वे नरोत्तम के पास आते तब नरोत्तम उन्हें प्रणाम करके आसन पर बिठलाते थे। कृष्णदास बैठते ही गौर-लीला, और अद्वैत, नित्यानन्द, रूप, सनातन तथा रघुनाथ प्रभृति भक्तों के जीवन की मधुमय चर्चा छेड़ देते थे। इन कथाओं के श्रवण करने से नरोत्तम दास का भाव-प्रवण हृदय भाव-रस से उमँगने लगता

था। वे कृष्णदास के चरण पकड़कर रोते-रोते कहते—और भी सुनाइए, सुनने से प्राण शीतल होंगे।

कृष्णदास जिनकी कथा कहते थे वे अब संसार में नहीं हैं। गौर गुप्त हो गये; हरिदास, रूप, सनातन और रघुनाथ प्रभृति भी जिस समय चल बसे थे उस समय उन पर नरोत्तम का अनुराग हुआ था।

नरोत्तम को इन आँखों से गौर और उनके भक्तों के दर्शन न हो सके, इस चिन्ता से उनका वक्षःस्थल विदीर्ण होने लगा। राजभोग में उन्हें सुख नहीं, धन-दौलत भी उनकी व्याकुलता को हटाने में असमर्थ है; उनके हृदय-पट पर गौर-लीला की मनोहर छवि उदित होकर उन्हें भाव में मग्न किये रहती थी। रूप, सनातन और रघुनाथ प्रभृति का वैराग्य-प्रणोदित जीवन ही नरोत्तम के लिए आदर्श हो गया। उन्होंने छिपकर घर से भाग निकलने का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। मन की इस दशा में वे दिन काटने लगे। एक दिन, रात के समय, स्वप्न में उन्होंने गौर को अपने पास आते देखा। उनके चित्त-विमोहन रूप, घुँघराले केश, कानों में कुण्डल, आजानुलम्बित भुजाएँ, विशाल वक्षःस्थल, कण्ठ में मनोहर मणिहार, कटि में पीताम्बर और चरणों में मनोहर नूपुरों को नरोत्तम ने देखा। तब वे रोते-रोते उनके चरणों पर लोट गये। उन्होंने प्रभु की यह आज्ञा सुनी—"सब चिन्ताओं को छोड़कर शीघ्र वृन्दावन को जाओ और वहाँ लोकनाथ से

दीचा लो।" यह आज्ञा देकर गौर-मूर्ति अदृश्य हो गई। इधर नरोत्तम भी जाग उठे।

२

नरोत्तम अब घर में न ठहर सके; मौक़ा पाकर वृन्दावन को चल पड़े। उनके भागने की ख़बर चारों ओर फैल गई। राजा-रानी ने सुना कि हमारा एकलौता बेटा हमें छोड़कर चला गया। इससे वे दोनों शोक से बेचैन हो गये। नरोत्तम का नाम ले-लेकर माता रोने लगी। इधर राजकुमार नरोत्तम बड़ी प्रसन्नता से वृन्दावन की ओर बढ़ने लगे। किन्तु बहुत थोड़ा भोजन मिलने अथवा बिलकुल ही भूखे रहने से, और दुर्गम मार्ग चलते-चलते उनके पैर में एक फफोला हो गया। वे रास्ता चलने में असमर्थ हो एक पेड़ के नीचे अचेत होकर पड़ रहे। जब धीरे-धीरे कुछ आराम हुआ तब फिर उठकर चलने लगे। इस समय वे सोलह वर्ष के थे। जो अनायास ही न-जाने कितने सुख भोग सकते थे वे आज संसार के सभी सुखों से हाथ धोकर दीन-हीन कङ्गाल की तरह वृन्दावन को जा रहे हैं।

चलते-चलते नरोत्तम काशीजी में पहुँचे। श्रीचैतन्य यहाँ पर चन्द्रशेखर के घर कुछ दिनों तक ठहरे थे। नरोत्तम ने उस घर का दर्शन किया। उस समय वहाँ पर एक वृद्ध वैष्णव रहते थे। नरोत्तम काशी से प्रयाग और वहाँ से

मथुरा पहुँचे। उनकी चलने-फिरने की शक्ति धीरे-धीरे घटने लगी, शरीर भी दुबला और अशक्त हो गया। किन्तु चित्त उनका आनन्द से पूर्ण बना रहा। उन्हें इसी का बड़ा आनन्द था कि हम वृन्दावन में साधुओं के दर्शन करके जीवन को शीतल करेंगे और इससे हृदय और भी बलवान् होगा। किन्तु चल न सकने पर, विश्रान्त घाट पर जाकर विश्राम करने के लिए लेट गये। नरोत्तम के पहुँचने की ख़बर जीव गोस्वामी के पास तार की तरह पहुँच गई। वे उन्हें अपने कुञ्ज में ले गये। नरोत्तम ने गोस्वामी के चरणों में भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया। रास्ता चलने की थकावट और भूखे रहने के कारण वे दुबले हो गये थे। जीव गोस्वामी ने उन्हें अपने कुञ्ज में टिकाकर बड़े आदर से भोजन कराया। उनके स्वास्थ्य को सुधारने के लिए उन्होंने विशेष उद्योग किया। कई दिन तक गोस्वामीजी के कुञ्ज में ठहरकर राज-कुमार जब कुछ स्वस्थ हुए तब जीव गोस्वामी उन्हें लोकनाथ गोस्वामी के यहाँ ले गये।

यहाँ पर भक्त लोकनाथ गोस्वामी के सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक है। ये यशोहर ज़िले के अन्तर्गत ताल-खड़ी गाँव के ब्राह्मणवंश में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम पद्मनाभ और माता का सीता देवी था। लोकनाथ इनके एकलौते पुत्र थे। लोकनाथ ने बाल्यावस्था में उत्तम रूप से शिक्षा पाकर युवावस्था में विशेष पाण्डित्य प्राप्त किया

था। विद्यार्थिदशा में इन्होंने सुना कि नवद्वीप में हरिनाम-सङ्कीर्तन के द्वारा गौर ने लोगों को बावला कर दिया है। गौर की भगवद्भक्ति की चर्चा सुनकर इनके मन में एक नये भाव का सञ्चार हुआ। संसार के प्रति इनकी उदासीनता प्रकट होने लगी। बेटे की यह दशा देख माता-पिता चिन्तित होकर उसके विवाह का प्रबन्ध करने लगे। किन्तु लोकनाथ ने विवाह कराना स्वीकार न किया। इससे पद्मनाभ और सीता देवी को और भी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा कि शायद लड़का हमें छोड़-छाड़कर भाग जायगा। अन्त में हुआ भी यही। गौराङ्ग का प्रेमस्वरूप मुँह देखने के लिए लोकनाथ का मन व्याकुल हो गया। वे एक बार आधी रात को निद्रित माता-पिता के पैर छूकर नवद्वीप को रवाना हो गये। तालखड़ी से नवद्वीप कोई दो दिन का रास्ता है। गौर के लिए लोकनाथ रास्ते भर दौड़ते दौड़ते श्रीगौराङ्ग के जन्म-स्थान में जा पहुँचे। वहाँ प्रभु के घर जाकर उनके चरणों पर लोटने लगे। गौर ने लोकनाथ को उठाकर हृदय से लगा लिया। लोकनाथ श्रीगौराङ्ग के घर चार महीने तक रहे। इन कई दिनों तक वे अपने भाव में आप ही मग्न रहते थे। फिर गौर ने उनके पास एकान्त में बैठकर बातचीत के सिलसिले में कहा—"लोकनाथ, मैं शीघ्र ही संन्यासी हो जाऊँगा, अब तुम यहाँ से वृन्दावन को जाना।" वहाँ पर गौर के शिष्य भूगर्भ थे। उन्होंने भी वृन्दावन को जाने

की इच्छा प्रकट करके गौर से कहा—"प्रभो, मैं भी लोकनाथ के साथ वृन्दावन को जाना चाहता हूँ। आपकी अनुमति हो तो चला जाऊँ।" गौर ने इन्हें भी स्वीकृति दे दी। लोकनाथ और भूगर्भ दोनों अगले दिन एक साथ वृन्दावन को रवाना हो गये। दोनों ही कठिन मार्ग होकर चलने लगे। कभी भोजन करने को आहार मिल जाता था और कभी भूखे ही रह जाना पड़ता था। फिर भी उन्होंने उस क्लेश की रत्ती भर भी परवा नहीं की। उनका चित्त तो भगवान् के प्रेमानन्द में मग्न था। वे जिस समय वृन्दावन में पहुँचे उस समय वहाँ की दशा आजकल की जैसी न थी। चारों ओर जङ्गल ही जङ्गल था। वे लोग वृन्दावन में पहुँचकर जङ्गल में घूमने लगे। तीर्थ-स्थान का कोई चिह्न उन्हें न देख पड़ा। उन्हें देख व्रजवासी धीरे-धीरे उनके समीप आने लगे। इन अल्पवयस्क दो युवकों की व्याकुलता और धर्मानुराग देखकर सभी लोग विस्मित हुए। दोनों की ही आँखों से आसू बहते थे, दोनों ही कृष्ण-विरह में व्याकुल थे। यह विचित्र दृश्य देखकर व्रजवासी लोग विमुग्ध हो गये। अन्त में वे उन गौड़ीय युवकों के भोजनार्थ अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुएँ ले आये। श्रीगौराङ्ग ने वृन्दावन के लुप्त तीर्थों का उद्धार करने के लिए इन्हें भेजा था। इनके पश्चात् रूप, सनातन, जीव गोस्वामी और रघुनाथ प्रभृति वैष्णवाचार्यों ने वृन्दावन में पहुँचकर, वहाँ के शोभा-सौन्दर्य की वृद्धि की

और अनेक भक्ति-ग्रन्थों की रचना की। धीरे-धीरे वृन्दावन के लुप्त तीर्थों का उद्धार हुआ और अनेक स्थानों पर नये-नये मन्दिर बन जाने से बहुतेरे भक्तों का समागम होने लगा। यह सब काम असल में गौराङ्ग की ही प्रेरणा से हुआ।

श्रीगौराङ्ग की आज्ञा से लोकनाथ और भूगर्भ ने चिरघाट पर अपने रहने के लिए कुटी बनवाई। वहीं पर वे हरिनाम-साधन और हरिनाम-कीर्तन करने लगे। अगर भोजन करने के लिए कुछ मिल जाता तो खा लेते नहीं तो भूखे ही रह जाया करते थे।

इस जन-कोलाहल-शून्य स्थान में रहकर लोकनाथ साधन-भजन करने लगे। उन्होंने सोचा कि जब हमने सभी कुछ त्याग दिया है तब इस जीवन में और किसी को हम अपना शिष्य न करेंगे। अकेले रहकर कृष्ण भगवान् की आराधना किया करेंगे।

जीव गोस्वामी जब नरोत्तम को लोकनाथ के स्थान में ले गये तब वे सनातन और रूप के वियोग से अधीर हो रहे थे—उनका हृदय दग्ध हुआ जा रहा था। वे चुपचाप अपने निर्जन कुञ्ज में बैठे थे। जीव गोस्वामी से नरोत्तम का परिचय सुनकर लोकनाथ की आँखें आँसू बरसाने लगीं। नरोत्तम के उनको दण्डवत् करने पर उन्होंने संन्यासी युवक राजकुमार को अपने हृदय से लगा लिया। थोड़ी देर में जीव गोस्वामी अपने आश्रम को लौट गये। लिखा है कि नरोत्तम लगभग

एक वर्ष तक वहाँ पर रहे और छिपकर उनका मल-मूत्र आदि फेकने तक की सब प्रकार से सेवा करते रहे। अन्त में भेद खुलने पर वे नरोत्तम पर बहुत ही प्रसन्न हुए और तब उन्होंने नरोत्तम से वृन्दावन आने का कारण पूछा। नरोत्तम ने कहा—"आपसे दीक्षा लेने को ही मैं यहाँ आया हूँ।" लोकनाथ ने सङ्कल्प कर रक्खा था कि हम अपने जीवन में किसी को दीक्षा देकर शिष्य न बनावेंगे। उन्होंने नरोत्तम से भी यह बात कही, किन्तु नरोत्तम व्याकुल हो उनके चरणों पर गिरकर रोते हुए बोले—"आप यदि अपने चरणों में स्थान न देंगे तो फिर मैं और कहाँ जाऊँगा?" नरोत्तम का भाव देख लोकनाथ का हृदय पसीज गया—उनका सङ्कल्प शिथिल हो गया। अब उन्होंने, यह जानने के लिए कि ये हमारी इच्छा के अनुसार चल सकेंगे या नहीं, कुछ प्रश्न किये। उन्होंने पूछा कि तुम ज़िन्दगी भर क्वांरे रहकर और विषयों से विमुख हो मांस-मछली बिना खाये रह सकोगे या नहीं? नरोत्तम ने लोकनाथ के प्रत्येक प्रश्न पर अपनी सम्मति प्रकट करके कहा—मैं प्रभु के आशीर्वाद से सब बातों का पालन करने की चेष्टा ज़िन्दगी भर करूँगा; और आपकी कृपा से सब कुछ कर सकूँगा।

बहुत पुराने सङ्कल्प को हटाकर लोकनाथ ने नरोत्तम को दीक्षा देना स्वीकार कर लिया। श्रावण की पौर्णिमा दीक्षा-दान की तिथि निश्चित हुई। जीव गोस्वामी को भी यह

ख़बर मिली। नरोत्तम के दीक्षा-संस्कार के समय उपस्थित रहने के लिए जीव गोस्वामी ने बहुत लोगों को निमन्त्रण दिया। दीक्षा के दिन प्रातःकाल जीव गोस्वामी प्रभृति महामान्य भक्त, वृक्ष और लतादि से पूर्ण, रमणीय आश्रम में आये। इन भक्तों में श्रीनिवास आचार्य भी थे। लोकनाथ ने दीक्षार्थी को पहले यमुना-स्नान कराया, फिर वे अपने आसन पर जा बैठे। तब जीव गोस्वामी ने नरोत्तम को फूल-माला और चन्दन से सुशोभित करके गुरु के समीप उपस्थित किया। लोकनाथ ने स्तोत्र-पाठ करने के अनन्तर नरोत्तम को, रीति के अनुसार, दीक्षा दी। दीक्षा-कार्य हो चुकने पर सब लोगों ने बड़े हर्ष से हरि-ध्वनि की। कुटी से निकलकर राजकुमार ने सभी भक्तों के चरणों पर माथा रक्खा। उन्होंने भी प्रसन्नता से नरोत्तम को आशीर्वाद दिया। राजा कृष्णानन्द के पुत्र ने सबके आशीर्वाद को मस्तक पर धारण कर, सदा के लिए, भक्ति और वैराग्य का मार्ग ग्रहण कर लिया।

३

दीक्षा-कार्य हो चुकने पर श्री जीव गोस्वामी नरोत्तम को अपने आश्रम में ले गये। यहाँ उन्होंने श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानन्द को भक्ति-शास्त्र की शिक्षा दी। संस्कृत भाषा में भक्ति-शास्त्र-विषयक पचासों ग्रन्थ वृन्दावन में बनाये गये थे। जीव गोस्वामी ने इन तीनों भक्तों को रीति के अनुसार शिक्षा

देकर बङ्गाल में भेजा। श्रीनिवास आचार्य की जीवनी में इसका उल्लेख किया गया है। जीव गोस्वामी ने श्रीनिवास को "आचार्य ठाकुर (महाराज)" और नरोत्तम को "ठाकुर महाशय" की उपाधि दी। विष्णुपुर में ग्रन्थों की चोरी हो जाने पर "आचार्य ठाकुर" ने यह कहकर कि यदि ग्रन्थ न मिलेंगे तो हम प्राण त्याग देंगे, "ठाकुर महाशय" और श्यामानन्द को घर जाने का अनुरोध किया। इच्छा न रहने पर भी ठाकुर महाशय अनुरोध की अवहेला न कर सके और खेतरी गाँव की ओर गये। इधर आचार्य ठाकुर ग्रन्थों का पता लगाने लगे।

ठाकुर महाशय और श्यामानन्द बहुत ही खिन्न होकर आँसू बहाते हुए पद्मा पार होकर खेतरी गाँव में जा पहुँचे। ठाकुर महाशय को देखकर खेतरीवालों को अपार आनन्द हुआ। बहुतों ने दौड़ते-दौड़ते जाकर शोकार्त्त कृष्णानन्द को पुत्र के आगमन का समाचार सुनाया। नरोत्तम के लौट आने का समाचार सुनते ही राजा और रानी दोनों महलों के द्वार पर आ गये। ठाकुर महाशय ने वहाँ पहुँचकर माता-पिता को प्रणाम किया। उन्होंने रोते-रोते खोये हुए बेटे को गले लगा लिया। ठाकुर महाशय अब राजपुत्र नहीं हैं; अब तो वे संन्यासी—भक्ति-मार्ग के यात्री हैं। उन्होंने माँ-बाप से कहा कि हमने संन्यास धर्म ग्रहण कर लिया है, संन्यास-धर्म की दृष्टि से हमारे लिए घर-गृहस्थी में रहना निषिद्ध

है। लोकनाथ गोस्वामी से मन्त्र ग्रहण करते समय उन्होंने जो प्रतिज्ञाएँ की थीं उनका वर्णन भी माता-पिता से कर दिया। वे अपने बेटे की ये बातें सुनकर कुछ कह न सके। हाँ, उनके अनुरोध से ठाकुर महाशय ने महल के समीप ही रहना स्वीकार कर लिया। बेटे की इस बात से उन्हें इतना ही लाभ होगा कि वे उसका मुँह देख सकेंगे। इससे उन्हें थोड़ा-बहुत आनन्द हुआ। संन्यासी राजकुमार को देखने के लिए बहुत से लोग एकत्रित हुए। राजकुमार नरोत्तम दुबले-पतले हैं और सिर्फ़ लँगोटी लगाये हुए हैं। यह देखकर सभी को विषाद हुआ। राजा कृष्णानन्द ने देखा कि नरोत्तम ने तो संसार के सभी सुखों की आशा छोड़ दी है इसलिए उन्होंने अपने छोटे भाई पुरुषोत्तम दत्त के पुत्र सन्तोष दत्त को राजपद पर अभिषिक्त कर दिया।

ठाकुर महाशय, पद्मा के किनारे, वृक्षों और लताओं से परिपूर्ण एक कुटी में श्यामानन्द के साथ रहने लगे। वे दिन-रात साधन-भजन और हरिगुण-गान करने लगे। माता-पिता को सन्तुष्ट रखने के लिए ठाकुर महाशय प्रतिदिन उनके समीप हो आया करते थे। वृन्दावन में श्यामानन्द को उड़ीसा में वैष्णव धर्म के प्रचार का कार्य सौंपा गया था। अतएव इस काम को उत्तम रूप से करने के लिए वे उड़ीसा की यात्रा के लिए तैयार होने लगे। ठाकुर महाशय और श्यामानन्द एक-प्राण और एक-मन होकर रहते थे। उड़ीसा जाने के पूर्व

दोनों भक्तों ने भक्ति-प्रसङ्ग में रात बिताई। सबेरे ठाकुर महाशय ने श्यामानन्द को रास्ते के लिए कलेऊ आदि देकर दो आदमी साथ कर दिये। युवराज सन्तोष दत्त और ठाकुर महाशय पद्मा-किनारे तक श्यामानन्द के साथ गये। हृदय में वियोग का विषाद लेकर श्यामानन्द नाव पर सवार हुए। चलते समय ठाकुर महाशय ने श्यामानन्द से पहुँचने का संवाद भेजने को कह दिया।

तीर्थ-यात्रा करना भक्तों को बहुत पसन्द है। जाते समय श्यामानन्द मार्ग में नवद्वीप, शान्तिपुर—श्रीगौराङ्ग और अद्वैताचार्य के लीलाक्षेत्र—के दर्शन कर धारेन्दा में पहुँचे और वहाँ से साथियों को लौटाकर पहुँच का संवाद ठाकुर महाशय के पास भेजा। भक्त श्यामानन्द उड़ीसा में पहुँचकर वैष्णव धर्म का प्रचार करने लगे।

४

श्यामानन्द के उड़ीसा को जाने पर ठाकुर महाशय को तीर्थ-यात्रा की इच्छा हुई। अब उन्होंने इसकी सूचना माता-पिता को दी। यद्यपि पुत्र को देखे बिना उन्हें चैन न था फिर भी उन्होंने तीर्थयात्रा के लिए अनुमति दे दी। अब ठाकुर महाशय उनके पैर छूकर तीर्थयात्रा के लिए रवाना हुए। भक्त-वैष्णवों के लीला-क्षेत्रों को देखना ही उनकी यात्रा का मुख्य उद्देश्य था। वे पहले श्रीगौराङ्ग के जन्मस्थान और

लीलाभूमि को देखने श्रीनवद्वीप धाम को गये। नवद्वीप के मायापुर धाम में पहुँचकर उन्होंने एक बूढ़े ब्राह्मण से प्रभु के घर का पता पूछा तब उस ब्राह्मण ने भी ठाकुर महाशय का परिचय माँगा। जब वृद्ध को मालूम हुआ कि यही नरोत्तम ठाकुर हैं तब उसने भुजाएँ फैलाकर उन्हें आलिङ्गन किया और रोते-रोते कहा—"भैया, मेरा नाम शुक्लाम्बर है। प्रभु के पधार जाने के पश्चात् मन के दुःख को हृदय में धारण किये हुए अब तक जीवित हूँ।" फिर वे ठाकुर को, हाथ पकड़कर, प्रभु के घर ले गये। जिनकी कीर्त्ति-कथा उनके हृदय में सदा जागती रहती थी उन्हीं प्रभु के घर जाकर ठाकुर महाशय भाव में विभोर हो गये। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। उन्होंने प्रभु के निवास-स्थान आदि के दर्शन किये। फिर वे "हा गौराङ्ग" और "हा विष्णुप्रिया" कहकर रोदन करने लगे। यहाँ पर गदाधर पण्डित आदि के साथ उनकी भेंट हुई। नरोत्तम का नाम इससे पहले ही चारों ओर फैल गया था। ठाकुर महाशय कई दिन तक नवद्वीप में ठहरकर शान्तिपुर को गये। वहाँ पर अद्वैताचार्य के घर आदि के दर्शन करके गङ्गा-पार हो सप्तग्राम में पहुँचे। वहाँ से खड़दह को गये। यहाँ नित्यानन्द की पत्नी जाह्नवी देवी और पुत्र वीरचन्द्र ने उन्हें बड़ी आव-भगत से लिया और अपने घर में ठहराया; जितने दिन तक ठाकुर महाशय वहाँ रहे उतने दिन उन्हें अपने ही घर भोजन आदि

कराया। यहाँ से ठाकुर महाशय खानाकुल कृष्णनगर के प्रवीण वैष्णव अभिराम गोस्वामी के दर्शन करके और उनकी चरण-रज लेकर पुरी को रवाना हुए।

चलते-चलते रास्ते में उस स्थान में पहुँचे जहाँ नित्यानन्द ने गौर का दण्ड तोड़कर फेंक दिया था। उस स्थान को देख वे आनन्दाश्रु बहाने लगे। नरोत्तम के वृन्दावन जाने और ग्रन्थों की चोरी होने के समाचार पहले ही पुरी में पहुँच चुके थे। राजपुत्र नरोत्तम अतुल धन-सम्पत्ति छोड़कर विरक्त हो गये हैं, इस संवाद से सभी के मन में उनके प्रति गम्भीर श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। अब उन्हीं नरोत्तम के पुरी पहुँचने की ख़बर बस्ती भर में फैल गई। ठाकुर महाशय पहले गोपीनाथ आचार्य के घर गये। वे इस समय बूढ़े हो गये थे। नरोत्तम के आगमन का संवाद पाकर उन्होंने उन्हें आनन्द से गले लगा लिया। मन में अनेक बातों का स्मरण हो आने से दोनों भक्तों की आँखों से आँसू बहने लगे। कुछ देर में आचार्य उन्हें जगन्नाथजी के मन्दिर में ले गये। जगन्नाथदेव के दर्शन कराके गोपीनाथ उन्हें अपने घर ले गये। नहा-धोकर और जगन्नाथजी का महाप्रसाद पाकर वे ठाकुर महाशय को काशी मिश्र के घर ले गये। गौर के अन्तिम अठारह वर्ष पुरी में काशी मिश्र के भवन में ही बीते थे। महाप्रभु जहाँ पर केले के पत्तों की शय्या पर लेटते थे, जिस कथरी को ओढ़कर ठण्ड से

बचाव करते थे और जो खड़ाऊँ पहनते थे, उन सब चीज़ों को मिश्र के भवन में देख ठाकुर महाशय गद्गद हो गये।

फिर ठाकुर महाशय समुद्र-किनारे गदाधर के आश्रम में गये। श्रीगोपीनाथजी के स्थान को और जहाँ बैठकर महाप्रभु भागवत सुनते थे, उन सबको ठाकुर महाशय ने देखा। दर्शन करते समय वे "हा गदाधर" कहकर नीचे लोटने लगे। इस प्रकार ठाकुर महाशय कई दिन तक पुरी में ठहरे और गोपीनाथ आचार्य के साथ हरिदासजी की समाधि आदि देख नृसिंहपुर में श्यामानन्द के पास गये। उन्हें देखने से श्यामानन्द को अपार आनन्द हुआ। ठाकुर महाशय ने देखा कि श्यामानन्द का यश उड़ीसा में सर्वत्र फैल गया है। उन्होंने जिस भाव से नाम-कीर्त्तन करके लोगों को बावला बना दिया है उससे क्या धनी और क्या दरिद्र, क्या पण्डित और क्या मूर्ख सभी ने उनसे दीक्षा ले ली। उनके जीवन का सौन्दर्य और अपूर्व भक्तिभाव देख सभी मुग्ध हो गये।

सुवर्णरेखा नदी के तटस्थ रैनी गाँव के राजा अच्युतानन्द के दो पुत्रों—रसिकानन्द और मुरारि—ने श्यामानन्द से दीक्षा ली। एक तो ये राजपुत्र थे और फिर अत्यन्त प्रभावशाली थे। श्यामानन्द जाति के सद्गोप थे किन्तु कितने ही ब्राह्मणों तक ने इनसे दीक्षा ली थी। ठाकुर महाशय के पधारने से नृसिंहपुर में एक आन्दोलन-सा उपस्थित हो गया। संन्यासी राजकुमार—ठाकुर महाशय—के दर्शनार्थ बहुत-से

लोग आने लगे। उनके शुभागमन के उपलक्ष्य में तीन-चार दिन तक उत्सव हुआ। भक्तों के प्राण भाव में उन्मत्त हो गये—अभक्तों ने भी नवजीवन प्राप्त करके हरिनामामृत पान किया। ठाकुर महाशय जब श्रीक्षेत्र से श्यामानन्द के समीप जाने लगे तब पुरीधामवालों ने ठाकुर महाशय से निवेदन किया कि श्यामानन्द भी एक बार पुरी में पधारें। अतः ठाकुर महाशय ने श्रीक्षेत्रवालों के इस अनुरोध का उल्लेख करके कहा—"तुम पहले पुरी हो आना और फिर इष्टमित्रों के साथ खेतरी में हमारे पास आना।" श्यामानन्द के साथ यहाँ कई दिन तक रहकर ठाकुर महाशय गौड़ की ओर चले। वे पहले श्रीखण्ड में आये। वहाँ सरकार ठाकुर के पुत्र रघुनन्दन ठाकुर महाशय को दूर से देख, उनकी अभ्यर्थना करने को आगे बढ़े और उन्हें हृदय से लगाकर भेंट की। ठाकुर महाशय ने रघुनन्दन की चरण-वन्दना की। फिर सरकार ठाकुर के पास जाकर ठाकुर महाशय ने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। सरकार ठाकुर ने उन्हें आनन्दपूर्वक गले लगाया। आँसू बहाते हुए वे ठाकुर महाशय के मुँह को निहारने लगे। उन्होंने कहा—दीर्घजीवी होकर भक्ति का प्रचार करो, प्रभु तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे।

यहाँ से रघुनन्दन उन्हें गौर-प्राङ्गण में ले गये। ठाकुर महाशय के शुभागमन की ख़बर पाकर श्रीखण्ड के बहुतेरे लोगों ने आकर गौर की चर्चा से उस स्थान को पूर्ण कर

दिया। ठाकुर महाशय भी गौराङ्ग की मूर्ति के दर्शन करके परम भक्त के भाव से वहाँ लोट-लोटकर आँसू बहाने लगे। रघुनन्दन अब ठाकुर महाशय को अपने घर ले गये। सरकार ठाकुर ने कहा—"तुम जाजिग्राम में श्रीनिवास से भेट करके घर जाना। वे तुम्हें देखने के लिए व्याकुल हो रहे हैं।" ठाकुर महाशय अगले दिन वहाँ से जाजिग्राम को गये।

ठाकुर महाशय जब श्रीनिवास आचार्य के घर पहुँचे तब वे शिष्यों को शास्त्र पढ़ा रहे थे। वही वनविष्णुपुर में पोथियों की चोरी होने के बाद नरोत्तम से उनकी भेट नहीं हुई, अतएव उन्हें देखकर उनके मन में भाव की तरङ्ग उठी। उन्होंने ठाकुर महाशय को हृदय से लगा लिया। नरोत्तम ने भक्तिपूर्वक आचार्य के चरणों में प्रणाम किया। आचार्य ठाकुर ने व्यासाचार्य के साथ नरोत्तम ठाकुर का परिचय करा दिया। ठाकुर महाशय ने खेतरी में श्रीगौराङ्ग की मूर्त्ति स्थापित करने की वासना श्रीनिवास आचार्य से प्रकट की तब आचार्य ठाकुर ने इस विषय में बहुत उत्साह देकर कहा—"तुम इसके लिए तैयारी करो, समाचार मिलते ही मैं अपने दल के साथ आ जाऊँगा।" यहाँ से वे कटवा को गये। कटवा को भारत का एक प्रधान तीर्थ कहना कुछ बड़ी बात नहीं है। ठाकुर महाशय ने वहाँ पहुँचकर श्रीगौराङ्ग के दीक्षास्थान केशव भारती के आश्रम को देखा। वे वहाँ पर भावावेश में लोटने

लगे। यहाँ से नित्यानन्द के जन्मस्थान एकचाका गाँव को देखते हुए वे अपने गाँव खेतरी में पहुँचे। ठाकुर महाशय जब माता-पिता को प्रणाम कर चुके तब कृष्णानन्द ने कहा—"बेटा, हम बूढ़े हो गये, तुम्हें बीच-बीच में देखते रहने से हमारा जी भरा रहता है। जब तक हम दोनों प्राणी जीवित हैं तब तक हमें छोड़ तुम कहीं अन्यत्र मत जाना।" नरोत्तम ने संन्यासी होने पर भी पिता की यह स्नेह-भरी बात सुनकर कहा—"मैं आपको छोड़कर अब और किसी तीर्थ-स्थान में न जाऊँगा।" यहाँ से ठाकुर महाशय भजन करने को अपनी कुटी में गये।

५

ठाकुर महाशय जब श्रीखण्ड में गये थे तब वहाँ श्रीगौराङ्ग की युगल-मूर्त्ति देखने से खेतरी में भी ऐसी ही मूर्त्ति स्थापित करने की उन्हें प्रबल इच्छा हुई थी। इस सम्बन्ध में एक और भी दन्तकथा है,—गौर ने स्वप्न में दर्शन देकर ठाकुर महाशय से कहा—"विप्रदास के अन्न के गोले (खों) में हमारी युगल मूर्त्ति है, उसको लाकर तुम स्थापित करो।" जो हो, ठाकुर महाशय ने मूर्त्ति की स्थापना करने का दृढ़ सङ्कल्प करके पिता को अपने विचार की सूचना दी। कृष्णानन्द ने पुत्र की वासना को पूर्ण करने के लिए तैयार होकर कहा कि मूर्त्ति की प्रतिष्ठा के लिए हम खेतरी में ऐसे उत्सव की तैयारी

करेंगे जैसा कि गौड़ में किसी ने देखा न होगा। युवराज सन्तोष दत्त भी ठाकुर महाशय के शुभ सङ्कल्प का संवाद पाकर ख़ूब उत्साहित हुए और एक महोत्सव के लिए तैयारी करने लगे। श्रीनिवास आचार्य ठाकुर उस समय वैष्णव समाज के अगुवा थे; इस बड़े उत्सव के लिए उद्योगी होकर सब बातों की देख-रेख यदि वे न करेंगे तो और कौन करेगा? ठाकुर महाशय ने सुना कि आचार्य ठाकुर बूधरि में वैष्णव पद-कर्ता गोविन्द दास के घर टिके हुए हैं। इधर राजभवन में उत्सव की तैयारी होने लगी। आचार्य ठाकुर को बुला लाने के लिए ठाकुर महाशय बूधरि में पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर उनके आगमन की ख़बर आचार्य ठाकुर को मिली। तब उनकी अभ्यर्थना करने के लिए आचार्य ठाकुर ने व्यासाचार्य और रामचन्द्र को भेजा। उक्त दोनों भक्त ठाकुर महाशय का एक-एक हाथ पकड़कर आचार्य के स्थान पर ले गये। कुछ देर तक कृष्ण-चर्चा होने पर ठाकुर महाशय ने मूर्त्तिस्थापन के उद्देश्य से महोत्सव की तैयारी का उल्लेख करके कहा—"आप वहाँ पधारकर इस कार्य की देख-भाल करने का भार ग्रहण करें।" मूर्त्ति-स्थापना का पक्का विचार सुनकर आचार्य ठाकुर ने आनन्द प्रकट किया और कहा कि इस उत्सव में जाने से हमको बहुत सुख होगा। फागुन की पौर्णिमा को श्रीगौराङ्ग की जन्मतिथि के उपलक्ष्य में मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करने का निश्चय हुआ। आचार्य ने नरोत्तम ठाकुर से कहा—"तुम पहले

व्यासाचार्य को ले जाओ, फिर हम और रामचन्द्र प्रभृति आ जायँगे।" गौड़ और उड़ीसा के सभी स्थानों के गौर-भक्तों को पत्र भेजना स्थिर हुआ। पदकर्ता गोविन्द दास ने सुललित संस्कृत पद्य में पत्र का मसविदा बना दिया। बड़े-बड़े महन्तों के नाम की फ़ेहरिस्त बनाई गई। पत्र में यह भी लिख दिया गया कि सबका नाम मालूम न होने से सभी को पत्रद्वारा निमन्त्रण नहीं दिया जा सका। इसलिए प्रत्येक निमन्त्रित व्यक्ति अन्यान्य गौर-भक्तों को अपने साथ लेता आवे।

दूसरे दिन सबेरे व्यासाचार्य, ठाकुर महाशय के साथ, खेतरी को गये। महोत्सव की तैयारी होने लगी। निमन्त्रित व्यक्तियों के ठहरने के लिए खेतरी के चारों ओर घर बनवा दिये गये। आचार्य ठाकुर के ठहरने के लिए एकान्त स्थान में अलग घर बनवाया गया। नाना प्रकार की खाद्य वस्तुएँ बनाई गईं। सैकड़ों करताल और मृदङ्ग आदि की व्यवस्था हुई। मूर्त्ति की स्थापना के लिए मन्दिर बनवाया गया। सभी कामों को सिलसिलेवार कराने के लिए अनेक मनुष्य देख-रेख करने लगे। कृष्णानन्द और सन्तोष दत्त इस महोत्सव के लिए बहुत द्रव्य ख़र्च करने को तैयार हुए।

६

उत्सव का समय जितना ही समीप आने लगा उतना ही शीघ्र अनेक स्थानों से निमन्त्रित व्यक्ति अपने इष्ट मित्रों के

साथ आने लगे। आचार्य ठाकुर, महामहोपाध्याय रामचन्द्र कविराज, गोविन्द दास और श्यामानन्द प्रभृति आ पहुँचे। नित्यानन्द महाराज की पत्नी जाह्नवी देवी, चैतन्य-भागवत-रचयिता वृन्दावन दास प्रभृति अनेक गौर-भक्तों के साथ पधारीं। धीरे-धीरे सैकड़ों सन्त-महन्त आने लगे। कृष्णानन्द और सन्तोष दत्त ने सभी के ठहरने के लिए व्यवस्था कर दी। समीपवर्ती गाँवों से हज़ारों लोगों के आ जाने से खेतरी में अपूर्व जमाव हो गया।

अब महोत्सव का दिन उपस्थित हुआ। जब महन्त लोग स्नान-ध्यान कर चुके तब प्रातःकाल सुविस्तीर्ण और सुसज्जित चँदोवे के नीचे, उन सबके साथ, नये वस्त्र पहनकर, कृष्णानन्द दत्त बैठे। सबके माथे में चन्दन लगाकर फूल-माला पहना दी गई। सैकड़ों नये मृदङ्ग और करताल सभा में रक्खे गये। आचार्य ठाकुर नये वस्त्र पहनकर और चन्दन लगाकर हज़ारों लोगों के बीच चँदोवे के नीचे आये। पहले से ही तय हो चुका था कि मूर्त्ति की स्थापना ये अपने हाथ से करेंगे। तदनुसार आचार्य ने सबके आगे श्रीगौराङ्ग और श्रीराधिका की मोहन-मूर्त्ति स्थापित कर दी। हरिध्वनि से चारों दिशाएँ गूँजने लगीं; आनन्द-कोलाहल से खेतरी का आकाश प्रतिध्वनित होने लगा।

अब कीर्तन आरम्भ हुआ। मूर्त्ति की ओर दृष्टि करके नरोत्तम हाथ में करताल लेकर खड़े हुए। बाजेवाले मृदङ्ग

लेकर उनके चारों ओर खड़े हुए। मधुर स्वर में ठाकुर महाशय ने कीर्तन आरम्भ किया। भाव में मुग्ध होकर वे नये पद गा-गाकर कीर्तन करने लगे। इससे पहले ऐसे अच्छे पद, ऐसे मधुर स्वर में, किसी ने न सुने थे। ठाकुर महाशय का कीर्तन सुनकर सभी मन्त्र-मुग्ध-से हो गये—कीर्तन के मधुर भाव में पाषाण-सदृश कठोर प्राण भी पसीज गये। ठाकुर महाशय के बनाये हुए नये कीर्तन का नाम "गड़ानहाटी कीर्तन" हुआ। क्योंकि उसकी रचना गड़ानहाटी परगने में ही हुई थी।

कीर्तन होने लगा। धीरे-धीरे भाव के उच्छ्वास में सब लोग बावले से हो गये। ठाकुर महाशय के मुँह से मानो एक अपूर्व ज्योति प्रकट होने लगी। कीर्तन करते-करते वे अचेत हो गये। कीर्तन करनेवालों के साथ राजा कृष्णानन्द भी ताल देकर कीर्तन करने लगे। उस समय पर बेटे का भाव देखकर वे उसे नर-लोक से कहीं श्रेष्ठ लोक का प्राणी समझने और बार-बार उसके मुँह की ओर ताकने लगे। फिर रोते-रोते उसके पैरों पर गिरकर कहने लगे—बेटा, तुमने मेरे कुल को पवित्र कर दिया।

कृष्णानन्द कीर्तन करते-करते बीच-बीच में घर में चले जाते और वहाँ से बहुमूल्य चीज़ें लाकर कीर्तन के स्थान में सबके आगे लुटाते थे। उनका विनीत निवेदन था कि जिसका जी चाहे, इन्हें उठा ले।

७

उस दिन सायङ्काल को मूर्त्ति की आरती के समय फिर सब लोग एकत्र हुए। सङ्कीर्तन आदि में कुछ समय बिताकर सब लोग अपने-अपने डेरे पर लौट गये। इस प्रकार सब महन्त लोग खेतरी में और भी दो दिन ठहरकर अपने-अपने स्थान को जाने लगे। उनकी विदाई के समय भी कृष्णानन्द ने सबको—बिना किसी भेद-भाव के—सोना-रूपा आदि वस्तुएँ दीं। पद्मा के तट पर उन्हें पार उतारने के लिए सैकड़ों नावें तैयार खड़ी थीं। विदा के समय कृष्णानन्द और युवराज सन्तोष दत्त ने सबका यथोचित आदर किया। ठाकुर महाशय के अनुरोध से आचार्य ठाकुर और रामचन्द्र कविराज खेतरी में ही रह गये।

इस महोत्सव की लहर में बहुत-से लोगों के प्राण शीतल हो गये। बहुतों के पत्थर जैसे कठोर हृदय सङ्कीर्तन की मधुर ध्वनि से विगलित हो गये।

सैकड़ों दुष्क्रियासक्त मनुष्यों ने आँसू बहाते-बहाते नरोत्तम के चरणों पर गिरकर उनसे आश्रय माँगा। ठाकुर महाशय ने बड़े दीन भाव से सबको भगवत्-नाम-कीर्त्तन, साधु-सङ्ग और वैष्णवों का आदर करने का उपदेश दिया।

इस महोत्सव के प्रभाव से सैकड़ों व्यक्ति नवजीवन के मार्ग पर अग्रसर होकर भक्ति-धर्म की जय-घोषणा करने लगे।

७

उस दिन सायङ्काल को मूर्त्ति की आरती के समय फिर सब लोग एकत्र हुए। सङ्कीर्तन आदि में कुछ समय बिताकर सब लोग अपने-अपने डेरे पर लौट गये। इस प्रकार सब महन्त लोग खेतरी में और भी दो दिन ठहरकर अपने-अपने स्थान को जाने लगे। उनकी विदाई के समय भी कृष्णानन्द ने सबको—बिना किसी भेद-भाव के—सोना-रूपा आदि वस्तुएँ दीं। पद्मा के तट पर उन्हें पार उतारने के लिए सैकड़ों नावें तैयार खड़ी थीं। विदा के समय कृष्णानन्द और युवराज सन्तोष दत्त ने सबका यथोचित आदर किया। ठाकुर महाशय के अनुरोध से आचार्य ठाकुर और रामचन्द्र कविराज खेतरी में ही रह गये।

इस महोत्सव की लहर में बहुत-से लोगों के प्राण शीतल हो गये। बहुतों के पत्थर जैसे कठोर हृदय सङ्कीर्तन की मधुर ध्वनि से विगलित हो गये।

सैकड़ों दुष्क्रियासक्त मनुष्यों ने आँसू बहाते-बहाते नरोत्तम के चरणों पर गिरकर उनसे आश्रय माँगा। ठाकुर महाशय ने बड़े दीन भाव से सबको भगवत्-नाम-कीर्त्तन, साधु-सङ्ग और वैष्णवों का आदर करने का उपदेश दिया।

इस महोत्सव के प्रभाव से सैकड़ों व्यक्ति नवजीवन के मार्ग पर अग्रसर होकर भक्ति-धर्म की जय-घोषणा करने लगे।

उत्सव का समाचार देश-देशान्तर में पहुँच गया। सब लोग नरोत्तम के गुणों का बखान करने लगे।

आचार्य ठाकुर, रामचन्द्र और ठाकुर महाशय तीनों जने एक साथ हरि-चर्चा और हरि-गुण-कीर्तन करने लगे। आचार्य ठाकुर के लिए पहले से ही एक अलग आश्रम बना दिया गया था। वे उसी में रहने लगे। एक महीने के पश्चात् आचार्य अपने स्थान जाजिग्राम को गये। केवल रामचन्द्र रह गये।

ठाकुर महाशय रामचन्द्र के साथ रहते-रहते धीरे-धीरे एक-प्राण और एक-आत्मा हो गये। वे सन्ध्या समय एक साथ आरती देखते और कभी ताली बजाकर एक साथ नृत्य करने लगते थे। दिन भर वे हरि की चर्चा, हरिगुण-कीर्तन और भागवत आदि ग्रन्थों का पाठ किया करते थे। ठाकुर महाशय तो जन्म से ही क्वांरे थे परन्तु रामचन्द्र विवाहित थे। फिर भी रामचन्द्र कविराज ठाकुर महाशय के साथ ही बने रहते थे।

कविराज महाशय जब घर को न लौटे तब उनकी पत्नी रत्नमाला ने ठाकुर महाशय को एक पत्र लिखा। पत्र का सार यही था कि मेरे पति आपके निकट रहें, इसमें कुछ हानि नहीं, किन्तु मेरी प्रार्थना इतनी ही है कि वे बीच-बीच में घर हो जाया करें। कोमल-हृदय नरोत्तम ने रत्नमाला का पत्र पढ़कर रामचन्द्र से घर जाने का अनुरोध किया। ठाकुर

महाशय की आज्ञा को कविराज टाल न सके, उन्हें घर जाना पड़ा। आधी रात को उन्हें स्मरण हुआ कि मैं तो सुख से शय्या पर लेटा हूँ और ठाकुर महाशय तृणशय्या पर पड़े होंगे—मन में इस विचार के आते ही वे शय्या से उठकर खेतरी को चले आये। यहाँ आकर मन्दिर की झाड़ू ले बुहारी देने और बीच-बीच में वही झाड़ू अपनी पीठ पर फटकारने लगे। सबेरे आकर ठाकुर महाशय ने देखा कि रामचन्द्र अपने हाथ से बुहारी लगाकर आँगन साफ़ कर रहे हैं और घर जाने के कारण अपने को धिक्कार देकर पीठ पर झाड़ू मार रहे हैं। तब ठाकुर महाशय उन्हें इस काम से रोककर भजन-कुटी में ले गये।

ठाकुर महाशय का प्रभाव धीरे-धीरे फैलने लगा। उस समय शाक्त धर्म अत्यन्त प्रबल था। किन्तु ठाकुर महाशय के प्रभाव से वैष्णव धर्म की सुशीतल छाया में आकर बहुत लोग आश्रय ग्रहण करने लगे। ब्राह्मण भी उनसे दीक्षा लेकर उनके शिष्य हो गये। ब्राह्मण बलराम मिश्र ने ठाकुर महाशय से मन्त्र-दीक्षा ली थी। उस समय शिवानन्द सेन नामक एक उच्च श्रेणी के ब्राह्मण गयसपुर गाँव में रहते थे। उनके दो पुत्र—हरिराम और रामकृष्ण—थे। दुर्गोत्सव के समय देवता को बलि देने के लिए हरिराम और रामकृष्ण भैंसे तथा बकरे ख़रीदने को पद्मा-पार खेतरी में आये। ज्योंही वे नाव से किनारे पर उतरे त्योंही स्नान करने के लिए रामचन्द्र और ठाकुर महाशय पद्मा के घाट पर पहुँचे। ये दोनों भक्त धर्म-विषयक बातचीत

कर रहे थे। इनकी बातचीत से ही शिवानन्द के लड़कों ने ताड़ लिया कि ये ठाकुर महाशय और रामचन्द्र कविराज हैं। अब वे दोनों भाई उस बातचीत का खण्डन करने पर उतारू हुए जो कि कविराज रामचन्द्र और नरोत्तम ठाकुर के बीच हो रही थी। महामहोपाध्याय रामचन्द्र ने उनकी युक्तियों का खण्डन कर दिया। तब उन दोनों भाइयों ने पराभव स्वीकार करके बकरे आदि खरीदने की इच्छा छोड़ दी। दोनों ही रामचन्द्र कविराज और ठाकुर महाशय के भजन-कुटीर में गये।

भक्तों के जीवन का प्रभाव बड़ा विचित्र होता है। शिवानन्द के बेटों ने देखा कि ये निरे पण्डित ही नहीं हैं—ये तो परमभागवत हैं। तब इनकी मधुर भक्ति से आकृष्ट होकर वे उस दिन वहीं रह गये। रात को लेटकर परस्पर दोनों भाई बातचीत करने लगे कि सिर्फ़ ब्राह्मण-वंश में जन्म लेने से ही मनुष्य श्रेष्ठ नहीं हो जाता; शूद्र भी यदि भगवान् का भक्त हो तो उसमें वास्तविक ब्राह्मण के गुण होते हैं। शूद्र वंश में नरोत्तम दास उत्पन्न हुए हैं इससे क्या हुआ? गुण और कर्म तो इनके यथार्थ ब्राह्मण के हैं। फिर इन दोनों में पाण्डित्य भी असाधारण है। इन सब बातों पर विचार करके दोनों भाइयों ने इनसे दीक्षा लेने का निश्चय किया। दूसरे दिन सूर्योदय होते हो इनके मन का अन्धकार दूर हो गया। हरिराम और रामकृष्ण ने ठाकुर महाशय और रामचन्द्र से दीक्षा देने की प्रार्थना की। ठाकुर महाशय और रामचन्द्र ने उन

दोनों भाइयों के जीवन का अपूर्व परिवर्तन देख दीक्षा देना स्वीकार कर लिया। हरिराम ने रामचन्द्र से और रामकृष्ण ने ठाकुर महाशय से दीक्षा ले ली। इन दीक्षा-गुरुओं ने उनके प्राणों में नई शक्ति का सञ्चार करके उन्हें नूतन धर्म-जीवन प्रदान किया। दीक्षा लेकर दोनों भाई ठाकुर महाशय और रामचन्द्र से भक्ति-शास्त्र का अध्ययन करने लगे।

उस समय ब्राह्मणों की प्रधानता अत्यन्त प्रबल थी। जातिभेद की प्रथा के बन्धन से लोगों का हृदय आबद्ध था। उस समय वर्णाश्रम-धर्म को छोड़कर शूद्र से मन्त्र-दीक्षा लेना मामूली काम न था। गयेसपुर-निवासी शिवानन्द सेन के पुत्रों ने जो कायस्थ और वैद्य (वणिक्) से दीक्षा ले ली, इस कारण चारों ओर हलचल मच गई। शिवानन्द सेन ने भी इस घटना के समाचार सुने। सुनते ही उन्होंने इस काम को असम्भव समझा। कुछ दिनों के बाद दोनों पुत्रों ने घर लौटकर पिता को प्रणाम किया। तब पिता ने क्रोध से अधीर हो "दूर रहो, दूर रहो" कहकर उनकी भर्त्सना की। पुत्रों ने बड़े विनीत भाव से पिता को समझाया कि भक्तिधर्म ही श्रेष्ठ है और भगवद्भक्त ही यथार्थ ब्राह्मणत्व के अधिकारी हैं; तब कहीं जाकर शिवानन्द सेन शान्त हुए। किन्तु पुत्रों की युक्ति का खण्डन कराने के लिए उन्होंने तत्कालीन मथुरा नगर के दिग्विजयी मुरारि पण्डित को बुलवाया। इस शास्त्रार्थ में मुरारि का भी पराभव हुआ, और इसमें वे यहाँ

तक लज्जित हुए कि तब से फिर देश को गये ही नहीं। दिग्विजयी मुरारि ने भी वैष्णव धर्म ग्रहण करके संन्यासी की तरह हरिनाम की घोषणा करने में जीवन बिता दिया।

चारों ओर ख़बर फैल गई कि हरिराम और रामकृष्ण ने कायस्थ के पुत्र ठाकुर महाशय से दीक्षा ली है। इस कारण ब्राह्मणों के क्रोध का ठिकाना न रहा। यद्यपि सभी श्रेणियों के मनुष्य ठाकुर महाशय को देवता की तरह मानते थे तो भी प्रचलित प्रथा पर नरोत्तम ठाकुर को हस्तक्षेप करते देख ब्राह्मणों ने क्रुद्ध होकर उनके प्रति कटु वाक्यों का प्रयोग करने में कसर नहीं की। किसी-किसी ने तो आकर उनके मुँह पर ही कहा—"तुम साधु हो तो बने रहो, अपना भजन-पूजन किया करो, किन्तु कायस्थ होने के कारण तुम्हें ब्राह्मण को मन्त्र देने का अधिकार नहीं है।" परमभक्त, विनय के अवतार-स्वरूप नरोत्तम ठाकुर ने सिर झुकाकर सब की कड़वी बातें सुन लीं। भक्ति की रस-माधुरी में जब मनुष्य के प्राण पूर्ण हो जाते हैं तब फिर वह समाज की रेखा के भीतर भला कब रह सकता है? ज्ञान और धन का गर्व तथा जाति-कुल-मान छोड़कर उस रस के आधार परमेश्वर की ओर ही वह दौड़ने लगता है।

८

भागीरथी के किनारे बालू के टीले के समीप गम्भीला गाँव में गङ्गानारायण चक्रवर्ती नामक एक कुलीन ब्राह्मण रहते

थे। ये बड़े भारी पण्डित थे। उस समय भागवत पर इनके समान किसी का अधिकार न था। किन्तु गङ्गानारायण को अपने पाण्डित्य का अभिमान था। जब उन्होंने सुना कि दो सुपण्डित भाइयों—हरिराम और रामकृष्ण—ने कायस्थ नरोत्तम से दीक्षा ली है तब वे इस काम को बुरा बतलाकर उनके प्रति अप्रीतिकर सम्मति प्रकट करने से न चूके।

एक दिन दैवयोग से हरिराम और रामकृष्ण के साथ गम्भीला गाँव में गङ्गानारायण की भेंट हो गई। ठाकुर महाशय द्वारा दोनों भाइयों के दीक्षित होने की चर्चा करके गङ्गानारायण ने कहा—"तुमने सुपण्डित और ब्राह्मण की सन्तान होकर कायस्थ से किस तरह दीक्षा ले ली—तुमने बड़ा बेजा काम किया।" हरिराम और रामकृष्ण ने बड़े विनीत भाव से कहा—महाशय, जो व्यक्ति सचमुच भगवद्भक्त है वही तो वास्तविक ब्राह्मण है।

इनका मधुर भाव देखने और इनकी बातें सुनने से गङ्गा-नारायण के भाव का परिवर्तन न-जाने किस तरह हो गया। वे दोनों भाइयों को अपने घर ले गये और उनके साथ शास्त्र की चर्चा तथा भक्तितत्त्व की बातचीत करने में सारी रात बिता दी। हरिराम और रामकृष्ण के साथ शास्त्र-चर्चा करने से उनके जीवन की गति परिवर्तित हो गई। वे शय्या पर लेटकर सोचने लगे कि हम व्यर्थ ही ज्ञान का अहङ्कार करते हैं, हमारा जीवन बड़ा ही शुष्क और नीरस है। इन हरि-

राम और रामकृष्ण का जीवन कैसा मधुमय है! जो वस्तु मनुष्य को इतना विनम्र कर देती है, हृदय को मधुमय और कोमल कर देती है वही भक्ति परम पदार्थ है। फिर जिस व्यक्ति के प्रभाव से इन्होंने भक्ति-मार्ग को ग्रहण किया है वे नरोत्तम ठाकुर कितने बड़े भक्त हैं!—ये बातें सोचते-सोचते पण्डितवर गङ्गानारायण की आँखों से आँसू बहने लगे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि हम भी ठाकुर महाशय के समीप जाकर उनके चरणों में गिरेंगे और दीक्षा के लिए प्रार्थना करेंगे। उनके मन में अपने प्रति ग्लानि उत्पन्न हुई।

रात बीती, सवेरा हुआ। गङ्गानारायण ने नरोत्तम ठाकुर महाशय के समीप, साथ-साथ चलने के लिए, हरिराम और रामकृष्ण से अनुरोध किया। वे गङ्गानारायण के साथ खेतरी को गये। गङ्गानारायण ने ठाकुर महाशय के चरणों में प्रणाम करके कहा—"मैं बड़ा अहङ्कारी था, मैं आज आपकी शरण में आया हूँ। दीक्षा देकर मेरा उद्धार कीजिए।" ऐसे विख्यात पण्डित का यह भाव देख ठाकुर महाशय को भी अचरज हुआ। उन्होंने उसी दम गङ्गानारायण को हृदय से लगा लिया और उनके हृदय में शक्ति का सञ्चार करके उन्हें कृष्ण-मन्त्र की दीक्षा दे दी। पण्डिताग्रगण्य गङ्गानारायण ने नवमन्त्र से दीक्षित होकर नवीन जीवन प्राप्त किया।

गङ्गानारायण भक्ति-धर्म को ग्रहण करके खूब ध्यान लगाकर भक्तिशास्त्र का अध्ययन करने लगे। बहुत ही थोड़े

समय में भक्तिशास्त्र पर भी उनका विशेष अधिकार हो गया। एक ओर उनमें जैसा गम्भीर पाण्डित्य था वैसी ही दूसरी ओर मधुमय भक्ति थी। इन दोनों का समावेश होने से उनका हृदय-क्षेत्र एक अपूर्व शोभा से शोभित हो गया; वे एक नवीन मनुष्य हो गये। गङ्गानारायण की दीक्षा से भी वैष्णव धर्म के विस्तार में बहुत कुछ सहायता प्राप्त हुई। पण्डित गङ्गा-नारायण को वैष्णवों ने "चक्रवर्ती ठाकुर" की उपाधि दी।

पण्डित-प्रवर कुलीन ब्राह्मण गङ्गानारायण के कायस्थ से दीक्षा लेने का समाचार चारों ओर, प्रबल धारा की तरह, फैल गया। ब्राह्मणमण्डली और भी अधिक कुपित हो गई। नरोत्तम ठाकुर के इस अधिकार को नष्ट करने के लिए बहुत-से ब्राह्मणों ने पक्क गाँव के राजा नरसिंह का आश्रय लिया। उन लोगों ने राजा से कहा—नरोत्तम यद्यपि कायस्थ हैं तथापि ब्राह्मणों के दीक्षा-गुरु बनकर ब्राह्मण्य धर्म का अपमान करते हैं। उनका यह प्रभाव यदि घटाया न जायगा तो देश चौपट हो जायगा। हिन्दू धर्म का प्रभाव क्षीण हो जायगा; आप राजा हैं, धर्म की रक्षा करना ही आपका प्रधान काम है; अतएव इसका प्रतिविधान करके देश में धर्म का प्रभाव बनाये रखने के लिए आप यत्न कीजिए—बस, यही हमारी प्रार्थना है।

ठाकुर महाशय की गुणावली सुनकर राजा नरसिंह उनकी अत्यन्त श्रद्धा करते थे। किन्तु करें क्या, ब्राह्मणों की

प्रार्थना पूर्ण करने के लिए वे कुछ अध्यापकों और उनके छात्रों को साथ ले खेतरी के समीप कुमारपुर गाँव में आकर ठहर गये। राजा नरसिंह के आगमन का समाचार खेतरी में चारों ओर फैल गया। ठाकुर महाशय को भी संवाद मिला कि राजा नरसिंह पण्डित-मण्डली को साथ ले शास्त्रार्थ करने आये हैं। इस समाचार को सुनकर ठाकुर महाशय कुछ डर गये, क्योंकि वे तो वृथा तर्क करने से बचते थे, और ऐसे तर्क में वृथा समय नष्ट होगा तथा साधन-भजन में विघ्न होगा। रामचन्द्र कविराज और गङ्गानारायण चक्रवर्ती ने ठाकुर महाशय के मन की बात को भाँपकर कहा—"इसके लिए आप तनिक भी चिन्ता न करें, इसका उपाय हम लोग कर लेंगे।" निश्चय किया गया कि रामचन्द्र तो तम्बोली और गङ्गानारायण कुम्हार बनकर बाज़ार में बैठें; क्योंकि बाज़ार में पान और हाँड़ी ख़रीदने को जब छात्रगण आवेंगे तब ये संस्कृत भाषा में बातचीत करेंगे। ऐसा होने से वे समझेंगे कि जहाँ हाट के दूकानदार भी ऐसी बढ़िया संस्कृत बोलते हैं वहाँ ठाकुर महाशय से शास्त्रार्थ करने जाना बुद्धिमानी नहीं है। यह सोचकर रामचन्द्र पान और गङ्गानारायण हाँड़ी बेचने बाज़ार में जा बैठे। कुमारपुर से जब अध्यापकों के छात्र बाज़ार में पान लेने आये तब रामचन्द्र ने संस्कृत भाषा में ही बातचीत की और ऐसा ही व्यवहार हाँड़ियों के दूकानदार गङ्गानारायण ने अपने ग्राहकों के साथ किया। हाँड़ी और पान

बेचनेवालों का संस्कृत भाषा में ऐसा ज्ञान देख छात्रगण विस्मित हो गये। उन्होंने दौड़ते-दौड़ते जाकर यह संवाद अपने अध्यापकों को सुनाया। पहले तो पण्डितों को इस बात पर विश्वास ही न हुआ किन्तु छात्रों के अनुरोध से राजा के बड़े-बड़े अध्यापक जब बाज़ार में पहुँचे तब पान और हाँड़ी के दूकानदारों से उनका शास्त्रार्थ छिड़ गया। पहले तो पण्डित लोग उनके गम्भीर ज्ञान का विषय समझने में समर्थ ही न हुए, किन्तु शास्त्रार्थ करते-करते पान और हाँड़ी के दूकानदारों के गम्भीर ज्ञान का परिचय पाकर उन्हें अपार आश्चर्य हुआ और शास्त्रार्थ में भी वे ही परास्त हुए।

९

राजा नरसिंह यह संवाद सुनकर अपने गणों के साथ खेतरी में पहुँचे। राजा कृष्णानन्द ने विशेष रूप से सबकी अभ्यर्थना की। राजा नरसिंह ने ठाकुर महाशय के चरणों में प्रणाम करके दीक्षा देने की प्रार्थना की। तब ठाकुर महाशय ने उन्हें गले लगाकर मन्त्र-दान कर दिया।

दीक्षा लेकर राजा नरसिंह खेतरी में ही रहने लगे, फिर लौटकर घर को नहीं गये। स्वामी के जीवन में यह अपूर्व परिवर्तन होने की ख़बर पाकर उनकी रानी रूपमाला राजभवन छोड़कर खेतरी में आ गईं। वे भी ठाकुर महाशय की कृपा से भगवत्प्रेम की अधिकारिणी हो गई थीं।

राजमहल के राजा राघवेन्द्र राय के पुत्र चाँद राय और सन्तोष राय ने भी ठाकुर महाशय से दीक्षा ली। चाँद राय के कड़े शासन से मुसलमान थर-थर काँपते रहते थे। उन्होंने बहुत लोगों को बन्दी कर लिया था। किन्तु अन्त में दुष्क्रियासक्त और मद्यपायी होकर उन्होंने अपने जीवन को कलङ्कित कर डाला। अब नरोत्तम की कृपा से उन्होंने सभी बुरे कामों को छोड़ दिया। वे सच्चे भक्त की तरह रहने लगे। उस समय कोई-कोई दुष्ट बुद्धिवाले राजा लूट-तराज़ के द्वारा अपने ख़ज़ाने को द्रव्य से भरा करते थे—बाहु-बल के द्वारा दूसरे के राज्य पर अधिकार जमाकर अपने राज्य की सीमा को विस्तृत करते थे। नरोत्तम ने ऐसे क्षमताशाली, ऐश्वर्यमत्त राजाओं को हरिनाम के महामन्त्र से मुग्ध करके—उनके जीवन की गति को सब प्रकार से परिवर्तित कर दिया था और उन्हें कृष्ण-प्रेम का प्रेमिक बना दिया था।

ब्राह्मणों का सामाजिक विरुद्ध आन्दोलन धीरे-धीरे शान्त हो गया। चिर-प्रचलित सामाजिक प्रथा पर सत्य और भक्ति की जय हुई। नरोत्तम ठाकुर में लोगों ने प्रत्यक्ष देख लिया कि भगवत्प्रेम के अधिकारी होने से मनुष्य कितना शक्तिधर हो सकता है। ठाकुर महाशय के प्रभाव से खेतरी में तीर्थ-स्थान की भाँति लोगों का समागम होने लगा। पाठ, कीर्तन आदि के द्वारा वहाँ सदा भगवच्चर्चा हुआ करती थी। खेतरी में नित्य ही उत्सव-सा होता रहता था। ठाकुर

महाशय के वृद्ध माता-पिता धीरे-धीरे मर्त्यधाम छोड़कर पर-लोक-वासी हो गये। पुत्र ने रीति के अनुसार उनका श्राद्ध आदि कर दिया।

उच्च श्रेणी के साधक यथार्थ धर्म-पिपासु होकर आत्मा के कल्याण के लिए सदा एकान्त पसन्द करते हैं। धीरे-धीरे खेतरी में जब भीड़-भाड़ अधिक होने लगी तब ठाकुर महाशय अपने गाँव से लगभग एक कोस की दूरी पर जाकर रहने लगे। वृक्ष और लता आदि से घिरे हुए एकान्त स्थान में दो कुटियाँ बनाई गईं। उस स्थान का नाम 'भजन-स्थान' रक्खा गया। एक में ठाकुर महाशय और दूसरी में रामचन्द्र रह-कर ध्यान, भजन और साधना में प्रवृत्त हुए। यद्यपि दोनों भक्तों के लिए अलग-अलग कुटियाँ थीं फिर भी दोनों भक्त प्रायः एक ही कुटी में रहकर नाम-कीर्तन आदि किया करते थे। इस भजन-स्थल में बैठकर ही नरोत्तम ठाकुर ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। जिस प्रकार वे बड़े भारी भक्त थे उसी प्रकार सुकवि भी थे। उनकी बनाई पदावली लोगों के प्राणों में अमृत-सा बरसा देती है। उनकी प्रार्थना-माला एक अपूर्व वस्तु है। असंख्य बङ्गाली भक्त उसका कीर्तन किया करते हैं।

ठाकुर महाशय इस प्रकार जीवन को बिता रहे थे कि उन्हें आचार्य ठाकुर की एक चिट्ठी मिली। चिट्ठी में लिखा था कि वृन्दावन जाने का हमारा विचार है। यदि रामचन्द्र

हमारे साथ चलें तो अच्छा हो। क्योंकि अकेले जाने की हममें हिम्मत नहीं है। चिट्ठी पढ़कर ठाकुर महाशय ने रामचन्द्र को दी। आचार्य ठाकुर उनके गुरु हैं; गुरु देव के पत्र को माथे से लगाकर उन्होंने पढ़ा। पढ़ते ही उनका मुख-मण्डल मानो मेघावृत हो गया। ठाकुर महाशय को छोड़कर जाना होगा, यह चिन्ता उनके हृदय में शेल की तरह छिदने लगी। ठाकुर महाशय ने अन्त में उन्हें समझाकर कहा—"आचार्य ठाकुर बूढ़े हो गये हैं, तुम उनके साथ जाओ।" अन्त में रामचन्द्र का वृन्दावन जाना ही तय हुआ। चलते समय गौराङ्गमन्दिर की अँगनाई में दोनों भक्त गले मिले। ठाकुर महाशय के चरणों की रज लेकर रामचन्द्र अपने गुरु देव श्रीनिवास आचार्य ठाकुर के साथ वृन्दावन को गये।

जो एक स्थान पर एक-मन और एक-प्राण होकर रहते थे उनको, परस्पर विच्छेद होने से, जो दारुण कष्ट हुआ उसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। रामचन्द्र को बिदा करके ठाकुर महाशय अपनी कुटी में चले गये। इस समय से उनका भाव बदल गया। वे प्रायः किसी के भी साथ बातचीत न करते थे। वे चुपचाप साधन-भजन और समय-समय पर ग्रन्थों की रचना किया करते थे। गङ्गा-नारायण प्रभृति कुछ लोग सदा उनकी सेवा के लिए कुटी के द्वार पर मौजूद रहते थे; किन्तु कोई बात कहने का साहस

इस डर से न करते थे कि कहीं उनके भजन में व्यतिक्रम न पड़ जाय।

ठाकुर महाशय यद्यपि परम विरागी थे फिर भी रामचन्द्र के वियोग से उनके प्राण दुर्वह हो गये। होना ही चाहिए; जिनके साथ उन्होंने भगवत्प्रसङ्ग में दिन और रातें बिताई थीं, उस सुख से वे आज वञ्चित हैं।

१०

वृन्दावन से रामचन्द्र के लौटने का समय आया। ठाकुर महाशय उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु रामचन्द्र अथवा आचार्य ठाकुर कोई भी नहीं आया; धीरे-धीरे समय बीतने लगा, तब रामचन्द्र के लौटने की आशा नरोत्तम ठाकुर को न रही। रामचन्द्र के वियोग से उनके प्राण अस्थिर हो गये। उस समय उन्होंने वियोग-विषयक बहुत-से पद्य बनाये थे। ठाकुर महाशय के मन की यही दशा थी कि वृन्दावन में रामचन्द्र कविराज के देहान्त हो जाने का समाचार उन्हें मिला। इस दारुण समाचार को सुनकर वे रोते-रोते अचेत होकर धूल में गिर पड़े।

उधर श्रीनिवास आचार्य ने भी श्रीवृन्दावन धाम में शरीर छोड़ दिया। ठाकुर महाशय ने उक्त दोनों महात्माओं के शोक में, अपनी पदावली में, कुछ पद लिखे हैं जिनसे उनके मन का भाव प्रकट होता है।

सभी प्रियजनों का विरह होने से ठाकुर महाशय का शरीर टूट गया। एक दिन उन्होंने गौराङ्ग-मन्दिर की अँगनाई में गौरचन्द्र से सबके लिए शुभ कामना की और फिर गङ्गानारायण के घर गम्भीला गाँव को जाने की इच्छा की। ठाकुर महाशय की इच्छा पूर्ण करने के लिए शिष्य उनको वहीं ले चले। उस दिन रास्ते में बुधरि गाँव में पदकर्त्ता रामचन्द्र कविराज के छोटे भाई गोविन्द कविराज के घर उन्होंने रात को विश्राम किया और नाम-कीर्तन आदि में रात बिताई। दूसरे दिन गम्भीला में गङ्गानारायण के घर पहुँचे। ठाकुर महाशय के दर्शन करने को बहुत-से लोग आने लगे। पहले जो ब्राह्मण लोग ठाकुर महाशय के विरोधी थे उनका वह भाव अब बदल गया। सभी ने उनके देव-दुर्लभ जीवन के आगे अपने को न्योछावर कर दिया।

दिन चढ़ने पर रामकृष्ण और गङ्गानारायण के साथ ठाकुर महाशय गङ्गा-स्नान करने गये। ठाकुर महाशय ने गङ्गाजल में देह को आधा डुबोकर दोनों शिष्यों से कहा कि ज़रा देह को तो रगड़ दो। रामकृष्ण और गङ्गानारायण तो गुरुदेव की देह को मलने लगे और ठाकुर महाशय ने हरिनाम लेकर आँखें मूँद लीं। उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। नरोत्तम सदा के लिए मर्त्यलोक को छोड़कर चले गये। कार्त्तिक में कृष्णपक्ष की पञ्चमी को यह शोकावह घटना हुई। गङ्गानारायण रो-रोकर शोक से व्याकुल हो गये। थोड़े ही

समय में यह ख़बर चारों ओर फैल गई। हज़ारों नर-नारियों की आँखों से आँसू बहने लगे। सभी ठाकुर महाशय के लिए हाहाकार करने लगे।

गङ्गानारायण ने गम्भीला में महोत्सव किया, फिर खेतरी में भी उत्सव किया गया। नरोत्तम के श्राद्ध (तेरही) में सैकड़ों लोग एकत्रित हुए। ठाकुर महाशय के प्रसिद्ध गायक-शिष्यों ने गुरुदेव-रचित मधुर पदों का कीर्तन करके सबको बावला कर दिया। सभी कहने लगे—ऐसा उत्सव हमने कभी नहीं देखा।

प्रति वर्ष कार्त्तिक में कृष्णपक्ष की पञ्चमी को खेतरी में मेला लगता है। इस मेले में खूब भीड़-भाड़ होती है। इस महामेले में नरोत्तम ठाकुर की गुणावली का कीर्तन विशेष रूप से होता है।

गोपाल भट्ट और प्रकाशानन्द सरस्वती

१

दक्षिण प्रदेश में श्रीरङ्गक्षेत्र कावेरी नदी के किनारे वर्तमान है। कहा जाता है कि रामानुजाचार्य ने यहाँ श्रीरङ्गनाथजी की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की थी। श्रीरङ्गक्षेत्र के समीप बलंगण्डी नामक गाँव में एक नैष्ठिक ब्राह्मण रहते थे। इनका नाम था श्री वेङ्कट भट्ट। वेङ्कट भट्ट श्रीसम्प्रदाय के वैष्णव थे। ये लक्ष्मीनारायण के उपासक थे।

श्रीचैतन्य देव ने दक्षिण देश की यात्रा करते समय श्रीरङ्गजी में पहुँचकर कावेरी नदी में स्नान किया और श्रीरङ्गजी के समीप नृत्य कीर्तन आदि करना आरम्भ किया। उस समय वहाँ वेङ्कट भट्ट उपस्थित थे। श्री चैतन्य की भक्ति का प्रभाव देख भट्टजी मोहित हो गये। वे इस सुन्दर युवा पुरुष को साथ ले अपने घर गये और अपने परिवार-सहित उनकी परिचर्या करने लगे। श्रीचैतन्य यहाँ पर चार महीने तक ठहरकर हरिनाम-कीर्तन आदि करते रहे।

भट्ट महोदय तीन भाई थे; त्रिमल्ल, वेङ्कट और प्रबोधानन्द। वेङ्कट भट्ट के पुत्र गोपाल भट्ट थे। श्रीचैतन्य जिस समय

वेङ्कट भट्ट के घर गये थे उस समय गोपाल की अवस्था बारह वर्ष की थी। श्रीचैतन्य का मधुमय जीवन देख गोपाल उनकी ओर बहुत ही आकृष्ट हुए। वे सदा उन्हीं के पास रहने लगे। बेटे का यह भाव देखकर वेङ्कट ने उसे श्रीचैतन्य की सेवा में नियुक्त कर दिया। गोपाल भी बड़ी प्रसन्नता से नवीन संन्यासी की परिचर्या करके अपने को कृतार्थ समझने लगे।

श्रीचैतन्य चार महीने तक वेङ्कट भट्ट के घर ठहरकर और गोपाल की सेवा-द्वारा उनके धर्म-जीवन का परिचय पाकर परम प्रसन्न हुए। गोपाल को तत्त्वज्ञान होने के लिए श्रीचैतन्य मुक्तितत्त्व का उपदेश देने लगे। जिस मधुर नाम में श्रीचैतन्य मग्न रहते थे उसी महामन्त्र हरिनाम की गोपाल को भी उन्होंने दीक्षा दी। इस प्रकार उन्होंने गोपाल के प्राणों में नवीन जीवन का सञ्चार कर दिया।

उन्होंने एक दिन वेङ्कट को बुलाकर कहा—"तुम गोपाल को अच्छी शिक्षा दिलाकर सब शास्त्रों का सुपण्डित कर देना। इसका विवाह मत करना।" श्रीगौराङ्ग समझ गये थे कि गोपाल असाधारण बालक है, इसके द्वारा भविष्यत् में वैष्णव समाज का बहुत कुछ भला होगा।

वेङ्कट के घर चार महीने निवास करके वहाँ से विदा होते समय श्रीचैतन्य ने गोपाल से कहा—"जब तुम्हारे माता-पिता का देहान्त हो जाय तब तुम वृन्दावन जाकर रूप और सनातन से भक्तितत्त्व की शिक्षा प्राप्त करना और साधन-

भजन करने में ही ज़िन्दगी बिताना।" उन्होंने गोपाल के पिता से भी कहा—तुम गोपाल को वृन्दावन जाने की आज्ञा दे देना।

श्रीचैतन्य जब वहाँ से बिदा हुए तब भट्ट-परिवार के सब लोगों ने आँसू बहाते हुए बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उन्हें प्रणाम किया। कई दिन तक सभी को गौर के वियोग का दुःख बना रहा।

गोपाल भट्ट बचपन से ही सुयोग्य शिक्षक से शिक्षा प्राप्त करके साहित्य, व्याकरण आदि शास्त्रों में अच्छे व्युत्पन्न हो गये। उनके पाण्डित्य की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी। गोपाल भट्ट ने बुद्धि और तर्कशक्ति के द्वारा बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त करके भक्तिमार्ग का अवलम्बन करा दिया। श्रीरङ्गक्षेत्र में रहते समय उन्होंने बहुत लोगों को हरिप्रेम का साधक बना दिया था। वे सदैव अविवाहित रहकर पिता-माता की सेवा, शास्त्राध्ययन और नाम-कीर्तन आदि करने लगे।

धीरे-धीरे, समय आने पर, उनके माता-पिता का शरीरान्त हुआ। गोपाल ने क्रम से उनका श्राद्ध आदि किया। अब श्रीचैतन्य की आज्ञा के पालन करने का उन्हें अवसर मिला। वे वृन्दावन को रवाना हुए। वहाँ पहुँचने पर रूप, सनातन और जीव गोस्वामी ने इन्हें बड़ी आव-भगत से लिया। सनातन गोस्वामी ने गोपाल के वृन्दावन आने की सूचना महाप्रभु

को दी। इस संवाद से अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने गोपाल के लिए अपने बैठने का आसन और डोर भेजी। गोपाल उसी आसन पर बैठकर और डोर को माथे से लपेटकर अपने इष्टदेव का भजन-पूजन किया करते थे।

उन्होंने वृन्दावन में रहकर सनातन गोस्वामी की आज्ञा से हरि-भक्ति-विलास नामक ग्रन्थ का सङ्कलन किया और कृष्णकर्णामृत ग्रन्थ पर टीका लिखी। इन पुस्तकों के कारण उनका विशेष पाण्डित्य प्रकट हुआ। यह तो पहले लिखा ही जा चुका है कि ये श्रीनिवास आचार्य के दीक्षा-गुरु थे। श्रीनिवास आचार्य जब तक वृन्दावन में थे तब तक अनुगत शिष्य की भाँति भट्ट गोस्वामी की परिचर्या करते रहे।

२

वेङ्कट भट्ट के छोटे भाई प्रकाशानन्द सरस्वती काशीधाम में रहते थे। ये संन्यासी थे। उस समय भारतवर्ष में ये वेदान्त शास्त्र के अद्वितीय पण्डित माने जाते थे। काशीधाम के संन्यासी इन्हें अपना मुखिया मानकर इन्हीं के आज्ञानुसार चलते थे। प्रकाशानन्दजी शङ्कराचार्य के पथावलम्बी और अद्वैत मत के प्रचारक थे। भक्तिधर्म पर उनकी तनिक भी आस्था न थी। भक्तों के क्रन्दन और नृत्य को वे उपहास की दृष्टि से देखते थे। इसी कारण श्रीचैतन्य के कार्यों की चर्चा सुनकर वे कहते थे—बड़ा भारी पाषण्डी है, शायद

कुछ जन्तर-मन्तर जानता है इसी से लोगों को बात की बात में वश में कर लेता है।

श्रीचैतन्य जब काशीधाम में पहुँचे तब प्रकाशानन्द ने कहा—"चैतन्य के भक्ति-धर्म की बिक्री यहाँ न होगी।" यह बात सुनकर प्रभु ने हँसकर कहा—"यदि भक्ति-धर्म की बिक्री न होगी तो योंही दान कर दूँगा।" गौर काशीधाम में जाकर अधिकतर एकान्त में अपना साधन-भजन ही किया करते थे। प्रकाशानन्द ने चैतन्य के पास मनुष्य भेजकर शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की। तब उन्होंने प्रकाशानन्द के निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। इसकी ख़बर भी उनको दे दी। यथासमय श्रीचैतन्य सभा में पहुँचे। सभा-गृह में संन्यासियों का ख़ासा जमाव था। प्रभु के उपस्थित होने पर प्रकाशानन्द ने उनसे अपने समीप बैठने का अनुरोध किया। श्रीकृष्ण चैतन्य की सौम्य मुखश्री देखकर प्रकाशानन्द विमुग्ध हो गये। अन्त में उनके साथ वेदान्त विषय में शास्त्रार्थ होने लगा। शास्त्रार्थ में श्रीचैतन्य विजयी हुए। भारत के प्रसिद्ध वेदान्ती प्रकाशानन्द और उनके शिष्य लोग श्रीचैतन्य की युक्ति में उनकी बुद्धि की तीक्ष्णता और पाण्डित्य का परिचय पाकर दङ्ग हो गये। प्रकाशानन्द ने देखा कि श्रीचैतन्य असाधारण पुरुष हैं—साक्षात् भगवान् के विशेष स्वरूप हैं। भारत के अद्वितीय नैयायिक वासुदेव सार्वभौमाचार्य ने जब श्रीचैतन्य से शास्त्रार्थ में हार मानकर उनका

शिष्यत्व अङ्गीकार कर लिया और उन्हें नर-लोक से अतीत मानकर उनकी वन्दना की है तब प्रकाशानन्द को भी श्री-चैतन्य के ईश्वरत्व में दृढ़ विश्वास हो गया।

प्रकाशानन्दजी श्रीप्रभु के शरणागत हो गये; उनके शिष्यों ने प्रकाशानन्द-सहित श्रीचैतन्य के बतलाये हुए मार्ग को ग्रहण कर लिया। काशी धाम में मरुस्थल-सदृश भक्तिविहीन प्रकाशानन्द के घर भक्ति की धारा बहने लगी।

श्रीचैतन्य ने प्रकाशानन्द का नाम बदलकर प्रबोधानन्द रख दिया और उनसे कहा कि जाकर वृन्दावन-वास करो। अब प्रकाशानन्द काशी छोड़कर वृन्दावन में रहने लगे। हरिनाम से मस्त होकर नाचने को और प्रेमाश्रु बहाने को जो पागलपन समझते थे वे ही अब तालियाँ बजा-बजाकर आँसू बहाने और भगवत्-सङ्कीर्तन करने लगे। प्रकाशानन्द ने चैतन्यचन्द्रामृत नामक एक ग्रन्थ बनाया है। उसमें उन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के स्तुति-सूचक पद्य लिखकर प्रभुवर की महिमा का कीर्तन किया है। उत्तर-काल में सज्ञान भक्ति का अपूर्व मिलन होने से उनका जीवन धन्य हो गया और वे भक्तिलभ्य भगवत्प्रेम के वास्तविक अधिकारी हो गये।

द्वितीय भाग

भक्त-चरितावली

द्वितीय भाग

शङ्कराचार्य

१

दक्षिण के केरल नगर में शिवगुरु नामक एक सुपण्डित और धर्म-परायण सज्जन रहते थे। वे बाल्यावस्था से ही गुरु के घर रहकर बड़ी भक्ति से उनकी सेवा और वेदाध्ययन किया करते थे। पाठशाला की पढ़ाई समाप्त हो जाने पर शिवगुरु के पिता विद्याधिराज ने गुरु के घर जाकर उन्हें यथाशक्ति गुरुदक्षिणा दी। फिर वे उनकी अनुमति से बेटे को घर लिवा लाये। उसका विवाह करके गृहस्थ बनाने की उनको इच्छा थी। इसके सिवा शिवगुरु के पठन-पाठन की प्रशंसा सुनकर बहुतेरे पण्डित द्रव्य के साथ उनको अपनी कन्या देने का प्रस्ताव करने लगे। अन्त में सद्वंशी अमोघ पण्डित की बेटी के साथ शिवगुरु का विवाह होना निश्चित हो गया। शुभ लग्न में विवाह हो भी गया। नवीन दूलह-दुलहिन

बड़े सुख से घर-गृहस्थी में रहने लगे। किन्तु बहुत दिन बीत जाने पर भी कोई बाल-बच्चा न होते देख उनके मन में विषाद की छाया पड़ी। उनको दृढ़ विश्वास था कि देवता की आराधना करने से सभी कामनाएँ सिद्ध हो सकती हैं। इसलिए शिवगुरु अपनी स्त्री-सहित गाँव के समीपवर्ती वृष पर्वत पर जाकर पुत्र की कामना से देवाधिदेव महादेव की आराधना करने लगे। अन्त में उनकी कामना सफल हुई। शिव-गुरु की पत्नी गर्भवती हो गई। ६४८ शकाब्द में वैशाख शुक्ला ३ को उनके पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम शङ्कर रक्खा गया।

बचपन से ही शङ्कर की असाधारण बुद्धि का परिचय मिलने लगा। जो लोग विद्या पढ़ने का महत्त्व समझते हैं वे अपने बालकों को रीति के अनुसार पढ़ाया करते हैं। शिव-गुरु चाहते थे कि हम अपने लड़के को पाँच वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ करा दें और फिर जनेऊ होने पर वेदारम्भ करावें। किन्तु उनकी यह आशा पूर्ण न हुई। बेटे की अवस्था जब तीन वर्ष की थी तभी शिवगुरु का देहान्त हो गया। शङ्कर की माता ने पाँच वर्ष की अवस्था में बेटे का यज्ञोपवीत करके उसे गुरु के यहाँ विद्या पढ़ने को भेज दिया। यह असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न बालक खूब ध्यान देकर विद्या पढ़ने लगा। सोलह वर्ष की अवस्था के भीतर ही शङ्कर ने सब शास्त्रों में ऐसी अभिज्ञता प्राप्त कर ली कि उस समय वे दक्षिण देश में सबसे श्रेष्ठ पण्डित माने जाने लगे।

पाठशाला की पढ़ाई समाप्त होने पर वे गुरु से आशीर्वाद लेकर घर लौट आये। महापण्डित शङ्कर अपनी माता के बड़े भक्त थे। घर आकर वे शास्त्र पढ़ने और माता की सेवा करने लगे। उनकी मातृभक्ति के सम्बन्ध में एक क़िस्सा प्रसिद्ध है—

शङ्कर की माता प्रतिदिन एक नदी में स्नान करने जाती थीं। एक दिन जब वे स्नान करके घर लौटने को हुईं तब मारे थकावट के रास्ते में ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। घर लौटने में माता को अत्यन्त विलम्ब होते देख शङ्कर उद्विग्न होकर उनको खोजने के लिए घर से चले। कुछ आगे बढ़ने पर क्या देखा कि माता रास्ते में एक तरफ़ अचेत पड़ी हैं। शङ्कर ने घबराकर झटपट उनकी मूर्च्छा दूर की। बेटे का मुँह देखने से माता के प्राणों में नया बल आ गया। उसी समय शङ्कर ने सोचा—माता तो प्रतिदिन इतनी दूर नदी में स्नान करने को आयँगी और दुर्बल होने के कारण शायद उनकी यह दशा अक्सर हुआ करेगी। तो क्या ऐसा उपाय नहीं किया जा सकता जिससे माता बिना ही थकावट के इस नदी में स्नान कर सकें और नित्यनैमित्तिक देव-पूजन करती रहें?

वेद, वेदान्त, न्याय और दर्शन आदि के विलक्षण पण्डित होने पर भी शङ्कर की मति सूखे तर्क में न थी। ईश्वर पर विश्वास और भक्ति रहने के कारण उनका चित्त सदा सरस रहता था। वे जैसे सुपण्डित थे वैसे ही भगवद्भक्त भी थे। शङ्कर को दृढ़ विश्वास था कि यदि भगवान् से मन लगाकर

प्रार्थना की जाय तो वे भक्त की कामना पूर्ण कर देते हैं। इसलिए उन्होंने उसी समय अपने आराध्यदेव से प्रार्थना की "हे भगवन्, तुम कृपा करके ऐसा कर दो जिसमें यह नदी हमारे घर के समीप होकर बहने लगे। ऐसा होने पर फिर हमारी माता को कष्ट करके इतनी दूर नहाने को न जाना पड़ेगा।" कहा जाता है कि शङ्कर की यह प्रार्थना पूर्ण हुई थी। तभी से नदी की धारा हटकर शङ्कर के घर के समीप आ गई है।

२

माता की सेवा और शास्त्रों की चर्चा में लगे रहने पर भी शङ्कर के मन में वैराग्य की धुन लगी रहती थी। उनको बड़ी इच्छा थी कि हम संन्यासी के वेश में धर्म-प्रचार करने के लिए भारत के अनेक स्थानों में घूमते-घामते रहें। किन्तु माता की आज्ञा लिये बिना वे घर-गृहस्थी को क्योंकर छोड़ सकेंगे, और उनकी आज्ञा को ही वे किस प्रकार प्राप्त करके अपने उद्देश्य को सफल करेंगे—यही चिन्ता उनके मन में रात-दिन रहने लगी। दैवयोग से एक दिन ऐसी घटना हो गई जिससे अभीष्ट विषय की अनुकूल दिशा में उनका जीवन-स्रोत परिवर्तित हो गया। एक दिन वे अपने घर के समीप नदी में स्नान कर रहे थे कि एक घड़ियाल ने उनके पैरों को निगल लिया; इस दशा में शङ्कर ने ज़ोर से चिल्लाकर माता को

बुलाया और कहा—"माँ, मुझे घड़ियाल ने पकड़ लिया है।" चिल्लाहट सुनते ही माता ने उसी दम घाट पर आकर देखा कि लड़का गले तक पानी में डूबा हुआ है। हृदय के रत्न एकलौते बेटे का यह सङ्कट देख माता कुछ भी न सोच सकीं कि क्या उपाय करें; इससे वे हाय-हाय करके रोने लगीं। शङ्कर ने माता से कहा—"मुझे संन्यासी होने की अनुमति दो, नहीं तो मेरे प्राण किसी तरह नहीं बच सकते।" बेटे की यह बात सुनकर वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गईं और रोते-रोते अनुमति देकर शोक के मारे मूर्च्छित हो गिर पड़ीं। कहा जाता है कि फिर घड़ियाल भी शङ्कर को छोड़कर चला गया।

घाट पर बहुत-सी भीड़ एकत्र हो गई थी। शङ्कर जब जल से निकलकर घाट पर आये तब देखा गया कि उनके पैरों को घड़ियाल कुछ नुक़सान नहीं पहुँचा सका। शङ्कर ने देखा कि घाट पर माता अचेत पड़ी हैं। तब वे उनको चेत कराकर अपने घर ले गये और तरह-तरह से उन्हें समझा-बुझा कर घर-द्वार छोड़ संन्यासी हो गये।

कुछ दूर जाकर शङ्कर ने घर के कपड़े बदलकर गेरुवे वस्त्र पहन लिये और दण्ड-कमण्डलु धारण कर लिया। अब वे कितने ही नद-नदियों और जङ्गल-पहाड़ों को पार कर नर्मदा-किनारे पहुँचे। वहाँ पर गोविन्द योगी से दीक्षा लेने का उनका विचार था। अन्त में नर्मदा-किनारे घने जङ्गल में होकर वे एक गुफा में पहुँचे। वहाँ श्रीमान् गोविन्द योगी

ब्रह्मध्यान में निमग्न बैठे थे। शङ्कर को देखकर और उनसे थोड़ी-सी बातचीत करके वे समझ गये कि यह असाधारण बालक है। शङ्कर ने उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें अपना गुरु बना लिया। अब गोविन्दपाद उन्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देने लगे। शङ्कर ने इस प्रकार वहाँ कुछ समय तक ठहरकर गोविन्दपाद के अमृतमय उपदेश से आत्मा को विशेष उन्नत समझा—ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मध्यान का विशेष मर्म प्राप्त करने में भी वे समर्थ हो गये। एक दिन गोविन्दपाद ने शङ्कर को बुलाकर प्रेम-पूर्वक कहा—शङ्कर, तुम काशी को जाओ; वहाँ पर व्यास के ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखो। इस काम के लिए तुम्हीं उपयुक्त हो।

गोविन्दपाद से विदा होकर शङ्कर अब काशीधाम को रवाना हुए। जिस महान् व्रत का पालन करने के लिए वे उत्पन्न हुए थे उसी महाव्रत का पालन करने—ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखने—को वे तैयार हुए। यहाँ पद्मपाद प्रभृति कुछ भक्तों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण करके उनके मार्ग का अनुसरण किया। जो लोग आचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने आते वे सभी उनसे परास्त होते थे। धीरे-धीरे चारों ओर शङ्कर का नाम हो गया।

कहा जाता है कि एक दिन व्यासदेव रूप बदलकर शङ्कर के पास पहुँचे और उनके साथ शास्त्रार्थ में भिड़ गये; अन्त में अपना परिचय देकर उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि

उन्हें रत्ती भर भी ज्ञान न था। इस विषय पर भारती के साथ शास्त्रार्थ वे किस प्रकार कर सकते ? थोड़ी देर तक विचार करके उन्होंने भारती से एक महीने की मुहलत माँगी और शिष्यों के समीप जाकर उन्हें सब हाल सुनाया। अब शङ्कर ने निश्चय किया कि हम अपना शरीर छोड़कर किसी मृत व्यक्ति की देह में प्रवेश करेंगे। वह व्यक्ति जब दुबारा जीवित होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करेगा तब हम उसी शरीर में रहकर कामशास्त्र की अभिज्ञता प्राप्त करेंगे। उसी समय अमरक नाम का एक राजा परलोकवासी हुआ था। शङ्कर ने यह सुयोग देख शिष्यों से तो कहा कि किसी एकान्त स्थान में हमारी देह की रक्षा करते रहना और आप राजा के प्राण-हीन कलेवर में घुस गये। राजा जीवित हो उठा। इससे राजा की रानियों के आनन्द का ठिकाना न रहा; किन्तु स्वामी का आचरण देखने से उन्हें सन्देह हो गया। वे सोचने लगीं कि राजा की देह में किसी योगी की आत्मा प्रविष्ट हो गई है। तब राजकर्मचारियों ने निश्चय किया कि राजा की देह में जिस योगी की आत्मा घुस पड़ी है उसकी रक्षा करना नितान्त आवश्यक है; इसकी रक्षा करने से राज्य का बहुत कुछ भला होगा। इसलिए उन्होंने किया क्या कि राज्य भर की लाशें ढूँढ़-ढूँढ़कर जला देने के लिए विशेष रूप से कुछ लोगों को नियुक्त कर दिया। ढूँढ़नेवालों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते शङ्कर की निर्जीव देह भी मिल गई। कहा जाता है

कि शङ्कर की देह ज्योंही चितानल में रक्खी गई त्योंही वे योग-बल से फिर जीवित हो उठे। यह देखकर दाह करनेवाले मनुष्य बहुत ही डरे।

शङ्कर इस प्रकार पुनर्जीवित होकर मण्डन मिश्र के घर उपस्थित हुए। मिश्र ने और उनकी पत्नी ने बड़े आदर से उनकी अभ्यर्थना की। आचार्य अब फिर मिश्र-पत्नी से शास्त्रार्थ करने को उद्यत हुए, किन्तु बुद्धिमती भारती ने बिना ही शास्त्रार्थ किये इनसे पराजित होना स्वीकार कर लिया। मिश्र-पत्नी ने ताड़ लिया था कि शङ्कर ने पूर्व प्रस्तावित विषय में इस वार अवश्य ही पारदर्शिता प्राप्त कर ली है।

यहाँ एक और घटना का उल्लेख किया जाता है। उग्र भैरव नामक एक कापालिक ने आचार्य के साथ एकान्त में भेट करके कहा—"अपने जीवन को देवता के प्रीत्यर्थ त्याग देने में विशेष फल है। तुम यदि अपनी देह का बलिदान करना स्वीकार करो तो तुम्हें बहुत पुण्य होगा। तुम्हारी अनुमति होते ही मैं बलिदान की व्यवस्था करूँगा।" साधु-हृदय परोपकारी भगवद्भक्त महात्मा शङ्कराचार्य सरल भाव से अपने जीवन को उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो गये। उग्र-भैरव उन्हें अपने आश्रम में ले गया। बलिदान होने से कुछ पहले आचार्य ने कापालिक से कहा—"जब मैं समाधिस्थ हो जाऊँ तब तुम अपना काम करना।" आचार्य के शिष्यों को इस घटना की कुछ भी ख़बर न थी। इस समय आचार्य

को आश्रम में न देख एकाएक उनके प्रिय शिष्य पद्मपाद के मन में, स्वप्न की भाँति, दुष्ट कापालिक के खड्ग के नीचे आचार्य के बलिदान का चित्र अङ्कित हो गया। इससे, डर के कारण, उनका शरीर काँपने लगा। वे नृसिंह देव का स्मरण करके दौड़ते-दौड़ते कापालिक के आश्रम में पहुँचे और जिस चित्र को उन्होंने कल्पना से देखा था उसे वहाँ प्रत्यक्ष देखा। उग्र-भैरव ने आचार्य का सिर काटने के लिए ज्योंही तलवार उठाई त्योंही नृसिंहजी ने अपना स्वरूप धारण करके कापालिक के मस्तक को काट गिराया। रुधिर की धारा चारों ओर बहने लगी। पद्मपाद के पीछे-पीछे आचार्य के आश्रम में स्थित सभी शिष्य दौड़ पड़े थे। अब वे सभी बड़े आनन्द से गुरुदेव के साथ अपने आश्रम में लौट आये।

आचार्य अनेक देशों में भ्रमण करके शृङ्गेरी में पहुँचे। यहाँ पर वे कुछ समय तक रहे। यहाँ उनके शिष्य अनेक ग्रन्थों की रचना करने में प्रवृत्त हुए। यहाँ रहते समय शङ्कर को अपनी माता का विशेष रूप से स्मरण हुआ। इस-लिए वे माता के दर्शनार्थ स्वदेश को गये। घर जाकर देखा कि जननी मृत्यु-शय्या पर पड़ी हैं। माता का देहान्त होने पर आचार्य ने विधिपूर्वक उन की अन्त्येष्टि क्रिया की। इस समय उनके आत्मीय स्वजनों ने उनके साथ अच्छा सलूक नहीं किया। *

---

* अनुवादक से एक मद्रासी सज्जन ने कहा था कि शङ्कराचार्य ने इस बदसलूकी के कारण ही अपने जातिभाइयों को शाप दिया

रामानुज

१

दक्षिण भारत के वर्तमान मद्रास नगर के अन्तर्गत भूतपुरी नामक एक स्थान है। वहाँ केशव याज्ञिक नाम के एक सदाशय विष्णु-भक्त ब्राह्मण रहते थे। भूतपुरी की प्राकृतिक सुन्दरता रमणीय है। उसका वर्तमान नाम श्रीपेरम्बधुर है। केशव याज्ञिक का विवाह श्रीशैलपूर्ण नामक एक बूढ़े संन्यासी की बहन कान्तिमती के साथ हुआ था। विवाह हुए बहुत समय बीत गया, परन्तु केशव के कोई सन्तान न हुई। इसलिए केशव, यह सोचकर कि बिना यज्ञानुष्ठान किये पुत्र का मुँह देखने को न मिलेगा, एक चन्द्रग्रहण के उपलक्ष्य में अपनी स्त्री के साथ कैरविनी सागर-सङ्गम में पहुँचे। उस पुण्यतीर्थ में दोनों ने स्नान किया। सागर-सङ्गम के स्थान पर श्रीपार्थ-सारथि का मन्दिर है। इसी रमणीय स्थान में केशव याज्ञिक पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान करने में प्रवृत्त हुए। कहा जाता है कि रात को केशव जब सो गये तब पार्थेश्वर ने उनके आगे आत्म-रूप प्रकट करके कहा—हमीं तुम्हारे पुत्ररूप में धराधाम में जन्म ग्रहण करेंगे।

किये गये। मामा श्रीशैलपूर्ण ने बालक का नाम लक्ष्मण रक्खा; किन्तु पीछे से ये रामानुज नाम से सुप्रतिष्ठित और सर्वजन-परिचित हुए थे, इस कारण हम इसी नाम का उपयोग करेंगे।

रामानुज को ज्योंही आठवाँ वर्ष लगा त्योंही उनका जनेऊ कर दिया गया। अब केशव याज्ञिक स्वयं ही अपने लड़के को विद्या पढ़ाने लगे। अध्ययन के समय इस बालक की तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभा का परिचय पाकर सभी मोहित होते थे।

केशव याज्ञिक ने सोलह वर्ष की अवस्था में रामानुज का विवाह रक्षम्बा नाम की एक ब्राह्मण-कन्या के साथ कर दिया। किन्तु पुत्र का विवाह करने के अनन्तर नवदम्पती के गार्हस्थ्य जीवन को देखने के लिए वे जीवित न रहे। थोड़े ही समय में उन्होंने शरीर छोड़ दिया।

ज्ञान-रूप अग्निशिखा एक बार मनुष्य के हृदय में प्रज्वलित हो जाय तो फिर सहज ही बुझ नहीं जाती, प्रत्युत उत्तरोत्तर बढ़कर हृदय को चिर-आलोक से प्रदीप्त रखती है। पितृ-वियोग होने के अनन्तर ज्ञान-प्राप्त करने की आकांक्षा को सफल करने के लिए रामानुज व्याकुल हो गये। पूर्व बङ्गाल में नवद्वीप जिस प्रकार संस्कृत के पठन-पाठन के लिए विख्यात समझा जाता था उसी प्रकार दक्षिण में उस समय काञ्ची नगरी ज्ञान-विस्तार की प्रधान भूमि समझी जाती थी। रामानुज

दैववाणी सुनने से केशव को धैर्य हुआ। अब वे अपने देश को लौट आये। कुछ दिनों के अनन्तर कान्तिमती में गर्भ के लक्षण प्रकट हुए। गर्भ धारण करने से उसका रूप-लावण्य मानो बाहर प्रकट होने लगा। लोगों ने अनुमान किया कि सचमुच कोई देवता-सदृश असाधारण पुरुष इसके गर्भ से उत्पन्न होनेवाला है। देखते-देखते दस महीने पूरे हो गये। वसन्त ऋतु आ गई। वृक्ष और लताएँ नये पल्लवों से विभूषित होगईं। वृक्षों की शाखाओं पर बैठ-बैठकर कितने ही पक्षी उमङ्ग के साथ मधुर बोलियाँ बोलने लगे। इसी मधुर समय में, ९३८ शकाब्द के चैत महीने में, केशव की पत्नी के एक सुन्दर सुलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। दैव-वाणी सत्य हुई।

कहा जाता है कि तुरन्त के उपजे हुए बच्चे की देह से एक अपूर्व ज्योति विकीर्ण होने के कारण सूतिका-गृह आलोकित हो गया था। ज्योतिषियों ने इस बालक की जन्मकुण्डली बनाकर कहा कि यह तो महापुरुष होगा। बहुत दिनों के बाद पुत्र उत्पन्न होने से माता-पिता के आनन्द की सीमा न रही। केशव याज्ञिक ने आनन्द के साथ ब्राह्मणों और दीन-दुखियों को दान दिया। श्रीरङ्गम में श्रीशैलपूर्ण को ज्यों ही यह शुभ समाचार मिला त्योंही वे बड़ी शीघ्रता से भूतपुरी में आये। भानजे को देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। समया-यानुसार जातकर्म और नामकरण आदि संस्कार यथा-विधि

वहाँ पहुँचे। यादवप्रकाश नामक एक वेदान्ती पण्डित उन दिनों काञ्ची नगरी में पण्डित-मण्डली के मुखिया होकर बहु-तेरे छात्रों को वेदान्त पढ़ाते थे। रामानुज भी उन्हीं के यहाँ पढ़ने लगे। शिष्य का रूप-लावण्य, प्रखर बुद्धि और विनय देखकर यादवप्रकाश विमुग्ध हो गये। रामानुज भी रीति के अनुसार आचार्य के प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रकट करके गुरु-सेवा और अध्ययन में निरत रहने लगे।

२

एक बार एक दैव-घटना से रामानुज को अपने शिक्षा-गुरु के स्नेह से वञ्चित होना पड़ा। दैवक्रम से काञ्चीनगरी की राजकुमारी को ब्रह्मराक्षस लग गया। इससे वह पागल की भाँति असम्बद्ध बातें अक्सर कहा करती थी; निर्लज्ज होकर कभी हँसती और कभी नृत्य करती थी। बेटी की यह दशा देखकर राजा और रानी बहुत ही दुःखित हुए। प्रतिकार के लिए उन्होंने अनेक उपाय किये किन्तु कन्या किसी प्रकार बाधा से मुक्त नहीं हुई। यादवप्रकाश मन्त्रवेत्ता समझे जाते थे। इसलिए राजा ने उन्हें बुलवाया। राजकुमारी के समीप ज्योंही यादवप्रकाश पहुँचे त्योंही ब्रह्मराक्षस ने क्रुद्ध होकर कहा—"अरे यादवप्रकाश, तुम मन्त्र के द्वारा मुझे राज-कुमारी की देह से हटाने आये हो किन्तु तुम्हारे लिए यह काम असाध्य है; तुम पूर्व जन्म में गोसाँप (गोधा = गोह) होकर इस

सरोवर के किनारे रहा करते थे। एक विष्णुभक्त ब्राह्मण ने भोजन के उपरान्त थाली में बचा हुआ अन्न सरोवर के किनारे फेंक दिया था, उसी को खाकर तुमने अपना पेट भर लिया। भक्त ब्राह्मण का प्रसाद मिल जाने से पवित्र होकर तुम इस जन्म में ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए हो। अब मेरा भी पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुन लो। मैंने किसी क्रिया-कर्म में, मूर्खता से, मन्त्र का उच्चारण अशुद्ध किया था, इसी लिए मैं ब्रह्मराक्षस हुआ हूँ। अब तुम्हारा शिष्य रामानुज यदि मेरे मस्तक पर अपना पैर रख दे तो मैं राजकुमारी को छोड़कर चला जाऊँ।" यह बात सुनते ही राजा ने रामानुज को अपने महल में बुलवाया। ब्रह्मराक्षस ने जैसा चाहा था वही रामानुज ने किया। उन्होंने राजकुमारी के सिर से अपने पैर का स्पर्श करा दिया। ब्रह्मराक्षस उसी दम राजकुमारी को छोड़ कर चला गया। रामानुज का यह असाधारण ब्रह्मतेज देखकर राजा को बड़ा विस्मय हुआ। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा। बहुत-से रत्न भी उसने रामानुज को प्रदान किये। उनमें से रामानुज ने स्वयं एक भी चीज़ नहीं ली, सबकी सब यादवप्रकाश को सौंप दी और इस प्रकार निःस्वार्थ गुरुभक्ति की पराकाष्ठा दिखला दी।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् यादवप्रकाश ने पढ़ाते समय "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" और "नेह नानास्ति किञ्चन" इन श्रुति-वचनों का अर्थ इस प्रकार किया;—"यह विश्व ही

ब्रह्म है; उनको छोड़कर और कुछ नहीं है। हम जो कुछ देखते हैं सब माया है।" रामानुज ने देखा कि गुरु ने जो यह अर्थ किया है सो यह मूल वाक्यों का यथार्थ अर्थ नहीं है। ऐसा अर्थ करने से जीवात्मा और परमात्मा के बीच कोई प्रभेद नहीं रहता—उपास्य और उपासक का लोप हो जाता है। उन्होंने कहा—"गुरुदेव, श्रुति का यह तात्पर्य नहीं है; दोनों वाक्यों का अर्थ तो यह है कि 'सारा जगत् उसी परमात्मा के द्वारा आच्छादित हो रहा है, वही इस विश्व का प्राण-रूप होकर सब पदार्थों में विराजमान है; कोई पदार्थ उससे विच्छिन्न होकर नहीं रह सकता।' सारे पदार्थ ईश्वर नहीं हैं।" रामानुज का यह अर्थ सुन यादवप्रकाश क्रोध से प्रज्वलित हो उठे और सबके सामने उन्होंने रामानुज का बेहद तिरस्कार किया। रामानुज ने देखा कि अपने मत को छिपाये बिना अद्वैतवादी यादवप्रकाश से शिक्षा प्राप्त करना सम्भव नहीं, इसलिए उन्होंने घर जाकर माता को सब समाचार सुना दिया और अपने घर में रहकर ही वे वेदान्त का परिशीलन करने लगे।

जिस दिन रामानुज ने ब्रह्मराक्षस के हाथ से राजकुमारी को छुटकारा दिलाया उसी दिन से यादवप्रकाश मन ही मन उनसे डाह करने लगे; और श्रुति के दोनों वाक्यों का द्वैत-मूलक युक्ति-सङ्गत अर्थ सुनकर तो उनका ईर्ष्यानल और भी प्रज्वलित हो उठा। उन्होंने देखा कि असाधारण प्रतिभा के

बल से रामानुज धीरे-धीरे अद्वैत मत का खण्डन करके द्वैत-मत की प्रतिष्ठा करेंगे। अब क्या उपाय किया जाय जिससे उनका अस्तित्व ही न रहे—यही चिन्ता यादवप्रकाश को दिन-रात रहने लगी। इसी बीच एक दिन शिष्यों के एकत्र होने पर उन्होंने रामानुज का उल्लेख करके कहा—"देखो छात्रो, रामानुज हमारे अर्थ को अनर्थ बताकर उसका प्रतिवाद करता है। यह अपमान हमारे लिए अत्यन्त असह्य है।" शिष्यों ने कहा—"देव, किसी प्रकार से हो, उसके प्रभाव को नष्ट करके हम आपके ही मत को अक्षुण्ण रखने की चेष्टा करेंगे।" शिष्यों की बात सुनकर यादव ने अत्यन्त आनन्द प्रकट किया और कहा—"देखो, मैंने निश्चय किया है कि आगामी माघ महीने में, प्रयाग में, गङ्गा-यमुना के सङ्गम में स्नान करने को उसे साथ लेकर यहाँ से चलेंगे और स्नान करते समय उसे पकड़कर हिकमत से गहरे जल में गिरा देंगे। इससे उसका परित्राण होगा और मुझे भी ऐसे शत्रु से छुटकारा मिलेगा।" यादवप्रकाश की यह बात सुनकर शिष्यों ने आनन्द प्रकट किया और इस संकल्प को सिद्ध करने के लिए उन्होंने उनसे शीघ्र प्रस्तुत होने के लिए कहा।

एक दिन यादवप्रकाश ने रामानुज को बुलाकर प्रयाग तीर्थ को जाने की चर्चा की। सरल-हृदय रामानुज ने गुरु का स्नेह देख उनके साथ जाना चाहा। वही मसल हुई, "जो रोगी को भावै सोई बैद बतावै।" यादव अब अपने शिष्यों

के साथ प्रयागराज को चले। कितने ही वनों और उपवनों को लाँघकर वे अभीष्ट स्थान की ओर बढ़ने लगे। जब वे विन्ध्याचल के समीप पहुँचे तब रामानुज के मौसेरे भाई गोविन्द को इस कुचक्र का कुछ-कुछ पता लग गया। इस-लिए सुयोग देखकर उन्होंने रामानुज से कहा—"तुम्हारे प्राण लेने के लिए गुरुजी तुम्हें साथ लिये जा रहे हैं, तुम इसी दम भाग जाओ।" यह भयानक डर की बात सुनकर रामानुज विन्ध्याचल के घने वन में जा छिपे। गुरु को आगे किये शिष्य लोग पीछे-पीछे आ रहे थे। किसी को ख़बर ही न थी कि उनके साथ के यात्री गोविन्द ने भाँड़ा फोड़ दिया है और रामानुज भागकर जङ्गल में जा छिपे हैं। कुछ देर में रामानुज की खोज हुई। शिष्यों ने उतावली के साथ उन्हें बहुत ढूँढ़ा। पता न लगने पर वे कहने लगे—"किसी हिंस्र जन्तु के पल्ले पड़ जाने से अवश्य ही वह मारा गया।" यादवप्रकाश मन ही मन सन्तुष्ट हुए किन्तु भीतर के आनन्द को छिपाकर प्रकट रूप से उन्होंने गोविन्द के आगे इस दुर्घटना के निमित्त खेद प्रकट किया।

"जाको राखै साइयाँ मारि सकै नहिं कोय"—भला जिसके रक्षक स्वयं श्रीभगवान् हों उसे कौन मार सकता है ? जिस प्रकार गहन वन में श्रीहरि के गुणों का कीर्तन करने से सारी आपदाओं से ध्रुव का उद्धार हो गया था, उसी प्रकार युवक रामानुज भी श्रीभगवान् का स्मरण करके विपत्तियों से

भरे हुए विन्ध्याचल के भीतर होकर काञ्ची नगरी की ओर दौड़ने लगे। किन्तु उस घोर जङ्गल में उन्हें रास्ता बतलाकर गन्तव्य स्थान पर कौन पहुँचावे ? इसी समय दैवयोग से एक व्याध (बहेलिया)-दम्पति ने वहाँ आकर रामानुज से पूछा—"इस भयानक जङ्गल में तुम क्यों आये और तुम्हें कहाँ जाना है ?" रामानुज ने कहा—"दैवयोग से हम यहाँ आ गये हैं, काञ्चीपुरी को जाना है, किन्तु ठीक रास्ता नहीं मिलता।" व्याध-दम्पति ने कहा—अच्छा, हमारे साथ आओ, हम तुम्हें काञ्चीपुरी का मार्ग दिखला देंगे।

रामानुज उन दोनों के साथ-साथ जाने लगे।

अब दिन डूबा। घने जङ्गल में दिन डूब जाने से चारों ओर घोर अँधेरा फैल गया। उसी वन में पेड़ के नीचे लेटकर उन्हें रात बितानी पड़ेगी। अधिक रात बीतने पर व्याध-पत्नी ने स्वामी से कहा—"मुझे बड़ी प्यास लगी है, थोड़ा सा पानी ला सकते हो ?" व्याध ने कहा—"इतनी रात को रास्ता न मिलेगा।" यह सुनकर रामानुज ने कहा—"मैं पानी लिये आता हूँ।" व्याध-दम्पति ने कहा—"रात को तुम्हें मार्ग न मिलेगा, सबेरे ला देना।" रात बीतते समय व्याध ने रामानुज को पानी ला देने की बात का स्मरण कराया। रामानुज शाल-वन के भीतर घुसे और वहाँ कुएँ से जल लाकर देखा तो व्याध-दम्पति का पता न लगा। उन्होंने चारों ओर खोज की किन्तु किसी मनुष्य का चिह्न उन्हें देख

न पड़ा। इससे रामानुज को बड़ा अचरज हुआ। वे उसी दशा में खड़े-खड़े सोचने लगे कि ये कौन थे, कहाँ से यहाँ आ गये और अब कहाँ चले गये।

अचम्भे में आकर वे व्याध के बतलाये हुए मार्ग से काञ्ची की ओर रवाना हुए। घोर वन को पार करने पर थोड़े ही दिनों में उन्हें एक सुन्दर बस्ती देख पड़ी। अब वे शीघ्र ही काञ्ची में पहुँच गये। जन्मभूमि के दर्शन पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। घर पहुँचकर उन्होंने अपने प्राण-विनाश के षडयन्त्र और वहाँ से भाग निकलने का सब हाल माता को सुनाया। विपत्ति से पुत्र के निकल आने के कारण माता आनन्दाश्रु ढरकाकर अपने इष्टदेव वरदाराज को धन्यवाद देने लगी।

३

इस काञ्चीपुरी में काञ्चि-पूर्ण नाम के एक भक्त-वैष्णव रहते थे। ये शूद्र थे। इनके भक्ति-पूर्ण जीवन का वृत्तान्त सुनकर रामानुज इन्हें बहुत चाहते और गुरु की भाँति इन पर श्रद्धा रखते थे। एक दिन, कुछ देर तक, उनके साथ रहने के लिए रामानुज ने उनका निमन्त्रण किया। भोजन का समय बीतने लगा, तब भी काञ्चिपूर्ण के आने के लक्षण न देख रामानुज उनको ढूँढ़ने गये। इसी बीच काञ्चि-पूर्ण भोजन करने को आ गये। उन्होंने आते ही रामानुज की

श्रीरङ्गम में यामुनाचार्य के अनेक शिष्य थे। उनमें एक पूर्णाचार्य भी थे। ये खासे पण्डित और भगवद्भक्त थे। यामुनाचार्य वृद्ध हो गये थे। धीरे-धीरे उनका शरीर शिथिल हो गया। पीड़ा होने के कारण वे दुखी भी रहने लगे। उनका दृढ़ विश्वास था कि हमारे न रहने पर रामानुजाचार्य को छोड़ वैष्णव-मत का परिचालक होने योग्य और कोई व्यक्ति नहीं है। रामानुज को श्रीरङ्गम में बुलाने के लिए एक स्तोत्र बनाकर उन्होंने महापूर्ण को दिया और कहा—"महापूर्ण, इस श्लोक को लेकर तुम काञ्ची में रामानुज के पास जाओ और एक बार उन्हें यहाँ बुला लाओ।" महापूर्ण उसी दम बड़ी प्रसन्नता से गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करके रामानुज को बुलाने काञ्ची की ओर चले। काञ्ची में महापूर्ण के पहुँचने पर काञ्चिपूर्ण ने उनका परिचय रामानुज से करा दिया। परिचय होते ही महापूर्ण ने यामुनाचार्य-प्रणीत वही स्तोत्र सुनाया। स्तोत्र की रचना और लालित्य देखकर रामानुजाचार्य ने गद्गद होकर पूछा—"यह अपूर्व श्लोक किसका बनाया हुआ है?" महापूर्ण ने उत्तर दिया—"श्रीयामुनाचार्य महाराज का।" इन वैष्णव नेता का नाम रामानुज पहले ही सुन चुके थे और मन ही मन इन्हें अपना गुरु बनाने का प्रयत्न भी करना चाहते थे। अब उन्हीं का बनाया स्तोत्र सुनने से उक्त लालसा और भी बढ़ गई।

स्तोत्र सुनाकर महापूर्ण ने कहा—यामुनाचार्यजी बीमार हैं, आपको देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक होकर उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है कि आपको श्रीरङ्गम में ले चलूँ।" महापूर्ण की यह बात सुनते ही उक्त भक्तात्मा को देखने के लिए रामानुज उसी दम महापूर्ण के साथ श्रीरङ्गम को रवाना हुए।

कई दिन में जब वे कावेरी के तट पर पहुँचे तब देखा कि बहुत-से लोग यामुनाचार्य की मृत देह को, दाह करने के लिए, नदी-किनारे ले आये हैं। इस दृश्य को देखकर रामानुज और महापूर्ण शोक में अभिभूत हो गये। दोनों की आँखों से आँसू बहने लगे। रामानुज ने देखा कि मृत महात्मा की तीन अँगुलियों की मूठो बँधी हुई है। इसका कारण उन्होंने महात्मा के शिष्यों से पूछा। उत्तर मिला—"जीवित अवस्था में तो इनकी अँगुलियाँ स्वाभाविक रूप में ही थीं।" मूँठी बँधी रहने का कुछ विशेष कारण अवश्य है, यह सोचकर रामानुज सबके आगे तीन वाक्यों में इस प्रकार सत्य-बद्ध हुए;—

(१) मैं वैष्णव-धर्म ग्रहण करके अज्ञानी लोगों को पञ्च संस्कार से संस्कृत करूँगा और उन्हें नारायण के शरणागत करने की चेष्टा करूँगा।

(२) लोगों के भले के लिए मैं ब्रह्मसूत्रों का भाष्य बनाऊँगा।

(३) वैष्णव-मत का प्रचार करने के लिए महामुनि पराशर जिन पुराणों की रचना कर गये हैं उसका एक कोष, सर्वसाधारण के हितार्थ, मैं प्रस्तुत करूँगा।

ज्योंही रामानुज ने ये तीन प्रतिज्ञाएँ कीं त्योंही यामुनाचार्य की तीन अँगुलियों की बँधी हुई मूठी खुल गई।

अब रामानुज काञ्ची को लौट आये। यहाँ आकर उन्होंने भक्त काञ्चिपूर्ण को यामुनाचार्य के परलोक-वास का हाल सुनाया। गुरु के शोक से अत्यन्त कातर होकर काञ्चिपूर्ण दुःख प्रकट करने लगे। रामानुज काञ्चिपूर्ण की हृदय से भक्ति करते थे, इसलिए उन्होंने उन्हीं से दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। काञ्चिपूर्ण शूद्र थे; और रामानुज थे उच्चवंशी ब्राह्मण। इसलिए काञ्चिपूर्ण ने उन्हें दीक्षा देना अस्वीकार करके कहा—"रामानुज, सामाजिक प्रथा के अनुसार मैं शूद्र हूँ, इसलिए तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता। अब मुझसे इस विषय का अनुरोध मत करना।" विवश होकर रामानुज को यह संकल्प छोड़ना पड़ा।

गुरु-मुख होने की रामानुज की इच्छा देख भक्त काञ्चिपूर्ण वरदाराज से उनके लिए प्रार्थना करने लगे। कहा जाता है कि भक्त काञ्चिपूर्ण की एकान्त निष्ठा देखकर वरदाराज उनसे प्रत्यक्ष बातचीत किया करते थे। काञ्चिपूर्ण जब वरदाराज से रामानुज की मनःकामना पूर्ण करने के लिए तन-मन से प्रार्थना करने लगे तब वरदाराज ने कहा—

"रामानुज मेरा बड़ा भक्त है, वह श्रीरङ्गम में जाकर महापूर्ण से दीक्षा ले ले।" रामानुज को काञ्चिपूर्ण ने वरदाराज की बात सुनाई, इससे रामानुज आनन्द-विह्वल हो गये। वरदाराज को प्रणाम करके वे कृतज्ञता प्रकट करने को काञ्चिपूर्ण के चरणों में लोटने लगे। फिर वे घर न जाकर सीधे श्रीरङ्गम को, महापूर्ण से दीक्षा लेने के लिए, चल खड़े हुए। रामानुज की पत्नी के पास उनके दीक्षा लेने के लिए श्रीरङ्गम को जाने का सन्देसा काञ्चिपूर्ण ने भेज दिया।

यामुनाचार्य का परलोक-वास होने के अनन्तर श्रीरङ्गम में उनके शिष्य लोग वैष्णव-धर्म-परिचालन के लिए एक नेता के अभाव का अनुभव विशेष रूप से करने लगे। रामानुज की असाधारण बुद्धि और भगवन्निष्ठा का हाल सबको विदित था। महात्मा यामुन ने भी जीवन की अन्तिम दशा में उन्हें नेतृत्व-पद पर अधिष्ठित करने के लिए विचार किया था। सभी ने रामानुज को श्रीरङ्गम में बुलाने का अनुरोध किया। महापूर्ण जानते थे कि रामानुज के द्वारा ही यथार्थ भक्ति-धर्म चारों ओर विस्तृत होगा; वैष्णव-धर्म के मधुमय भाव से नर-नारियों के प्राण शीतल होंगे। वे सबकी शुभ इच्छा को हृदय में धारण करके बड़ी प्रसन्नता से अपनी स्त्री-सहित काञ्ची-पुरी को गये।

इधर रामानुज बड़ी व्याकुलता से श्रीरङ्गम की ओर इसलिए जा रहे थे कि महापूर्ण से दीक्षा लें। रास्ते में देखा

कि समीप ही एक सरोवर के किनारे महापूर्ण जैसा कोई बैठा है। जिनके लिए वे दौड़े जा रहे थे शायद यही उनके भावी दीक्षा-गुरु हैं! सन्देह मिटाने के लिए वे फ़ुर्ती से सरोवर के किनारे पहुँचे। वहाँ देखा, सचमुच भगवद्भक्त महापूर्ण विराजमान हैं। रामानुज के वहाँ पहुँचते ही दोनों के हृदय में आनन्द की धारा प्रवाहित होने लगी। पूर्णाचार्य को रामानुज ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उन्होंने भी प्रेम से रामानुज को आलिङ्गन कर अकपट प्रेम की पराकाष्ठा दिखलाई। रामानुज के हृदय में जो वासना प्रधूमित हो रही थी उसे वे महापूर्ण के आगे छिपा न सके। उन्होंने कहा—"प्रभो, मैं आपसे दीक्षा ग्रहण करने के लिए श्रीरङ्गम को जा रहा था, शायद आप भी मेरे ही लिए घर से निकले हैं! वरदराज की आज्ञा है कि मैं आपसे विष्णुमन्त्र की दीक्षा लूँ; अतएव अब आप मुझे दीक्षा देकर मेरे हृदय में नवजीवन का सञ्चार कीजिए।" महापूर्ण ने इसके लिए उनसे कुछ दिन ठहरने के लिए कहा; किन्तु रामानुज विलम्ब न करने के लिए गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगे। उनकी व्याकुलता देख महापूर्ण ने व्यर्थ विलम्ब करना ठीक न समझा। वे उन्हें दीक्षा देने को तैयार हो गये। महापूर्ण उन्हें कमल-सरोवर में नहला लाये। फिर पञ्चसंस्कार से संस्कृत करके उन्होंने स्वमत की दीक्षा दे दी। दीक्षा हो चुकने पर तरुण सूर्य की ज्योति की भाँति रामानुज का हृदय-धाम आलोकित हो गया।

४

यह शुभ कार्य हो चुकने पर पूर्णाचार्य और उनकी पत्नी के साथ रामानुज काञ्चीपुरी में अपने घर आये। महापूर्ण अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे। रामानुज उनसे अनेक शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। मन के अनुरूप गुरु न मिलने से जीवन अन्धकारमय जँचता है। रामानुज, पूर्णाचार्य और काञ्चिपूर्ण ये तीनों मिलकर अधिकांश समय सुख-पूर्वक हरि-गुण-गान और नाम-सङ्कीर्तन में बिताते थे। महापूर्ण रामानुज के ही घर रहने लगे।

एक दिन रामानुज देह में तेल की मालिश कर रहे थे। इसी समय उन्होंने क्या देखा कि एक दुबला-पतला व्यक्ति उनके घर के पास होकर निकला। पूछने से मालूम हुआ कि वह वैष्णव है। उसे देखने से रामानुज के प्राणों में करुणा का सञ्चार हुआ। उन्होंने अपनी पत्नी को बुलाकर कहा—"इसे भोजन करने को दो, यह भूखा है।" पत्नी ने उत्तर दिया—"अब तो चौका उठ गया।" अभ्यागत व्यक्ति को लाचार होकर चला जाना पड़ा। किन्तु स्त्री की बात पर रामानुज को विश्वास न हुआ। उन्होंने स्वयं रसोईघर में जाकर देखा कि बहुत-सा दाल-भात और तरकारी मौजूद है। पत्नी के इस मिथ्या व्यवहार से वे बहुत चिढ़ गये और उसे उथले चित्तवाली कहकर उसका तिरस्कार करने लगे।

एक दिन रामानुज घर से कहीं अन्यत्र गये। इसी बीच रामानुज और महापूर्ण दोनों की स्त्रियाँ कुएँ से जल भरने को गईं। दोनों जल भर रही थीं कि महापूर्ण की स्त्री के भरे हुए घड़े से जल छलका और दो-चार बूँदें रामानुज की गृहिणी के भरे हुए घड़े में गिर पड़ीं। यह देख रक्षम्बा अत्यन्त क्रुद्ध होकर पूर्णाचार्य की पत्नी से न-जाने कैसी-कैसी बातें कहकर बोली—"हम उच्च वंश के ब्राह्मण हैं, तुम्हारे घड़े के पानी की बूँदें हमारे घड़े में गिरने से उसकी पवित्रता जाती रही।" महापूर्ण की पत्नी ने घर आकर अपने स्वामी को सब हाल सुनाया। रामानुज की स्त्री के इस बर्ताव का हाल सुनकर महापूर्ण उसी दम वह घर छोड़कर स्त्री-सहित श्रीरङ्ग धाम को चल दिये। रामानुज ने घर आकर जब गुरुदेव और गुरु-पत्नी को न देखा तब रक्षम्बा से इसका कारण पूछा। उसने सब समाचार कह सुनाया। घर से उनके चले जाने का वृत्तान्त सुनकर रामानुज बहुत ही खिन्न हुए। उन्होंने पत्नी के व्यवहार के प्रति अत्यन्त असन्तोष प्रकट करके कहा—"हमारी गुरु-पत्नी के साथ तुमने ऐसा कठोर व्यवहार करके उनके मन को क्लेश पहुँचाया है। उनके घड़े की कुछ बूँदों से क्या तुम जातिभ्रष्ट हो जातीं? छिः! तुम्हें धिक्कार है! तुम मेरी धर्म-पत्नी होकर गुरु और अतिथि की पूजा से विमुख हो गईं।" पत्नी के इस व्यवहार से उनका चित्त घर-गृहस्थी से विचलित होने लगा। जहाँ पर अतिथि का

सत्कार नहीं होता और गुरु की पूजा नहीं की जाती वह वास्तव में घर नहीं कहा जा सकता।

हम क्षुद्र बुद्धिवाले मनुष्य अनेक अवसरों पर यह नहीं समझ सकते कि मानव-जीवन के किस सूत्र को अवलम्बन करके परमेश्वर अपना कार्य सिद्ध कर लेता है। एक दिन एक और घटना हो गई। रामानुजाचार्य वरदाराज के मन्दिर में बैठे थे कि एक भूखे ब्राह्मण ने उनसे कुछ खाने को माँगा। रामानुज ने कहा—"तुम हमारे घर जाकर हमारी पत्नी से कहना कि तुम्हारे स्वामी ने हमें तुम्हारे पास भोजन करने के लिए भेजा है। तुम हमको भोजन कराओ।" रामानुज की बात सुनकर भूखा ब्राह्मण उनके घर गया और रक्षम्बा को उसके स्वामी की आज्ञा सुनाकर भोजन माँगने लगा। यह सुनकर रक्षम्बा बड़े क्रोध से बोली—"अभी यहाँ से निकलो, हमारे यहाँ रसोई उठ गई। यदि सीधी तरह से न जाओगे तो धक्के देकर निकाल दूँगी।" ये बातें कहकर वह उसे मारने को भी उद्यत हो गई। अतिथि ने रामानुज के पास जाकर उनकी पत्नी की करतूत का वर्णन किया। तब उन्होंने ब्राह्मण को कुछ भोजन कराकर कहा—"अब तुम एक काम करो; ऐसा करने से मेरी पत्नी तुम्हें खाने को देगी; मैं तुमको एक चिट्ठी देता हूँ। यह चिट्ठी लेकर तुम मेरे घर जाना और रक्षम्बा से कहना कि तुम उसी के मायके से चिट्ठी लेकर आये हो। यह

चिट्ठी पढ़कर तुम उसे सुना देना। बस, फिर वह तुम्हें खाने को देगी।" अब रामानुज ने अपनी पत्नी को, उसके पिता की ओर से, इस आशय का एक पत्र लिखा— "तुम्हारे भाई का शुभ विवाह बहुत जल्द होनेवाला है, तुम इस मनुष्य के साथ चली आओ।" चिट्ठी लेकर उस मनुष्य ने रामानुज के आज्ञानुसार काम कर दिया। भाई के विवाह का समाचार सुनकर रक्षम्बा ने बड़े आनन्द से चिट्ठी लाने-वाले को भरपेट भोजन कराया। कुछ देर में जब रामानुज घर आये तब रक्षम्बा ने प्रसन्न होकर भाई के विवाह का समाचार सुनाया और चिट्ठी पढ़ने को दी। रामानुज ने चिट्ठी को इस प्रकार पढ़ा मानो उन्हें कुछ भी मालूम न हो, फिर प्रसन्नता प्रकट कर झटपट उसे वस्त्र और आभूषण ला दिये तथा उसके मायके को जाने की व्यवस्था कर दी। रक्षम्बा बड़े आनन्द से मायके को गई। स्त्री को विदा करके उन्होंने संन्यास-धर्म ग्रहण कर लिया।

संन्यासी होकर रामानुज जब वरदाराज के मन्दिर में पूजा करने गये तब बहुत-से मनुष्य वाद्यध्वनि और आनन्द-कोलाहल करते हुए उनके साथ-साथ गये। बहुतेरे उनके शिष्य हो गये। नवीन संन्यासी को हृदय से लगाकर कांचिपूर्ण आनन्द प्रकट करने लगे और उन्हें मठ में ले गये। अब उनका नाम यतिराज हो गया। यतिराज के भानजे दाशरथि और भूतपुर-निवासी अनन्त भट्ट के पुत्र कुरेश भी यतिराज के

शिष्य हो गये। ये दोनों व्यक्ति सभी शास्त्रों के पारदर्शी विद्वान् थे।

एक दिन वरदाराज के मन्दिर में यादवप्रकाश की बूढ़ी माता गई। यतिराज की दिव्य लावण्ययुक्त मूर्त्ति देखकर उन्होंने एक दर्शक से पूछा—"ये कौन हैं?" उसने कहा—"रामानुज।" तब यादवप्रकाश की माता ने कहा—"ये तो साक्षात् नारायण-से देख पड़ते हैं।" उन्होंने घर लौटकर यादवप्रकाश से कहा—"तुम रामानुज के लिए अपने मन में कुछ मलाल न रक्खो, तुम उसके शिष्य हो जाओगे तो तुम्हारी सद्गति होगी।" यादवप्रकाश अद्वैतवादी शैव थे, फिर रामानुज को इन्होंने पढ़ाया भी था। इन्हीं कारणों से वे माता के प्रस्ताव को न मान सके। किन्तु धीरे-धीरे उनका मत बदल गया। एक दिन वे रामानुज के आश्रम में गये और उनके चरणों में गिरकर, रोते-रोते, उनसे भक्ति-रत्न की प्रार्थना करने लगे। अपने शिक्षागुरु और अपूर्व वेदान्ती का यह अभावनीय परिवर्तन देख यतिराज को बड़ा विस्मय हुआ। वे भी मस्तक झुकाकर यादवप्रकाश के चरणों पर प्रणत हुए। फिर उन्हें यथाविधि पञ्चसंस्कारों से संस्कृत करके विष्णुमन्त्र की दीक्षा दी। दीक्षा-कार्य हो चुकने पर उनका नाम गोविन्द रक्खा गया। जो दक्षिण के प्रसिद्ध वेदान्ती, प्रसिद्ध तार्किक और शैवधर्म के विश्वासी थे; बेरोक-टोक वेदान्त मत के प्रचलन और अपने गौरव को अक्षुण्ण रखने

के लिए जिन्होंने रामानुज की जीवनलीला को समाप्त करने का सङ्कल्प कर लिया था वही आज रामानुज के शिष्य बनकर भक्तिमार्ग में आ गये—यह देख सभी को अपार आश्चर्य हुआ। मध्याह्नकाल के सूर्य की उज्ज्वल किरण की भाँति यतिराज की ज्ञान-ज्योति चारों ओर विस्तृत हो गई।

श्रीरङ्गम के वैष्णव लोग यतिराज को अपने यहाँ ले जाकर यामुनाचार्य की गद्दी पर बिठलाने के लिए उत्सुक हो गये।

५

कहा जाता है कि श्रीरङ्गनाथ ने काञ्चीपुरी में वरदाराज के पास यतिराज को भेज देने के लिए मनुष्य भेजा था, किन्तु वरदाराज ने यतिराज जैसे अपने अनुगत शिष्य को वहाँ भेजना स्वीकार न किया। अन्त में यामुनाचार्य के शिष्य सुगायक वररङ्ग काञ्ची में आये। उन्होंने वरदाराज के आगे सुललित गीत गाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया। देवता ने प्रसन्न होकर उनसे अभीष्ट वरदान माँगने के लिए कहा। तब वररङ्ग ने कहा—"प्रभो, आपके चरणों में यही प्रार्थना है कि यतिराज को श्रीरङ्गम जाने की आज्ञा हो जाय।" वरदाराज ने यही कर दिया। अब यतिराज वरदाराज को प्रणाम कर और उनका आशीर्वाद लेकर वररङ्ग के साथ वैष्णव-क्षेत्र श्रीरङ्गधाम को गये। कुरेश और दाशरथि नामक उनके अनुगत दो शिष्य भी साथ गये।

यतिराज के पधारने से श्रीरङ्गधाम उत्सवमय हो गया। सैकड़ों मनुष्य उन्हें बीच में करके निशान उड़ाते हुए चले। मृदङ्ग और करताल की ध्वनि से चारों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए लोग यतिराज के शुभागमन की घोषणा करने लगे। पूर्णाचार्य यद्यपि यतिराज के दीक्षागुरु थे फिर भी उन्हें असाधारण पुरुष समझ उनके चरणों पर गिर पड़े। यतिराज धूम धाम से आश्रम में पहुँचे।

श्रीरङ्गम की अब सूरत ही बदल गई। वहाँ शास्त्र-चर्चा और भगवत्प्रसङ्ग दिन-दिन बढ़ने लगा। वैष्णव-धर्म का प्रभाव भी धीरे-धीरे विस्तीर्ण होने लगा। जिन्हें ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है वे सदा अपने को शिक्षार्थी समझकर ज्ञान की खोज में रहते हैं। श्रीरङ्गम में रहते समय यतिराज पूर्णाचार्य से किसी न किसी शास्त्र का अध्ययन करते ही रहते थे।

श्रीरङ्गम से कुछ अन्तर पर गोष्ठिपूर्ण नामक एक विशिष्ट सुपण्डित और भक्त रहते थे। महापूर्ण ने यतिराज से कहा कि गोष्ठिपूर्ण से मन्त्र ग्रहण करो। अतएव धर्मानुरागी यतिराज उनके समीप पहुँचे। किन्तु इनके धैर्य की परीक्षा करने के लिए गोष्ठिपूर्ण इन्हें बार-बार लौटाने लगे; इस प्रकार अठारह बार करने के उपरान्त उन्होंने यतिराज को दीक्षा दी और उस मन्त्र को अत्यन्त गुप्त रखने की आज्ञा दी। मन्त्र ग्रहण करने के उपरान्त यतिराज नये बल से और भी अधिक

बलवान् हो गये। उनके हृदय में अब एक नई आनन्द-धारा बहने लगी। महापुरुष लोग सदा से ही स्वार्थ-विहीन होते आये हैं। वे लोग स्वर्ग के जिस विमल आनन्द को प्राप्त करते हैं उसका उपभोग आप अकेले ही करके तृप्त नहीं हो जाते, बल्कि वह आनन्द औरों को देने के लिए भी वे व्याकुल हो उठते हैं। गोष्ठिपूर्ण से जिस मन्त्र की प्राप्ति होने के कारण यतिराज हृदय में भगवत्प्रेम का अनुभव कर रहे थे उसी अपार्थिव आनन्द का सब लोगों को उपभोग कराने के लिए वे बड़ी भारी भीड़ के बीच खड़े होकर उस गुरुप्रदत्त गुप्त मन्त्र को सबके आगे प्रकट करके कहने लगे कि सभी लोग इस मन्त्र के अधिकारी हो जाओ। अपने दिये हुए गुप्त मन्त्र की घोषणा सुनकर गोष्ठिपूर्ण दुःखित और क्रुद्ध हुए। उन्होंने यतिराज को बुलाकर कहा—"मन्त्र देते समय मैंने तुमसे कहा न था कि इसे अत्यन्त गुप्त रखना? क्या तुम जानते नहीं कि अपने गुप्त मन्त्र को प्रकट कर देने से मनुष्य नरक-गामी होता है?" यतिराज ने गुरुदेव की बात सुनकर विनीत भाव से कहा—"प्रभो, जिस मन्त्र का जप करने से जीवन का कल्याण होता है, उसे औरों के हितार्थ प्रकट कर देने से यदि नरक जाना पड़े तो मैं उसके लिए तैयार हूँ।" यतिराज का उत्तर सुनकर गोष्ठिपूर्ण निरुत्तर हो गये। वे समझ गये कि वास्तव में इन्होंने नर-नारियों के उद्धार के लिए जन्म ग्रहण किया है। गोष्ठिपूर्ण ने अन्त में अपने पुत्र को, मोक्ष-

प्राप्ति के लिए, यतिराज का शिष्यत्व ग्रहण करने की आज्ञा दी।

श्रीरङ्गम में यतिराज श्रीरङ्गराज के मन्दिर के तत्त्वावधायक थे। मन्दिर के प्राङ्गण में नित्य सैकड़ों व्यक्तियों को भर पेट विविध प्रसाद खिलाया जाता था, किन्तु यतिराज घर-घर भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह करते थे। बड़े-बड़े तीर्थ-स्थानों में देवमन्दिरों के पुजारी और पुरोहित, अनेक स्थानों पर, नीति और धर्म के मार्ग को छोड़कर अवैध उपायों से मन्दिर का द्रव्य आदि हड़प लेते हैं। श्रीरङ्गम में भी यतिराज ने पुजारियों के ऐसे अपकार्य का प्रतिवाद किया इससे वे उन लोगों को अप्रिय लगने लगे। एक दिन किसी पुजारी ने यतिराज को अपने घर भिक्षा ग्रहण करने के लिए बुलाया। यतिराज ने स्वीकार कर लिया। पुजारी ने अपनी गृहिणी से कहा कि रसोई में विष मिलाकर यतिराज को भोजन करने को देना। पुजारी की स्त्री ने ऐसा भयङ्कर काम करने में पहले विशेष अनिच्छा प्रकट की किन्तु अन्त में स्वामी के डर से वह राज़ी हो गई। पुजारी की स्त्री की समझ में न आता था कि जब दोपहर को यतिराज आवेंगे तब मैं किस प्रकार इस काम को करूँगी; आँसुओं से उसका वक्षःस्थल भीगने लगा। तब उसने एक युक्ति से काम लिया। उसने सामने भाल लाकर सिर झुकाया और यतिराज के चरण छूते समय उँगली से उनके चरण पर झटपट "विष" शब्द लिख दिया।

उस स्त्री के भाव को समझकर यतिराज ने वह भात नहीं खाया—समीपवर्ती एक कुत्ते के आगे डाल दिया। उस भात को खाते ही वह कुत्ता झटपट गिर कर टें बोल गया। इस के थोड़े ही दिन बाद एक और व्यक्ति ने इन्हें भोजन में विष दे दिया; किन्तु इस बार भी वे बाल-बाल बच गये। असाधारण धैर्य और अतुलनीय क्षमा का परिचय पाकर वह व्यक्ति, इन्हें मनुष्य कोटि से अतीत समझ, उनकी शरण में आ गया।

६

उस समय यज्ञमूर्त्ति नामक एक अद्वैत-वादी दिग्विजयी पण्डित, रामानुज के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए, श्रीरङ्गम में आये। यतिराज रामानुज भी इसके लिए प्रस्तुत हो गये। अठारह दिन तक शास्त्रार्थ होने का निश्चय हुआ। यज्ञमूर्त्ति ने रामानुज से कहा—"मैं यदि शास्त्रार्थ में परास्त हूँगा तो आपकी पादुकाओं को अपने सिर पर रक्खूँगा।" यतिराज ने कहा—"यदि मैं परास्त हुआ तो शास्त्र का अध्ययन करना छोड़ दूँगा।" इन दोनों असाधारण पण्डितों का शास्त्रार्थ देखने के लिए बहुत दूर से पण्डित लोग एकत्रित हुए। अब बड़ा विचित्र शास्त्रार्थ छिड़ गया; अन्त में यज्ञमूर्त्ति के किसी-किसी प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर देने में अपने को असमर्थ समझ यतिराज मन में बड़े क्षुण्ण हुए। अठारह दिन पूर्ण

होने में जब दो दिन बाक़ी रह गये तब यतिराज का हृदय विषाद से पूर्ण हो गया। उन्होंने श्रीरङ्गनाथ के यहाँ जाकर बड़ी व्याकुलता के साथ कहा—"देव, मैं यदि शास्त्रार्थ में परास्त हो गया तो मुझे शास्त्राध्ययन छोड़ देना पड़ेगा, और अद्वैत-मत विस्तृत होकर वैष्णव-धर्म का अनिष्ट करेगा; तुम इसका कुछ उपाय करो।" देवता की कृपा हो गई। यतिराज ने निद्रित अवस्था में स्वप्न देखा मानो श्रीरङ्गनाथ उनके सामने प्रकट होकर कह रहे हैं—"तुम क्यों चिन्ता करते हो। तुम यामुनाचार्य-प्रणीत माया-वाद नामक पुस्तक पढ़ो। उसके पढ़ने से तुम यज्ञमूर्त्ति को परास्त कर लोगे।" आँख खुलते ही यतिराज ने स्वप्न की आज्ञा के अनुसार यामुन की पुस्तक पढ़ी। फिर वे नये उत्साह के साथ शास्त्रार्थ के स्थान में पहुँचे। दिग्विजयी यज्ञमूर्त्ति दूर से ही उनकी अपूर्व मुख-ज्योति देखकर विमुग्ध हो गये। शास्त्रार्थ करना निरर्थक समझकर वे यतिराज के चरणों पर लोटने लगे और बोले—"केवल नीरस ज्ञान की चर्चा करते-करते मेरा हृदय शुष्क हो गया है; और 'हमीं ब्रह्म हैं' इस अहमिका ने भी मेरे हृदय पर जब-तब अधिकार करके भक्तिमार्ग को रोक दिया है।" दिग्विजयी पण्डित ने अनुतप्त हृदय से ये सब बातें यतिराज से कह-कर उनसे विष्णु-मन्त्र की दीक्षा देने की प्रार्थना की। यति-राज ने रीति के अनुसार दीक्षा देकर उनका नाम "मन्मथ" रक्खा। अद्वैतवादी का शुष्क हृदय कोमल हो गया। वैष्णव-

धर्म का स्रोत और भी प्रबल रूप से चारों ओर प्रवाहित होने लगा। यतिराज ने यज्ञमूर्त्ति के लिए एक स्वतन्त्र आश्रम स्थापित कर दिया। यतिराज के अभिप्राय के अनुसार इन्होंने भक्तितत्त्व विषयक दो ग्रन्थों की रचना की।

कुछ दिनों के अनन्तर यतिराज तीर्थयात्रा के लिए निकल कर अष्टसहस्र नगर में पहुँचे। यहाँ पर वरदार्य और यज्ञेश नामक उनके दो शिष्य थे। वरदार्य दरिद्र थे और यज्ञेश थे धनवान्; यतिराज अपने शिष्यों-सहित वरदार्य के घर ठहरे। वरदार्य किसी काम से कहीं बाहर गये हुए थे। उनकी पत्नी परमरूपवती लक्ष्मी देवी, स्नान करके गीली धोती को सुखने के लिए धूप में फैलाकर, नङ्ग-धड़ङ्ग घर में छिपी बैठी थी। वरदार्य इतने दरिद्र थे कि स्त्री को दूसरी धोती तक लेने का उनमें सामर्थ्य न था। शिष्यों सहित गुरु के आने पर लक्ष्मी देवी ने ताली बजाई। लक्ष्मी की दशा का विचार करके रामानुज ने अपने मस्तक का डुपट्टा घर के भीतर फेंक दिया। लक्ष्मी उस वस्त्र को पहनकर बाहर आई और गुरु की चरण-वन्दना की। किन्तु घर में तो भूनी भाँग भी न थी, गुरु-सेवा किस प्रकार हो! इस चिन्ता से वह अधीर हो गई। अन्त में किसी धनवान् के घर जाकर दाल-चावल आदि रसोई की सभी सामग्री ले आई। फिर उसने यतिराज को और उनके शिष्यों को आदर से भोजन कराया। कहा जाता है कि जिस धनवान् व्यक्ति के घर से लक्ष्मी रसोई का सामान माँग

लाई थी वह लक्ष्मी की रूप-माधुरी पर लट्टू था और सदा उसकी आकांक्षा किया करता था। उसने लक्ष्मी को उसकी माँगी हुई वस्तु इस इच्छा से दी थी कि मेरे मन की कु-अभिसन्धि को यह पूर्ण कर देगी; किन्तु अन्त में लक्ष्मी के चेहरे पर एक अपूर्व ज्योति देखकर वह अनुतप्त हृदय से आँसू बहाता हुआ उसके चरणों पर गिर पड़ा। फिर यतिराज रामानुज से वैष्णव-धर्म की दीक्षा लेकर संयतचित्त से उसने भक्तिमार्ग का अनुसरण कर जीवन बिताना चाहा। अब वेङ्कटाचल में जाकर यतिराज ने वेङ्कटेश्वर को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा की। यहाँ वेङ्कटगिरि उपत्यका के समीप श्रीशैलपूर्ण स्वामी का स्थान था। यहाँ एक वर्ष तक रहकर उन्होंने रामायण का अध्ययन किया।

अब यतिराज श्रीरङ्गम को लौट आये। मौसेरे भाई गोविन्द बचपन से ही उनके अनुगामी थे। वे ईश्वर-परायण थे। यतिराज ने घर-गृहस्थी से उनके चित्त को उचटते देखकर कहा—"श्रुति में लिखा है कि ज्योंही दुनियादारी से तबीयत हट जाय त्योंही उसे छोड़कर संन्यास ले ले। अतएव तुम्हें इस विषय में विलम्ब न करना चाहिए।" गोविन्द ने यतिराज की बात मानकर संन्यास-धर्म ग्रहण कर लिया।

यतिराज असाधारण पण्डित और शास्त्रज्ञ थे;—अद्वैतवाद का खण्डन करके जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का

निर्णय करना ही उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य था। उन्होंने यामुनाचार्य की मृत देह के आगे प्रतिज्ञा की थी कि हम नर-नारियों की मुक्ति के लिए श्रुति के वास्तविक तात्पर्य की व्याख्या करके श्रीभाष्य लिखेंगे। अब उसी इच्छा को कार्य में परिणत करने के लिए उन्होंने सङ्कल्प करके शिष्यों को बुलाया। यतिराज ने कहा—"भक्ति के बिना धर्म नहीं होता, भक्ति के बिना मुक्ति नहीं होती, इसलिए मैं श्रुति के वास्तविक तात्पर्य की व्याख्या करके विशिष्टाद्वैत-वाद को प्रतिष्ठित करने के लिए श्रीभाष्य की रचना करूँगा।" इस महान् अनुष्ठान में प्रवृत्त होने के लिए सभी शिष्यों ने प्रसन्नतापूर्वक अनुमोदन किया। यतिराज ने अपने सुपण्डित शिष्य कुरेश से कहा—"मैं बोलता जाऊँ और तुम लिखते जाओ।" कुरेश ने कहना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार जगत् के इस अपूर्व धर्म-ग्रन्थ की रचना हुई।

७

यतिराज ने एक दिन अपने शिष्यों पर दिग्विजय की वासना प्रकट की। सभी शिष्यों ने उनसे इस कार्य की सिद्धि के लिए प्रस्तुत होने को कहा। दिग्विजय के लिए प्रस्थान करके यतिराज काशी आदि स्थानों में होते हुए काश्मीर पहुँचे। वहाँ एक देवता का मन्दिर है जिसे "शारदापीठ" कहते हैं। इस मन्दिर के चारों दरवाज़ों पर प्रसिद्ध-प्रसिद्ध

पण्डित रहा करते थे। यतिराज ने इन पण्डितों की अनुमति लिये विना ही मन्दिर में प्रवेश करके भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। शारदा देवी ने यतिराज से कहा—"तुमने स्वाधीनता-पूर्वक मौलिक भाष्य की रचना की है, इसलिए तुम्हारा नाम भाष्यकार हुआ।" कहा जाता है कि शारदा देवी ने यतिराज से कहा था—शङ्कर ने एक बार श्रुति के किसी वाक्य का जैसा अर्थ किया था उसे सुनकर मैं अपनी हँसी को न रोक सकी थी। तुमने भाष्य में उस विषय की जैसी व्याख्या की है वही ठीक है।

इसके अनन्तर वे वेङ्कटाचल और पुरुषोत्तमपुरी होते हुए श्रीरङ्गम को चले गये।

एक बार श्रीरङ्गम में श्रीरङ्गदेव के उत्सव के उपलक्ष्य में बहुत लोग एकत्रित हुए। उस समय यतिराज ने देखा कि एक मनुष्य एक परम रूपवती स्त्री के सिर पर छतरी ताने टक-टकी बाँधकर उसके मुँह की शोभा देख रहा है। यतिराज ने उस मनुष्य की निर्लज्जता देखकर उसे अपने पास बुलाया और कहा—"तुम इतने मनुष्यों के आगे इस स्त्री के सिर पर छतरी तानकर इसके मुँह की ओर घूरते हो। इसमें तुम्हें लाज नहीं लगती?" उस मनुष्य ने कहा—"यह मेरी स्त्री है। पृथिवी भर में ऐसा रूप मैंने कहीं नहीं देखा। लोग चाहे जो कहा करें, किन्तु मैं तो सदा इसका मुँह देखना पसन्द

करता हूँ।" यतिराज ने कहा—"यदि मैं तुम्हें इससे भी बढ़कर सुन्दर चेहरा दिखला सकूँ तो फिर तुम क्या करोगे?" उस मनुष्य ने उत्तर दिया—"तो जो आप कहेंगे, वही करूँगा।" शाम को श्रीरङ्गदेव की आरती के समय धनुर्दास और कनकाङ्गना को लेकर यतिराज मन्दिर में गये और श्रीरङ्गदेव की मूर्त्ति की ओर धनुर्दास की दृष्टि आकर्षित करके कहा—"धनुर्दास, संसार में क्या कभी तुमने ऐसी सुन्दर मूर्त्ति देखी है?" देवता की मूर्त्ति के दर्शन से धनुर्दास विमुग्ध हो गया था। यतिराज ने देखा कि धनुर्दास की आँखों से आँसू गिर रहे हैं। उसने यतिराज के चरणों पर लोटकर कहा—"मैंने ऐसा सौन्दर्य सचमुच और कहीं नहीं देखा।" उसी दिन से धनुर्दास और उसकी पत्नी के जीवन की गति बदल गई। वे दोनों यतिराज के मन्त्र-शिष्य होकर अनासक्त हृदय से भक्ति-मार्ग के पथिक हो गये।

धनुर्दास यद्यपि शूद्र था फिर भी यतिराज उसी का हाथ पकड़कर कावेरी के जल में स्नान करने के लिए उतरते थे और नहा-धोकर उसी का हाथ पकड़ के ऊपर घाट पर आते थे। यतिराज के ब्राह्मण-शिष्यों को यह देखकर अचरज हुआ। तब यतिराज ने उन लोगों के जीवन के साथ धनुर्दास के जीवन की तुलना करके दिखला दिया कि ब्राह्मणोचित गुण उन लोगों की अपेक्षा धनुर्दास में अधिक परिमाण में हैं; इसी लिए वह शूद्र होने पर भी ब्राह्मण-तुल्य है—भक्त है।

८

यतिराज जब भक्तग्राम में रहते थे तब सफ़ेद मिट्टी न रहने पर स्वयं नारायण ने प्रकट होकर उनसे कहा—"तुम यादव गिरि में जाओ, वहाँ सफ़ेद मृत्तिका मिलेगी।" यतिराज वहीं पहुँचे। सफ़ेद मिट्टी के लिए धरती खोदते समय उन्हें यादवेश्वर की मूर्त्ति मिल गई। इस उपलक्ष्य में चारों ओर आनन्द-ध्वनि हुई; मृदङ्ग और करताल प्रभृति बजाये गये। यतिराज ने यादवेश्वर की प्रतिष्ठा करने का विचार किया। किन्तु अब यादवेश्वर की उत्सव-मूर्त्ति की आवश्यकता हुई। यतिराज को स्वप्न में मालूम हुआ कि उत्सव-मूर्त्ति तो दिल्लीश्वर के यहाँ है। तब उन्होंने शिष्यों के साथ दिल्ली पहुँचकर सम्राट् को इस विषय की सूचना दी। सम्राट् कुमारी लक्ष्मी के घर में राम-मूर्त्ति विराजमान थी। सम्राट् की आज्ञा से यतिवर सम्राट्-कुमारी के घर में गये और राममूर्त्ति को हृदय से लगाये हुए बाहर आ गये। कहा जाता है कि सम्राट्कुमारी इस राम-मूर्त्ति को बेतरह चाहती थी और मन में इसी मूर्त्ति को अपना पति मानकर, अपनी शय्या पर लिटाकर रात बिताती थी। लक्ष्मी की प्राण-वल्लभ राममूर्त्ति जब उसके महल से बाहर लाई गई तब राजकुमारी शोक के मारे पृथ्वी पर गिरकर लोटने लगी। राजकुमारी की इस दशा के समाचार पाकर सम्राट् उसे समझाने लगे किन्तु उसे किसी प्रकार धैर्य न हुआ। वह रो-रोकर कहने लगी—"मैं राममूर्त्ति के साथ

जाना चाहती हूँ। जो न जा सकूँगी तो जीवित न रहूँगी।"
सम्राट् ने बेटी की प्रार्थना स्वीकार कर ली। एक पालकी
में यतिराज और दूसरी में राजकुमारी तथा वह मूर्त्ति, सभी
बहुतेरे सैनिक और बहुत-से लोगों के साथ यादवगिरि से
रवाना हुए। रामप्रिय (मूर्त्ति) और लक्ष्मी दोनों एक पालकी में
जा रहे थे कि अन्त में लक्ष्मी अपने रामप्रिय के अङ्क में विलीन
हो गई। यादवगिरि में रामप्रिय मूर्त्ति के समीप लक्ष्मी की मूर्त्ति
प्रतिष्ठित की गई। राममूर्त्ति और अपनी देव-कन्या लक्ष्मीमूर्त्ति
के दर्शनार्थ दिल्लीश्वर ने वहाँ जाकर अत्यन्त आनन्द प्रकट
किया। रामानुज के प्रभाव से यादवगिरि का जङ्गल सुन्दर
बस्ती के रूप में परिणत हो गया। यादवगिरि तीर्थ-स्थान
कहलाया जाने लगा।

किसी समय शैवधर्मावलम्बी चोलराज ने वैष्णवों पर घोर
अत्याचार किया था। उन्होंने सभा में सबको बुलाकर कहा
कि इस बात के दस्तख़त कर दो कि "हम लोग शिव के उपा-
सक हैं।" राजा के आज्ञानुसार शैव लोग हस्ताक्षर करने
लगे। बहुतेरे वैष्णव इस समय राजा के शासन-दण्ड से
दण्डित होने की आशङ्का से देश छोड़कर भाग खड़े हुए।
वैष्णवों के अगुआ यतिराज को उस सभा में बुलाकर उनसे
शैव होने के हस्ताक्षर करा लिये जायँ तो फिर अलग-अलग
सभी वैष्णवों की राय लेने की ज़रूरत न रह जाय। यह
सोचकर उन्हें बुलाने के लिए चोलराज ने श्रीरङ्गम में दूत

भेजा। किन्तु उनके शिष्यों ने, उनकी रक्षा के लिए, उनसे कहा कि चुपचाप श्रीरङ्गम से कहीं चले जाइए। सो यतिराज कुछ शिष्यों के साथ वहाँ से सचमुच चल खड़े हुए। वे पहाड़ी और जङ्गली मार्ग से आगे बढ़ने लगे। अन्त में वे एक जङ्गली गाँव में पहुँचे। उस गाँव में व्याध लोग रहते थे। उन वैष्णवों ने एक व्याध के घर डेरा किया तब उसने शाक और चावलों के द्वारा अनेक प्रकार से उनकी सेवा की। ये व्याध लोग वैष्णव थे और यतिराज के शिष्य थे। जब उन लोगों को उस अलोकसामान्य पुरुष का परिचय मिला तब सभी गाँववाले एकत्र होकर भक्ति से उनके चरणों में लोटने लगे। रात बीतने पर विष्णुभक्त व्याध लोग बहुत दूर तक यतिराज को पहुँचाकर लौट आये। आगे जाकर यतिराज ने एक ब्राह्मण के घर आतिथ्य ग्रहण किया। ब्राह्मण की पत्नी ने बचपन में श्रीरङ्गम जाकर यतिराज से मन्त्र ग्रहण किया था। इसका नाम था चैलाञ्चलम्बा। यह नवयौवना परम रूपवती थी। जब उसने सुना कि यतिराज अपने शिष्यों-सहित मेरे घर पधारे हैं तब उसने अपना अहो-भाग्य समझा। अब यतिवर के शिष्यों ने पूछा—"बतलाओ तुम्हारे गुरु कौन हैं?" तब चैलाञ्चलम्बा ने गुरु के चरणों की ओर देखकर कहा—"मेरे गुरुजी के चरण तो यही जान पड़ते हैं। किन्तु इनके गेरुवे वस्त्र, दण्ड और कमण्डलु क्या हुए?" इस पर यतिराज ने उत्तर दिया—"अच्छा, मुझे कान

में बतलाओ तो सही कि तुम्हारे गुरु ने तुम्हें कौन सा मन्त्र दिया था।" चैलाञ्चलम्बा ने उनके कान में वह मन्त्र सुना दिया। तब आनन्द से यतिराज ने उसके मस्तक पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया और कहा—"साध्वी, मैंने विशेष कारण से गेरुवे वस्त्र, दण्ड और कमण्डलु को त्याग दिया है।" तब चैलाञ्चलम्बा आँसू बहाती हुई गुरु के चरणों पर गिर पड़ी। यतिराज उसके यहाँ कई दिन तक ठहरे। चैलाञ्चलम्बा के अनुरोध से उसका पति भी वैष्णव हो गया।

इधर दाशरथि और पूर्णाचार्य पकड़कर चोलराज के यहाँ पहुँचाये गये। राजा ने उनसे कहा कि तुम शिव के उपासक होने के हस्ताचर कर दो। ये लोग प्रसिद्ध वैष्णव और पण्डित थे; इसलिए वीर की भाँति इन्होंने शैवधर्म पर वैष्णवधर्म की श्रेष्ठता प्रकट की। इस कारण चोलराज क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने दोनों वैष्णवों की आँखें फोड़ डालने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा से उन दोनों की आँखें निकाल ली गईं। आँखें निकाली जाने पर दोनों की आँखों से रक्त बहने लगा। किन्तु हृदय की ज्योति को भला कौन बुझा सकता था? उस ज्योति की आभा से वे सारे बाहरी कष्टों को भूल गये।

धीरे-धीरे चोलराज बीमार हो गये; उनके गले में घाव हो कर कीड़े पड़ गये। कुछ दिनों में उनका देहान्त हो गया। गले में कीड़े पड़ जाने के कारण उनका नाम 'कृमि-कण्ठ चोल'

हो गया था। कृमिकण्ठ चोल के मरने की ख़बर पाकर यति-राज ने कहा, चलो अब वैष्णवधर्म बेखटके फैले। फिर मृत व्यक्ति की आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करके वे श्री-रङ्गम को लौट आये। उनके पधारने से चारों ओर आनन्द-कोलाहल होने लगा।

इससे पहले ही पूर्णाचार्य शरीर छोड़ चुके थे। उनके देहान्त की ख़बर पाकर और कुरेश को चक्षु-विहीन देखकर यतिराज अत्यन्त दुःख प्रकट करने लगे।

विशिष्टाद्वैत-वादी रामानुज स्वामी की देह धीरे-धीरे जरा-जीर्ण होने लगी। भारत में जिनके असाधारण पाण्डित्य, अनुपम भक्ति तथा प्रचार के अदम्य उत्साह के गुण से धर्म-जगत् में एक नवयुग का सूत्रपात हुआ था उस महात्मा की सेवा के लिए सौ से अधिक शिष्य एकत्र होकर कोई उनके लिए रसोई बनाने लगा, कोई तेल की मालिश करने लगा और कोई उनके सामान को आवश्यक स्थान पर पहुँचाने लगा।

कुरेश की आँखें निकाल ली जाने के कारण दयार्द्रहृदय रामानुज को अत्यन्त खेद हुआ। एक दिन इसके लिए खेद प्रकट करने पर कुरेश ने कहा—"प्रभो, इसके लिए दुःख कैसा? मेरी बाहरी आँखें न रहने से चित्त के विक्षिप्त होने की सम्भावना घट गई है, इसलिए भीतर हृदयनाथ को देखने का सुयोग मिलता है।" यतिराज ने उनसे कहा कि तुम दुबारा आँखें मिलने के लिए श्रीरङ्गनाथ से प्रार्थना करो।

किन्तु भक्तश्रेष्ठ कुरेश ने श्रीरङ्गदेव के समीप आकर भीतरी आँखों की ज्योति बढ़ने के लिए प्रार्थना की। देवता ने प्रसन्न हो "तथास्तु" कहकर वरदान दिया। किन्तु यतिराज ने कुरेश की फूटी आँखें सुधर जाने के लिए श्रीरङ्गजी से प्रार्थना की, इससे श्रीरङ्गजी ने उनकी प्रार्थना पूर्ण कर दी। गुरुदेव के आराधन करने पर कुरेश को दृष्टि प्राप्त हो गई।

एक दिन यतिराज कुछ शिष्यों के साथ श्रीरङ्गधाम से किसी पर्वत की सैर करने गये। उनके लिए रसोई-पानी का प्रबन्ध हो रहा था कि एक गोप-बालिका दही बेचने आई। एक शिष्य दही लेकर जब मूल्य देने लगा तब गोप-बालिका ने कहा—"मैं दही का मूल्य नहीं चाहती; मैं तो यतिवर से मोक्ष की प्रार्थना करती हूँ।" यतिवर ने उससे कहा कि तू श्रीरङ्गदेव से इसके लिए प्रार्थना कर। इसके लिए बालिका ने उनसे चिट्ठी लिखने को कहा। तब यतिराज ने श्रीरङ्गदेव की सेवा में एक पत्र लिख दिया। बालिका मन्दिर के समीप गई और उस पत्र को रखकर आँखें मूँदकर वहीं सो गई। कुछ देर में क्या देखा कि उसे बाह्यज्ञान नहीं है। सब लोग कहने लगे—गोपबालिका की आत्मा भगवान् में लीन हो गई।

अब विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज स्वामी के देहान्त होने का समय उपस्थित होने लगा। जिनके असाधारण पाण्डित्य, अनुपम भक्ति और अदम्य प्रचारोत्साह की बदौलत भारत के धार्मिक इतिहास में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ था

उन्हीं की सेवा सैकड़ों शिष्य तन-मन से करने लगे। उन्होंने श्रीरङ्गदेव के समीप जाकर इस संसार से बिदा होने की अनुमति माँगी। श्रीरङ्गजी ने उनकी प्रार्थना पूर्ण कर दी। यतिराज ने जब शिष्यों को बुलाकर अपने शरीर-त्याग की सूचना दी तब उन लोगों का हृदय शोक और दुःख से विदीर्ण होने लगा। श्रीरङ्गदेव से अनुमति ग्रहण करने के अनन्तर वे मर्त्यधाम में चार दिन तक और रहे, और चारों ही दिन तक शिष्यों को भगवद्भक्ति के विषय में उपदेश करते रहे। धीरे-धीरे अन्तिम समय उपस्थित हुआ। प्रातःकाल स्नान करके उन्होंने ध्यान लगाया और अपने इष्टदेव से प्रार्थना की—"प्रभो, देहान्त होने पर मेरे शत्रु और मित्र सभी को वैकुण्ठ प्राप्त हो।" उनके आराध्य देव ने "तथास्तु" कहकर उनकी प्रार्थना पूर्ण करना स्वीकार कर लिया। शिष्यों ने उनकी मूर्त्ति बनाई थी। अब अन्त समय को समीप देखकर सब लोग उन्हें घेरकर बैठ गये। गोविन्द की गोद में मस्तक और आन्ध्रपूर्ण की गोद में दोनों पैर रखकर उन्होंने सदा के लिए आँखे मूँद लीं— वे अनन्त ब्रह्म के ध्यान में निमग्न हो गये। इस समय उनकी आयु एक सौ बीस वर्ष की थी।

मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य और निम्बादित्य

१

दक्षिण भारत के तुलव देश में शके ११२१ में मध्वाचार्य ने जन्म-ग्रहण किया। इनके पिता का नाम मधिजी भट्ट था। प्रायः सभी महापुरुषों के जन्म के सम्बन्ध में एक न एक अलौकिक बात अवश्य सुनी जाती है। मध्वाचार्य के चरित-लेखकों ने भी उनके जन्म के विषय में इसका व्यतिक्रम नहीं किया। कहा जाता है कि मनुष्यों का परित्राण करने के लिए पवनदेव अवतीर्ण हुए थे। इन्होंने मध्वाचार्य का जन्म ग्रहण किया था। अनन्तेश्वर के मठ में मध्वाचार्य ने शिक्षा प्राप्त की और छोटी ही अवस्था में उन्होंने अनेक विद्याओं में पारदर्शिता प्राप्त कर ली। नव वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने संसार से उदासीनता प्रकट की। जीवन के सभी सुखों को छोड़ने की इच्छा से उन्होंने इस थोड़ी सी उम्र में ही अच्युत प्रचे से दीक्षा लेकर संन्यास-धर्म ग्रहण कर लिया।

धर्म-प्रवर्तक संन्यासी लोग सदा दुनिया के रगड़ों-झगड़ों से बचकर निर्जनता को ही पसन्द करते आये हैं। इसलिए

वे मनुष्यों की चहल-पहल से दूर एकान्त में रहकर अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं और अनेक ग्रन्थ बनाकर कोई-कोई नर-नारियों का अतुल उपकार करते रहते हैं। मध्वाचार्य ने भी दीक्षा लेकर अनेक ग्रन्थ बनाये। कहा जाता है कि गीता का भाष्य बनाकर उसे वेदव्यास को दिखलाने के लिए वे बदरिकाश्रम को गये। इन्होंने भक्ति-धर्म मूलक सैंतीस ग्रन्थ बनाये हैं, और अद्वैतवादी महात्मा शङ्कराचार्य के साथ शास्त्रार्थ में प्रवृत्त होकर उनके अद्वैत मत का खण्डन किया और उन्हें परास्त किया।

मध्वाचार्य ने उडपी में तथा अन्यान्य स्थानों में विष्णु-प्रतिमा की पूजा के लिए आठ मन्दिर बनवाये हैं। इन मन्दिरों में दण्डी लोग पर्यायक्रम से रहकर देव-सेवा किया करते हैं। इस काम को जिस समय जो दण्डी करता है उस समय वह मन्दिर की सम्मान-रक्षा के लिए बहुत धन खर्च किया करता है। मठ के अध्यक्ष तीन वर्ष से अधिक मन्दिर में नहीं रहते। ब्राह्मण और संन्यासी के सिवा और किसी को आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित होने का अधिकार नहीं। ये लोग बिल्कुल नीच जाति को छोड़कर और सभी को दीक्षा दिया करते हैं।

इस सम्प्रदाय के दण्डी सिर मुँड़ाकर जनेऊ उतार डालते हैं; गेरुवे कपड़े पहनते हैं तथा माथे से लेकर नाक तक लोहे की गरम सलाई से चिह्न कर लिया करते हैं। मध्वाचार्य

के सम्प्रदायवाले जीवात्मा और परमात्मा की पृथक् सत्ता स्वीकार करते हैं। इसलिए ये लोग द्वैतवादी कहलाते हैं। ये लोग विष्णु के उपासक हैं; अन्यान्य वैष्णव जिस प्रकार विष्णु को जगत् का मूल-कारण मानते हैं, उसी प्रकार ये भी मानते हैं। परमेश्वर के गुण-कीर्तन करने को ही ये लोग उपासना का एकमात्र अङ्ग नहीं मानते। ये लोग सबसे पहले शारीरिक, वाचनिक और मानसिक विशुद्धता की रक्षा को उपासना का प्रधान अङ्ग मानते हैं और उसी की साधना में लग जाते हैं। ये लोग शिव और विष्णु की मूर्त्ति स्थापित करके उनकी पूजा किया करते हैं। शैव सम्प्रदाय के साथ, बहुत बातों में, इनका एक मत है। इस कारण बहुत लोग समझते हैं कि मध्वाचार्य पहले शैव थे।

स्वर्गीय बाबू अक्षयकुमार दत्त ने मध्वाचार्य के विषय में (बँगला भाषा में) लिखा है—

"मध्वाचार्य-प्रणीत ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद, महाभारत, पञ्चरात्र और रामायण इनके साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं। ये लोग सभी शास्त्रों में श्रद्धा और बहुत पक्का विश्वास किया करते हैं।

"जान पड़ता है कि मध्वाचार्य पहले शैव थे, पीछे से वैष्णव-धर्म ग्रहण करके इन्होंने शैवों और वैष्णवों के पारस्परिक विवाद को मेटने के लिए यथा-शक्ति प्रयत्न किया। यह बात अनेक कारणों से ठीक मालूम होती है। (१) उन्होंने

अनन्तेश्वर नामक शिव-मन्दिर में दीक्षा ली; (२) शङ्कराचार्य द्वारा प्रवर्तित 'तीर्थ' उपाधि ग्रहण की; (३) मध्वाचार्यों के मन्दिर में विष्णु के साथ एकत्र शिव-पार्वती प्रभृति की भी पूजा होती है; (४) माध्व और शाङ्कर गुरुओं के शिष्य परस्पर उभय पक्ष के गुरुओं को नमस्कार और श्रद्धा-भक्ति करते हैं, तथा शङ्कर-प्रतिष्ठित शृङ्गगिरिस्थ मठ के महन्त उडपी नगर के कृष्ण-मन्दिर में पूजा करने आते हैं। अतएव इन दोनों प्रकार के शैव और वैष्णव सम्प्रदायी उपासकों में परस्पर एकता और सद्भाव है। जो शैव और वैष्णव इस प्रकार सद्भाव से न रहकर परस्पर विद्वेष किया करते हैं उन्हें मध्व-सम्प्रदायी लोग पाषण्डी कहते और उनकी अवज्ञा किया करते हैं।"

२

वल्लभाचार्य का जन्म आम्बलि गाँव में हुआ था। इसका वर्तमान नाम अरैल है। यहाँ वल्लभाचार्य का आसन अभी तक रक्षित है। इनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था। बाल्यावस्था में रीति के अनुसार शिक्षा प्राप्त करके वल्लभाचार्य ने विशेष पाण्डित्य प्रकट किया। वे गोकुल में रहते थे, फिर आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित होकर वे भक्ति-धर्म का विस्तार करने में रत हुए। उनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। उन्होंने अनेक स्थानों में भ्रमण किया और अपने मत की प्रधानता स्थापित

करने के लिए पण्डितों से शास्त्रार्थ किया। उन्होंने विजय-नगर के राजा कृष्णदेव की सभा में जाकर शास्त्रज्ञ पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। फिर उज्जैन जाकर, पीपल के पेड़ के नीचे, आश्रम बनाकर रहने लगे। अब तक चुनार प्रभृति स्थानों में उनके मठ देख पड़ते हैं।

धर्माचार्य लोग प्रायः कठोर वैराग्य के अवलम्बन को ही धर्म-साधन का बढ़िया उपाय समझा करते हैं। किन्तु वल्लभाचार्य ने इस मार्ग को ग्रहण नहीं किया। उपवास और शारीरिक कृच्छ्र-साधन को वे धर्म में सहायक नहीं मानते थे। उनके शिष्य लोग दुनियादारी से छड़कते नहीं हैं; बढ़िया माल छकते हैं और उत्तम वस्त्र पहनते हैं; गोस्वामियों को बहुत कुछ भेंट और धन-सम्पत्ति दिया करते हैं। वल्लभाचार्य आरम्भ में संन्यासाश्रम को ग्रहण करके धर्म-साधन में प्रवृत्त हुए। फिर उन्होंने गृहस्थ होकर संसार-धर्म का पालन किया,—लोग बाग ऐसा ही बतलाते हैं।

अन्यान्य वैष्णवों की भाँति ये लोग भी भुजाओं में और वक्षःस्थल में शङ्ख, चक्र, तथा गदा-पद्म के चिह्न अङ्कित किया करते हैं; माला जपते हैं और श्रीकृष्ण का नाम लेकर प्रेम से परस्पर आलिङ्गन आदि करते हैं। वल्लभाचार्य पुरी में श्रीचैतन्य के साथ भेंट करने गये थे और उनके शिष्यों से परिचित होकर विशेष प्रसन्न हुए थे। इन्होंने भागवत पर टीका लिखी है। उसी टीका को ले जाकर इन्होंने श्रीचैतन्य से कहा—"मैंने

श्रीधर स्वामी की टीका के दोषों का खण्डन करके यह टीका लिखी है।"—फिर वे अपनी बनाई टीका सुनाने लगे। वहाँ गदाधर प्रभृति श्रीचैतन्य के अनेक शिष्य उपस्थित थे। वल्लभ भट्ट की टीका सुनकर इन लोगों ने प्रशंसा नहीं की। वङ्ग-भाषा में, वैष्णव ग्रन्थों में, लिखा है कि श्रीचैतन्य ने हँसी के तौर पर कहा था—"जो 'स्वामी' की निन्दा करती है वह कुलटा कही जाती है।" यहाँ भट्टजी का अभिमान जाता रहा। अब उन्होंने श्रीचैतन्य की चरण-वन्दना करके गहरी श्रद्धा प्रकट की। प्रभु ने उन्हें प्रेमपूर्वक गले से लगा लिया।

वल्लभाचार्य के स्वर्गारोहण के सम्बन्ध में एक कथा कही जाती है। जिस समय वे काशीपुरी में रहते थे उस समय एक दिन गङ्गाजी में स्नान करने गये। गङ्गाजी में नहाते-नहाते उनकी देह जल में एकदम मिल गई। किसी को उनकी देह देख न पड़ी। किन्तु कुछ देर में आचार्य दिव्य देह धारण कर, बहुतेरे दर्शकों के बीच, जल में से निकल पड़े और अधर मार्ग से आकाश की ओर जाने लगे। देखते-देखते उनकी वह कान्ति भी अदृश्य हो गई।

बहुतेरे धनवान् सुनार और भाटिया लोग वल्लभ-कुल के सेवक हैं। मथुरा, वृन्दावन प्रभृति भारत के अनेक स्थानों में वल्लभाचारियों की गद्दियाँ हैं।

३

चौथे सम्प्रदाय का नाम निम्बादित्य है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भक्त निम्बादित्य हैं। भक्तमाल ग्रन्थ के अनुसार इनका पूर्व नाम भास्कराचार्य था। वृन्दावन धाम में भास्कराचार्य का एक आश्रम था। एक दिन एक जैन दण्डी उनके आश्रम में आया और उनके साथ धर्म-सम्बन्धी घोर शास्त्रार्थ करने लगा। दिन भर बीत गया और दिन डूबने को हुआ। फिर भी शास्त्रार्थ होता ही रहा। शाम हो चुकने पर अतिथि को भोजन कराने के लिए भास्कराचार्य कुछ खाद्य-सामग्री ले आये। सन्ध्या हो चुकने पर जैन यति लोग इस आशङ्का से भोजन नहीं किया करते कि कहीं कोई प्राणी नष्ट न हो जाय। आश्रम में अतिथि भूखा न रह जाय, इसके लिए भास्कराचार्य ने सूर्य की गति रोक दी और जब तक अभ्यागत यति ने भोजन कर नहीं लिया तब तक उनको आश्रम के समीप नीब के पेड़ पर ठहरने के लिए कह दिया। सूर्यनारायण, भास्कराचार्य की आज्ञा के अनुसार, यति के भोजन कर लेने तक उसी नीब के पेड़ पर ठहरे रहे। तभी से भास्कराचार्य का नाम 'निम्बार्क' पड़ गया।

निम्बादित्य का अद्भुत प्रभाव देखकर जैन यति ने उनके चरणों पर माथा रख दिया। जैन मत छोड़कर उसने वैष्णव धर्म ग्रहण कर लिया।

निम्बादित्य के शिष्य अन्यान्य वैष्णवों की भाँति तिलक लगाते और तुलसी की कण्ठी पहनते हैं। ये लोग राधा-कृष्ण की युगल मूर्त्ति की उपासना किया करते हैं। भारत के अनेक स्थानों में, ख़ासकर पश्चिम प्रदेश में, बहुतेरे 'रामाइत' (रामोपासक) रहा करते हैं। भागवत ही इनका प्रधान शास्त्र है। ये लोग कहते हैं—निम्बादित्य ने वेद का एक भाष्य बनाया था।

तुकाराम

१

महाराष्ट्र देश के अन्तर्गत पूना नगरी के समीप इन्द्रायणी नाम की एक छोटी-सी नदी है। इस नदी के किनारे, देहू नामक छोटे-से गाँव में, कोई १५१० शकाब्द में माघ वदी ५ गुरुवार को तुकाराम ने जन्म लिया था। भगवद्भक्तों को प्रायः अनेक स्थानों में पिता-माता अथवा अपने पूर्वपुरुषों के गुण प्राप्त हो जाते हैं। तुकाराम के सातवें पूर्वपुरुष का नाम विश्वम्भर था; ये शूद्र (कुनबी) थे। ये व्यवसाय करके अपना निर्वाह करते थे। काम-काज में लगे रहने पर भी ये धर्म-कर्म में मन लगाकर बड़े नियमपूर्वक उसे करते रहते थे। काम-काज से छुट्टी पाते ही विश्वम्भर साधुसङ्गति और भगवान् का भजन किया करते थे।

देहू से पचास कोस के अन्तर पर पण्ढरपुर में विट्ठल देव का मन्दिर है। विश्वम्भर इन्हीं विट्ठलदेव के उपासक थे। वे इनकी पूजा करने के लिए इतनी दूर पैदल जाया करते थे। इस प्रकार वहाँ पर सोलह बार जाने से बिठोवा अपने भक्त का धर्मभाव देख प्रसन्न होकर स्वप्न में दर्शन देकर बोले—"अब तुम्हें कष्ट करके इतनी दूर हमारी पूजा करने के लिए न आना होगा। तुम अपने घर बैठकर ही हमारी पूजा

अपने 'अभङ्गों' (एक प्रकार के छन्द) में जिज़ाबाई का स्वभाव कर्कश बतलाया है। तुकाराम बड़े उत्साह से व्यवसाय कार्य करने लगे। उनकी कार्य-दक्षता देख सभी उनकी प्रशंसा करते थे। वे धन और ऐश्वर्य के बीच बड़े सुख की गृहस्थी में रहने लगे। किन्तु होनहार को कौन टाल सकता है? जब वे अठारह वर्ष के हुए तब उनके माँ-बाप का क्रमशः देहान्त हो गया। पिता-माता की मृत्यु होने से तुकाराम के मन की दशा बदल गई। जिस उत्साह के साथ वे वाणिज्य करते थे वह उत्साह धीरे-धीरे क्षीण हो गया। उन पर क़र्ज़ हो गया और व्यापारियों के बीच वे दिवालिया मान लिये गये। उनकी दूसरी पत्नी, काम-काज में उनकी उदासीनता देख, विशेष रूप से तिरस्कार करके कहती थी—"बिठोवा की पूजा में लगे रहने से ही तुम्हारा व्यापार चौपट हो गया।" अन्यान्य लोग भी तुकाराम के काम की निष्फलता का कारण उनका बिठोवा की पूजा में लगा रहना ही बतलाते थे। अब वे चुपचाप सभी के तिरस्कार को सहने लगे। तुकाराम का मन अब संसारी काम-काज में न लगता था; उन्हें भला अब कौन बाँधकर रख सकता था? वे देहू से दो कोस के अन्तर पर भण्डारा नामक एक रमणीय पहाड़ पर गये। वहाँ दिन भर प्रेम से भजन और साधन किया करते तथा रात को देहू लौट आते थे। यहाँ बिठोवा की आराधना और नाम-कीर्तन आदि में सारी रात बिता देते थे। वे कभी भण्डारा पर्वत

पर और कभी इन्द्रायणी नदी के किनारे बैठकर ध्यान करते रहते थे। वे नदी के जिस स्थान में बैठकर ध्यान करते थे उसके समीप ही एक किसान रहता था। उसने एक दिन तुकाराम के समीप आकर कहा कि भाई हमारी खेती-बारी की रखवाली किया करो तो अच्छा हो। हमें बाहर जाना है। तुकाराम ने जब उसकी बात मान ली तब किसान उन्हें एक लाठी दे गया। खेत से जीव-जन्तुओं को भगाने के लिए तुकाराम वहाँ लाठी लेकर बैठे। पक्षियों का झुण्ड जब खेत में उतर-कर अन्न चुगने लगा तब उन्होंने पक्षियों को वहाँ से उड़ाने के बदले कहा—"भूख लगने से तुम यहाँ चुगने आये हो सो खूब खा लो और पानी पीकर अपने-अपने घोंसलों को उड़ जाओ।" ध्यान-परायण तुकाराम एकान्त में, खेत के समीप, बैठकर अक्सर अपने भाव में विभोर होकर ध्यान में चित्त लगायें रहते थे। धीरे-धीरे पक्षियों ने आनन्द से प्राय: सारा खेत चुग डाला। कुछ दिन बीतने पर किसान ने जब आकर खेत की दशा देखी तब तुकाराम को बहुत डाँटा-डपटा और हर्जाना माँगा। अन्यान्य लोगों ने भी मध्यस्थ होकर तुकाराम से क्षति पूर्ति कर देने के लिए कहा। कहा जाता है कि तुकाराम से क्षति-पूर्ति के लिए जितना अन्न माँगा गया था उससे कहीं अधिक अन्न की ढेरी उन्होंने खलिहान में लगी देखी। किसान को हर्जाने में जितना अन्न मिलना चाहिए था उससे

जो अन्न बचा वह सब ले लेने के लिए लोगों ने तुकाराम से कहा।

उनके पूर्वपुरुष ने देहू में बिठोवा का जो मन्दिर बनवाया था वह मरम्मत न होने से टूट-फूट गया था। तुकाराम ने उस मन्दिर के जीर्णोद्धार करने का विचार किया। वे अपने हाथ से मिट्टी खोदकर लाने और मन्दिर की मरम्मत करने लगे। उन्हीं के उद्योग से बिठोवा का मन्दिर फिर नया-सा हो गया। बिठोवा के मन्दिर के सामने कवि लोग अभङ्ग बनाकर गाया करते थे। उनकी सुललित रचनावली सुन-सुनकर तुकाराम का हृदय मुग्ध हो जाता था। अन्त में उनके मार्ग का अनुसरण करने के लिए तुकाराम की इच्छा हुई। इसके लिए उन्होंने नामदेव प्रभृति महाराष्ट्रदेशीय बड़े-बड़े कवियों की ग्रन्थावली, रामायण और भगवद्गीता प्रभृति का रीति के अनुसार अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। इन ग्रन्थों का अध्ययन करते-करते उनमें कविता करने की स्फूर्ति होने लगी। अन्त में वे बहुत अच्छी कविता करने लगे।

मनुष्य के हृदय में स्थित वास्तविक भगवत्प्रेम ही पीड़ित नर-नारियों के प्रति करुणा रूप में उमड़ पड़ता है। तुकाराम पीड़ित नर-नारियों की सेवा में यथाशक्ति लग पड़े। बिठोवा के भक्त जब मन्दिर में आते थे तब उन्हें कोई कष्ट न होने देने के लिए वे कँकरीले मार्ग को साफ़ कर रखते थे; रात को बिठोवा की पूजा करनेवालों को मार्ग दिखलाने के लिए अपने

हाथ में उजेला लिये रहते थे। एक बार एक बुढ़िया को रास्ता चलने में अशक्त देख तुकाराम उसे अपने कन्धे पर बिठाकर पहुँचा आये। वे बीमारों की सेवा किया करते, थके हुए बटोहियों के पैर गरम पानी से धोते और अनेक प्रकार से उनकी सेवा करते थे। वे कुछ नर-नारियों की ही सेवा न करते थे, किन्तु उनका हृदय निकृष्ट प्राणियों को कष्ट से मुक्त करने के लिए भी उद्योग करता था। वे चींटियों के बिलों पर खाद्य पदार्थ उनके खाने के लिए डाल देते थे।

२

महापुरुषों के जीवन में देखा जाता है कि किसी काम में विशेष रूप से हस्तक्षेप करने के पूर्व उन्हें स्वप्न में कोई महापुरुष आज्ञा दे दिया करते हैं। नामदेव महाराष्ट्र देश के प्रसिद्ध कवि थे। तुकाराम ने एक बार कहीं जाते समय रास्ते में, सोते समय, देखा कि मानो बिठोवा नामदेव को साथ लिये उनके समीप आकर कह रहे हैं—"तुम अभङ्ग बनाओ, और नामदेव जितनी कविता कर गये हैं उसकी अपेक्षा तुम अधिक कविता करो।" जब से यह स्वप्न देखा तभी से उनके हृदय में मानो कवित्व का फ़व्वारा छूटने लगा। वे भगवत्प्रेम में मस्त होकर बहुत-से अभङ्ग बनाने लगे। भक्तकवि की हैसियत से चारों ओर उनका यश फैल गया। कहते हैं कि उन्होंने ४ करोड़ से अधिक अभङ्ग कहे हैं, पर इस समय उनके

साढ़े चार हज़ार अभङ्ग प्राप्त हैं जिनकी एक "गाथा" पुस्तकाकार छप चुकी है।

तुकाराम के स्वार्थत्याग और भगवद्भक्ति प्रभृति गुण देखकर सभी का उन पर अनुराग हो गया। ब्राह्मण भी उन्हें हाथ जोड़ने लगे। यह देखकर बहुत-से लोग डाह करके उनके साथ शत्रुता करने लगे। मम्बाजी बाबाजी नामक एक व्यक्ति ने बिठोवा के मन्दिर के समीप अपने बाग़ के चारों ओर कँटीली बाड़ी लगाई। तुकाराम ने यह सोचकर उसे उखाड़ डाला कि इससे बिठोवा के मन्दिर में आनेवाले भक्तों को असुविधा होगी। यह देखकर मम्बाजी बहुत ही बिगड़ा। उसने तुकाराम की पीठ पर कँटीली लाठी से निर्दयतापूर्वक प्रहार किया। इस मार को तुकाराम ने चुपचाप सह लिया। मम्बाजी नित्य सन्ध्यासमय तुकाराम का कीर्तन सुनने आया करता था किन्तु जिस दिन उसने उनको मारा उस दिन वह कीर्तन के समय पर नहीं आया। तुकाराम ने उसको कीर्तन में न देखकर उसके पास आदमी भेजा। किन्तु उसने कहला भेजा कि हमारी तबीअत अच्छी नहीं है। यह सँदेशा सुनकर तुकाराम स्वयं उसके घर गये और उसके चरणों पर गिरकर बोले—"यदि मैं आपकी बाड़ी को न उखाड़ता तो आप मुझे कभी न मारते। अतएव मैं ही अपराधी हूँ, आप मुझे क्षमा कर दीजिए।" तुकाराम के धैर्य और विनय पर मुग्ध होकर मम्बाजी उनका शिष्य हो गया।

तुकाराम बुरी तरह से पिटकर बिठोबा के समीप गये और उनके मुँह की ओर देख अपने मन की बात कहकर सारी शारीरिक वेदना भूल गये। उस समय उन्होंने जो अभङ्ग बनाये थे उनका सार यह है;—हे बिठोबा, मैं तुम्हारे चरणों का आश्रय न छोड़ूँगा। कितनी ही यातनाएँ क्यों न सहनी पड़ें, हृदय ही क्यों न दग्ध हो जाय और प्राण तक क्यों न निकल जायँ, किन्तु मैं तुम्हारे चरणों को नहीं छोड़ने का। पैनी धार के अस्त्र से कोई मेरी देह के टुकड़े-टुकड़े क्यों न कर डाले तो भी मुझे कुछ परवा नहीं है; मुझे तो बिठोबा का दृढ़ भरोसा है। उसकी कृपा से शाप भी वरदान हो जाता है। क्षमा गुण की शिक्षा देने के लिए इस देह पर कँटीली लाठी का प्रहार किया गया है। सो क्रोध को हटाकर परित्राण कर दिया।

धर्म-साधन में दीक्षा लेने से बड़ी सहायता होती है। यह बात सदा से इस देश में प्रचलित है। धर्मगुरु, समय-समय पर, शिष्यों के भीतर ऐसी शक्ति का सञ्चार कर देते हैं कि उस शक्ति से अनुप्राणित होने के कारण वे जीवन में अनेक कार्य कर लेते हैं। कहा जाता है कि तुकाराम ने भी दीक्षा ली थी। किन्तु उन्होंने किसी मनुष्य को गुरु नहीं किया। प्रसिद्ध है कि उनके इष्टदेव बिठोबा ने स्वयं उनको दीक्षा दी थी। यह भी कहा जाता है कि उन्हें स्वप्न में बाबा चैतन्य नामक किसी पवित्र ब्राह्मण ने "राम कृष्ण हरि" मन्त्र दिया था। तुकाराम की अपूर्व भगवद्भक्ति और निष्ठा की ख़बर

चारों ओर फैल जाने से, अनेक स्थानों से, उनके दर्शनार्थ बहुत-से आदमी उनके घर आने लगे। तुकाराम भी अपने घर अतिथियों को प्रेम से आश्रय देते और उनके खान-पान आदि की व्यवस्था करके सब प्रकार से उनकी सेवा करते थे। किन्तु तुकाराम की पत्नी को यह पसन्द न था। वह बड़ी रुखाई के साथ इस काम के लिए अपने पति की लानत-मलामत करती थी। स्त्री के द्वारा अतिथि-सेवा में विशेष रूप से रोक-टोक होते देख वे "बल्लाल का वन" नामक एक निर्जन जङ्गल में चले गये। प्रातःकाल स्नान-ध्यान और बिठोवा की पूजा करके वे उस जङ्गल में दिन भर बने रहते और सन्ध्या होने पर देहू में बिठोवा के मन्दिर में आकर रात को नाम-कीर्तन आदि किया करते थे। इस प्रकार दो महीने बीत जाने पर, पत्नी के अनुरोध से, वे घर चले आये।

घर-गृहस्थी से अलग रहने पर भी तुकाराम ने उसका बिलकुल परित्याग नहीं कर दिया। उनके तीन लड़कियाँ और दो बेटे* थे। पत्नी के अनुरोध से बड़ी बेटी के लिए घर-वर ढूँढ़ने जाने पर उन्हें रास्ते में तीन लड़के खेलते हुए

* पुत्रों का नाम महादेव और विठोबा था तथा लड़कियों का काशी, भागीरथी और गङ्गा। जिस समय साधु तुकाराम का वैकुण्ठ-वास हुआ उस समय उनकी पत्नी जिजाबाई को पाँच महीने का गर्भ था। यह पुत्र नारायण बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह बड़ा भगवद्भक्त था और उस समय के कीर्तनकारों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता था।

मिल गये। उन्हें वे क्रीड़ास्थल से अपने घर लिवा लाये और उसी दिन उन तीनों के साथ अपनी तीनों लड़कियों का विवाह कर दिया। उन लड़कों के अभिभावक यह सोचकर आनन्दित हुए कि तुकाराम जैसे परम भक्त के साथ हमारा पारिवारिक सम्बन्ध हो गया है।

सुमधुर कथकता और अपने पवित्र चरित्र के प्रभाव से तुकाराम धीरे-धीरे सभी के लिए पूज्य हो गये। ब्राह्मण भी उन्हें गुरु बनाकर उनसे उपदेश लेने लगे। किन्तु ईर्ष्यालु व्यक्तियों ने कभी किसी साधु पर अत्याचार करने में त्रुटि नहीं की। जब कायस्थ नरोत्तम दास ने ब्राह्मणों को मन्त्र देना आरम्भ किया तब बहुतेरे ब्राह्मणों ने उनके साथ शत्रुता-पूर्ण आचरण करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। पूना शहर के पास रामेश्वर भट्ट नामक एक व्यक्ति रहते थे। वे धर्म-शास्त्र का व्यवसाय करते थे। रामेश्वर भट्ट ने देखा कि ब्राह्मण होने पर भी हमें जो सम्मान और भक्ति प्राप्त नहीं हो सकी उसकी अपेक्षा अधिक श्रद्धा शूद्र तुकाराम को मिल गई। ब्राह्मण भी मन्त्र लेकर उनके चेले हो रहे हैं। तुकाराम के प्रभाव को रामेश्वर भट्ट चुपचाप सह न सके, वे उन पर खड्ग-हस्त हो गये। उन्होंने गाँव के अधिकारी के यहाँ तुकाराम पर यह नालिश की कि ये उस अधिकार को ग्रहण करते हैं जो कि वास्तव में ब्राह्मणों का है। शास्त्र में जो ज्ञानमार्ग प्रतिपादित है उसके विरुद्ध तुकाराम एक नये मत की घोषणा

करते हैं कि "ईश्वर के नाम का गान करने से रक्षा होती है।" देश के लोगों को तुकाराम भटका रहे हैं। इसलिए उन्हें देश से दूर हटा देने की अत्यधिक आवश्यकता है। गाँव के मुखिया ने इस शिकायत को ठीक समझा और उसने तुकाराम को दण्ड देने के लिए उन्हें देश से निकल जाने की आज्ञा दी। यह आज्ञा सुनकर तुकाराम चिन्तित हुए, और सोचने लगे कि भला अपनी जन्मभूमि को छोड़कर हम किस तरह जायँगे। मन की ऐसी दशा में उन्होंने एक बार रामेश्वर भट्ट के समीप जाने का निश्चय किया और जाकर उनसे भेट की। रामेश्वर ने तुकाराम से कहा—"तुम्हारे अभङ्गों के कारण देश के सर्वसाधारण का नुकसान होता है; तुम अब कविता बनाना छोड़ दो।" तुकाराम ने विनीत भाव से कहा—"आप अभङ्ग बनाने से मुझे रोकते हैं तो मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। किन्तु अब तक जो कविता की जा चुकी है वह क्या होगी?" भट्ट ने कहा—"उसे इन्द्रायणी के जल में फेक दो।" रामेश्वर की बात को शिरोधार्य करके तुकाराम ने कविता करना बन्द कर दिया और अपनी कविताओं को प्रस्तर-फलक में रखकर, कपड़े से लपेट, तेज धारवाली इन्द्रायणी के जल में फेक दिया। इस प्रकार कविताओं के नष्ट हो जाने से तुकाराम दुखी होकर विठोवा के आगे पड़ रहे। इस मन के दारुण कष्ट की दशा में उन्हें तेरह दिन बीत गये। अन्त में विठोवा की कृपा से उन्हें जल

में डुबाये हुए सभी अभङ्ग मिल गये। कहा जाता है कि तेरह दिन के बाद इन्द्रायणी नदी के ऊपर, कपड़े में लिपटी हुई जलमग्न, कविता-पुस्तक अपने आप उतराने लगी। पुस्तक लेकर लोग तुकाराम के समीप पहुँचे। इस लुप्त-रत्न की प्राप्ति से तुकाराम के आनन्द की सीमा न रही। इसको बिठोबा की ही अपार कृपा समझकर वे कृतज्ञता से उनकी महिमा का वर्णन करने लगे।

३

देहू में तुकाराम के अभङ्गों का उद्धार होने की चर्चा हो रही थी और सब लोग उनके पुण्यमय जीवन की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे कि रामेश्वर भट्ट पर एक विपत्ति आ पड़ी। तुकाराम को छका देने की ख़ुशी में वे निश्चिन्त और आनन्दित होकर नागनाथ नामक शिव की पूजा के लिए चले जा रहे थे। रास्ते में नहाने के लिए एक फ़कीर के बाग़ में जाकर उन्होंने कुएँ पर स्नान किया। स्नान करते ही उनकी देह में भयानक जलन होने लगी। उनकी देह मानो दहकती हुई आग में जलने लगी। बेचैन होकर वे घर लौट आये। उनकी समझ में न आया कि किस प्रकार इस निदारुण कष्ट से प्राण बचें; इसी दशा में उन्हें स्वप्न में आज्ञा हुई कि तुकाराम के पास जाकर जब तक क्षमा-प्रार्थना न करोगे तब तक देह की जलन दूर न होगी। रामेश्वर ने स्वप्न की

आज्ञा को मानकर तुकाराम के पास एक स्तुति-पूर्ण पत्र भेजा। रामेश्वर ने उन्हें देश से निकलवाने के लिए जो पूरी-पूरी चेष्टा की थी, इसके लिए तुकाराम ने उनके ऊपर क्षण भर के लिए भी रोष प्रकट नहीं किया। रामेश्वर के प्रार्थना करने पर दया के अवतार तुकाराम ने उन्हें अभङ्ग छन्दों में ही उत्तर दिया जिसका भावार्थ यह है;—हृदय के निर्मल होते ही शत्रुओं का दल मित्रों के जैसा हो जाता है। तब न तो साँप डसते हैं और न सिंह आक्रमण करते हैं। गरल भी सुधा का काम देता है और आपदाएँ सम्पत्ति का रूप धारण करती हैं। निषिद्ध कर्म धर्म हो जाते हैं, सन्ताप आनन्द में परिवर्तित हो जाता है। आग जला नहीं सकती, उसकी लपटें शीतल हो जाती हैं। यह सोचकर जीवधारियों को प्रेम के बन्धन में बँधे रहना चाहिए। इस संसार में सभी के प्राण एक-से हैं, यह सोचकर उनसे प्रेम करो।

इन अभङ्गों के पढ़ने से रामेश्वर का हृदय परिवर्तित हो गया। तुकाराम का अपूर्व क्षमागुण देखकर वे मुग्ध हो गये; ज्ञान के गर्व और जाति के अभिमान को छोड़कर वे उनके शिष्य बनकर भक्ति-मार्ग के उपासक हो गये। श्रीयुक्त सत्येन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने "बम्बई चित्र" नामक उपादेय ग्रन्थ में रामेश्वर भट्ट के परिवर्तन-सम्बन्ध में लिखा है;—

"इस समय से रामेश्वर भट्ट तुकाराम के परम भक्त शिष्य हो गये—विद्वेष अनुताप में परिणत हो गया। शूद्र कह-

कर जिसकी अवज्ञा करते थे उसी की देवता की तरह पूजा करने लगे। अब उनकी समझ में आया कि भक्तों की कोई जाति नहीं होती; जिस प्रकार शालग्राम पाषाण होने पर भी पूजा के योग्य है उसी प्रकार ईश्वरानुरागी पुण्यात्मा को नीच जाति का दोष स्पर्श नहीं करता। दस ग्रन्थों के ज्ञाता वैदिक पण्डित शास्त्र, पुराण और भगवद्गीता का प्रति दिन पाठ करते हैं, किन्तु वे उसका सार ग्रहण नहीं करते। इस कलिकाल में ब्राह्मण लोग कर्मकाण्ड के कुचक्र में और जाति के अभिमान में दुर्दशाग्रस्त हैं। तुकाराम साधारण व्यवसायी वणिक नहीं थे—वे बिठोबा के चरणसेवक थे। उनका जैसा ज्ञानी भक्त, त्यागी पुरुष हमने पृथ्वी में कहीं नहीं देखा।"

शिवाजी नाम का एक ठठेरा तुकाराम का चेला था। उसका चित्त दुनियादारी में बेतरह उलझा हुआ था और तुकाराम के काम आदि उसे अच्छे न लगते थे। किन्तु अन्त में तुकाराम के जीवन का अपूर्व प्रभाव देख उसके जीवन की गति बदल गई। शिवाजी तुकाराम का अनुगत शिष्य होकर सदा उनके साथ भगवत्-चर्चा और कीर्तन आदि किया करता था। वह जो कुछ उपार्जन करता उसे गृहस्थी में ख़र्च करने के बदले साधु-सेवा में लगाता था। स्वामी की यह करतूत पत्नी को सहन न हुई। तुकाराम को ही सब अनिष्टों की जड़ समझकर उसने एक दिन अपने घर उनका निमन्त्रण किया। जब तुकाराम उसके घर पहुँचे तब ठठेरे की दुलहिन

ने भोजन कराने के बदले उनकी देह पर खौलता हुआ पानी उड़ेल दिया। गरम पानी से जलकर तुकाराम बेचैन हो गये। इसी दशा में अपने इष्टदेव बिठोवा के पास जाकर उन्होंने अपने कष्ट की बात कहकर शान्ति के लिए प्रार्थना की। शरीर के साथ मन का बहुत ही समीप का सम्बन्ध है। धर्म-विश्वास के बल पर धर्मवीर लोग, अनेक समयों पर, शारीरिक यन्त्रणा को भूल जाया करते हैं। तुकाराम धर्मवीर थे; भगवान् के भक्त थे। वे इस यन्त्रणा के समय बिठोवा के चरणों में आत्म-निवेदन करके, हृदय में शान्ति पाकर, शारीरिक कष्ट को बहुत कुछ भूल गये। कुछ दिनों में तुकाराम बिलकुल स्वस्थ हो गये।

तुकाराम केवल धैर्य के ही अवतार न थे किन्तु दुर्जय प्रवृत्ति पर भी उनको आधिपत्य प्राप्त था। एक बार एक सुन्दरी स्त्री ने एकान्त में उनके समीप आकर अपनी नीच वासना चरितार्थ करने की बात उन पर प्रकट की। तुकाराम ने उसे 'मा' कहकर यह वासना छोड़ देने का उपदेश दे वहाँ से चले जाने के लिए कहा।

४

छत्रपति शिवाजी और रामदास स्वामी तुकाराम के समसामयिक थे। समर्थ रामदास स्वामी शिवाजी के गुरु थे। तुकाराम की साधुता का वृत्तान्त सुनकर शिवाजी ने सम्मान-

सूचक पत्र-द्वारा अपने घर उनको निमन्त्रण किया। उन्हें महल में बुला लाने के लिए कई मनुष्य, घोड़े और हाथी भेजे गये। तुकाराम ने राजा के निमन्त्रण को अस्वीकार करके कविता में जो पत्र लिखा उसका कुछ अंश यहाँ पर श्रीयुक्त सत्येन्द्रनाथ ठाकुर के "बम्बई चित्र" से उद्धृत किया जाता है;—छत्र, घोड़े, मशाल आदि को मैं पसन्द नहीं करता; भूपाल, इन चीज़ों के द्वारा मुझे क्यों फुसलाते हो! धन, मान आदि आडम्बर से मुझे घृणा है। भगवन्, मुझे इस विपत्ति से बचाओ। जो मुझे नापसन्द है वही देने को तैयार हो! मुझे इस सङ्कट में क्यों डाल दिया है? साथियों और घर-द्वार से अलग रहता हूँ। अकेला रहूँगा, किसी से बातचीत न करूँगा। मान, दम्भ, लोकाचार—सब बातों से मुझे घृणा है। हे पण्ढरीपति, मुझे इनसे अलग रक्खो। राजन्, तुम्हारे यहाँ जाने से मेरा क्या होगा; मुफ़्त में कष्ट होगा। खाने की ज़रूरत होने पर भीख माँग लाता हूँ और कपड़े की ज़रूरत होने पर रास्ते में पड़े चिथड़े मिल जाते हैं। रास्ते के पत्थर मेरे लिए शय्या का काम देते हैं और आकाश को वस्त्र बना-कर मैं पहन लेता हूँ। भला, अब मैं और किससे क्या आशा करूँ? वासना तो जीवन का ह्रास करती है। राज-महलों में मान की आशा पूर्ण हो सकती है लेकिन वहाँ शान्ति कहाँ? एक मात्र इसी योग का साधन करना, जो भला हो उससे कभी घृणा न करना। राजन्, जिस काम के करने से दोष

होता हो वह कभी न करना। दुर्जनों और निन्दकों का कहा कभी न मानना। दोष-गुण देखकर राज्य के रक्षकों को नियत करना। राजन्, तुम्हें और क्या समझाऊँ, तुम तो सब कुछ जानते हो। मेरी तो यही विनती है कि अनाथ और दुर्बल व्यक्तियों को शरण देना। सौ बात की बात यह है कि प्राणिमात्र में एक ही आत्मा मौजूद है। आत्माराम निरञ्जन में सदा चित्त लगाये रहना। पूज्य गुरु रामदास की ओर देखो। हे भूपाल, तुम धन्य हो; त्रैलोक्य में तुम्हारी कीर्ति व्याप्त है।

तुकाराम का उत्तर पाकर शिवाजी प्रसन्न हुए। धन-जन के प्रति जिनकी ऐसी निःस्पृहा थी उनके दर्शनार्थ राजा स्वयं उनके समीप गये। उस समय तुकाराम लोहाग्राम में रहते थे। शिवाजी बहुत लोगों के साथ राजसी ठाट-बाट से उनके यहाँ गये। उन्होंने दरिद्र भक्त को थाली में बहुत-से माणिक्य प्रदान किये। तुकाराम ने बड़ी लापरवाही से ये चीज़ें फेंक दीं। उस समय उन्होंने राजा से जो बातें कहीं उनका सार यह था;—राजन्, मैं हरिनाम का कीर्तन करके जीवन बिताता हूँ। मुझे सांसारिक ऐश्वर्य की तनिक भी ज़रूरत नहीं। बिठोवा ही मेरे माँ-बाप हैं; उन्हीं की कृपा से मैं शक्तिमान् और परम ऐश्वर्यशाली हूँ। राजन्, तुम कण्ठ में हरिनाम की माला धारण कर लो और श्रीहरि के नाम का सङ्कीर्तन करके जीवन का सुख और आनन्द प्राप्त करो।

सांसारिक चीज़ों पर तुकाराम का ऐसा विराग देखकर शिवाजी बहुत ही सन्तुष्ट हुए। जिस परम ऐश्वर्य के प्राप्त हो जाने से मनुष्य दुनिया के रत्नों की ढेरी को तुच्छ समझ सकता है उसी भक्ति-रत्न को प्राप्त करने के लिए वे तुकाराम के अनुगत हो गये। तुकाराम जब भक्ति से गद्गद होकर हाथ में करताल ले हरिनाम का सङ्कीर्तन करते तब उस कीर्तन को सुनने से लोगों का पाषाण जैसा कठोर हृदय भी पसीज जाता था। तुकाराम का सङ्कीर्तन सुनने के लिए शिवाजी कई दिन तक लोहागाँव में ठहरे।

उस समय तुकाराम ने एक नये कीर्तन की रचना की थी। उनके कीर्तन को सुनने से शिवाजी के जीवन में अद्भुत परिवर्तन हो गया। वे राज्य और सम्पत्ति को जलाञ्जलि देकर तुकाराम की भाँति जीवन बिताने का उद्योग करने लगे। छत्रपति शिवाजी ने देखा कि जिस महारत्न के मिल जाने से मनुष्य संसार के असार धन-रत्नों को एकदम तुच्छ समझने लगता है वह बड़ा भारी परम पदार्थ है! उस परम निधि को प्राप्त करने के लिए वे जङ्गल में चले गये और वहाँ दिन भर एकान्त में रहकर शाम को तुकाराम का कीर्तन सुनने आते थे। पुत्र के जीवन का यह भाव देखकर राजमाता जिजाबाई चिन्तित हुईं। राज्य और ऐश्वर्य छोड़कर शिवाजी संन्यासी हो जाय, यह विचार उन्हें असह्य जँचने लगा। उन्होंने देखा कि तुकाराम ही मेरे लड़के के वैराग्य

के मूल-कारण हैं। वे समझ गईं कि इसका उपाय तुकाराम के सिवा और कोई नहीं कर सकता। यह सोचकर जिजाबाई लोहागाँव में, तुकाराम की कुटी में, पहुँचीं और उनके चरणों पर माथा रखकर दुःखित हृदय से कहने लगीं—"मेरे लड़के ने घर-द्वार छोड़ दिया है,—वह मेरा एकलौता बेटा है, उसके अब तक कोई सन्तान-सन्तति नहीं है। मैं भीख माँगती हूँ, आप मेरे पुत्र को मुझे लौटा दीजिए।" यह कहकर शिवाजी की माता ने उनके आगे अपना अञ्चल फैलाया। तुकाराम ने उन्हें ढाढ़स बँधाकर कहा—आप किसी बात की आशङ्का न करें। ज्योंही आपका पुत्र आवेगा, मैं उसे उसका कर्तव्य समझा दूँगा। आप बिठोवा का भजन कीजिए, आपका सारा दुःख दूर हो जायगा।

शिवाजी दिन भर निर्जन अरण्य में रहकर शाम को सङ्कीर्तन सुनने के अनन्तर जब तुकाराम के समीप आये तब उन्होंने कहा—"महाराज, संन्यास छोड़कर क्षत्रिय के धर्म का पालन कीजिए। सम्मुख युद्ध में शत्रु का पराजय और प्रजा-पालन करना ही क्षत्रिय का धर्म है। गीता में लिखा है,—स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।" इस प्रकार तुकाराम ने शिवाजी के जीवन का कार्य उन्हें भली भाँति समझा दिया तब शिवाजी को चेत हुआ। अब उन्होंने फिर से राज-काज सँभाला। उनकी माता भी सुखी हुईं और कुछ दिन तक लोहागाँव में रहकर, सङ्कीर्तन सुनने के अनन्तर,

कृतज्ञता-पूर्वक तुकाराम की चरण-वन्दना करके पुत्र के साथ राजधानी को लौट गईं ।

५

तुकाराम का सङ्कीर्तन शिवाजी के हृदय में मानों सुधा बरसाने लगा। उनका सङ्कीर्तन राजा को बहुत ही पसन्द आया। एक बार शिवाजी कुछ दिनों तक सिंहगढ़ में जाकर ठहरे। यह स्थान पूना से साढ़े सात कोस पर है। किन्तु उनको सङ्कीर्तन सुनने की इच्छा इतनी प्रबल हुई कि वे उतनी दूर से तुकाराम का सङ्कीर्तन सुनने को पूना आया करते थे।

एक बार पण्ढरपुर में साधुओं का जमघट हुआ। महा-पण्डित शिवाजी के गुरु रामदास स्वामी भी वहाँ उपस्थित थे। इस सम्मिलन में तुकाराम की कथकता और सङ्कीर्तन सुनकर सभी मुग्ध हो गये। बहुत लोगों के अनुरोध करने पर उन्होंने इस समय अपने जीवन की घटना प्रकट की थी। परम भक्त तुकाराम किस प्रकार बाल्यकाल से अध्यात्म जीवन के मार्ग पर अग्रसर हुए थे, इसी का वर्णन उन्होंने कविता में किया था। उनके जीवन में क्रमविकाश की बात सुनकर सब लोगों ने समझा कि तुकाराम कितने ही सङ्ग्रामों के भीतर जाकर तब कहीं देवत्व के मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। सब लोगों ने समझ लिया कि तुकाराम असाधारण भक्त पुरुष हैं।

भक्त लोग अनेक अवसरों पर अभिनय आदि के द्वारा सर्वसाधारण के मन में भगवत्-लीला के मधुमय भाव को उद्बोधित करने का यत्न किया करते हैं। श्रीचैतन्य भी श्रीवास, हरिदास, नित्यानन्द और अद्वैताचार्य प्रभृति के साथ श्रीकृष्ण-लीला का अभिनय करते थे। तुकाराम ने भी श्रीकृष्णलीला का अभिनय किया था। एक अभिनय में तुकाराम बाल-गोपाल बने थे। उनके अन्यान्य भक्तों में से किसी ने नन्द और किसी ने यशोदा प्रभृति का वेष धारण कर अभिनय किया था। उनका अभिनय देखकर सभी विमुग्ध हो गये थे।

पार्लीगढ़ गाँव में शिवाजी ने रामचन्द्र के मन्दिर की प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में एक महोत्सव की तैयारी की। इसके लिए उन्होंने बहुत से भक्तों और साधु-महात्माओं को निमन्त्रण दिया। उस समय बहुतेरे साधु एकत्रित हुए। रामदास स्वामी ने भी महोत्सव में आकर कीर्तन आदि किया था। किन्तु तुकाराम का कीर्तन ही सबसे बढ़कर चित्ताकर्षक हुआ। उन्होंने एक महीने तक वहाँ रहकर सबके मन और प्राणों को शीतल किया था। उनके मधुर कण्ठ से निकली हुई पदावली की अपूर्व भाव-लहरी ने उत्सव को मधुमय बना दिया था। शिवाजी ने इस उपलक्ष्य में तुकाराम को सोना-चाँदी आदि और कई एक गाँव दान करने का निश्चय किया था। किन्तु किसी प्रकार इसका पता पाकर तुकाराम वहाँ से छिपकर चले गये। इसके लिए शिवाजी ने

रामदास स्वामी के आगे जब खेद प्रकट किया तब उन्होंने तुकाराम की अद्भुत भगवन्निष्ठा और धन-दौलत के प्रति उनकी उदासीनता का उल्लेख करके कहा कि वे चारों प्रकार की मुक्ति की भी कुछ परवा नहीं करते। क्रम से सभी लोग उनके गुणों का वर्णन करने लगे—उनका यश महाराष्ट्र देश भर में फैल गया। बहुतेरे मनुष्य उनके चेले हो गये।

देहू में दोल-यात्रा के समय बहुत-से वीभत्स काम होते थे। तुकाराम ने निर्मल हरिनाम की नदी बहाकर उन बुरे कामों से देश को बचाया था। एक बार दोल-यात्रा के अवसर पर (फाल्गुन कृष्ण २ शके १५७१) उन्होंने अपनी पत्नी और अन्य सब लोगों से कहा—"मैं वैकुण्ठ को जाऊँगा।" उनकी इस बात से सब ने समझा कि वे कहीं दूर देश को जायँगे। किन्तु यह तो उनकी महायात्रा थी। उन्होंने एक-एक कर पत्नी, आत्मीय स्वजन और शिष्य आदि सभी से विदा माँग ली। इस समय उन्होंने कितने ही अभङ्ग बनाये थे। विदा के समय उन्होंने मित्रों से जो कुछ कहा था उसका कुछ अंश यह है;—सबसे यह अन्तिम भेंट है, संसार का बन्धन इतने दिनों के पश्चात् कट रहा है। सबके चरणों में मेरी यही प्रार्थना है कि मुझ दीन पर सभी कृपा रखना। मित्रो, मैं अपने धाम को चला, सब लोग प्रेम से विट्ठल हरि रामकृष्ण का नाम लो।

इस प्रकार सबसे विदा माँगकर वे तुरत के बनाये हुए अपने अभङ्गों को गाते हुए आगे बढ़े। शिष्य लोग उनके

पीछे-पीछे चलने लगे। सभी को विश्वास था कि तुकाराम बाबा कहीं दूर देश को जा रहे हैं। यह किसी को भी न मालूम था कि ये अब थोड़ी ही देर में आँखों से ओभल होकर अनन्त धाम को चले जायँगे। तुकाराम भगवत् के नाम का गान करते-करते इन्द्रायणी नदी के किनारे पहुँचे और अपने इष्टदेव से अन्त समय की प्रार्थना करने लगे। कहा जाता है कि उस समय एक दिव्य ज्योति प्रकट होकर चारों ओर चमकने लगी। उस प्रकाश की तीव्र आभा में थोड़ी देर के लिए सभी की आँखों में चकाचौंध लग गई। अन्त में जब आँखें खुलीं तो क्या देखा कि तुकाराम अदृश्य हो गये हैं।

तुकाराम का वैराग्य, स्वार्थत्याग, धैर्य, आत्म-संयम और भगवत्प्रेम सदा नर-नारियों को उत्तम शिक्षा देगा। तुकाराम अनन्त समय तक भारत के श्रेष्ठ भक्तों में गिने जायँगे।

कबीर

१

रामानन्द के शिष्यों में कबीर ही विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए हैं। कबीर की साखियों के सिवा उनके जीवन की उल्लेख-योग्य घटना प्राप्त नहीं है। कबीर की जाति, कुल और जन्म के विषय में उनके चरित-लेखकों का एक मत नहीं है। किन्तु उनके जीवन की प्रधान-प्रधान घटनाओं के विषय में प्रायः कोई मत-भेद नहीं पाया जाता।

रामानन्द जिस समय युक्तप्रदेश की मथुरा नगरी में रहते थे उस समय एक ब्राह्मण अपनी विधवा बेटी के साथ उनके यहाँ गया। ब्राह्मण की बेटी को विधवा न समझ-कर रामानन्द ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। सो उनकी बात व्यर्थ न हुई। कहा जाता है कि इस पति-हीना बाल-विधवा के एक सन्तान हुई। उसने सोचा कि इस बात के प्रकट होते ही लोग निन्दा करेंगे। इस डर से उस बच्चे को वह लता-पत्तों में छिपाकर एक जङ्गल में फेंक भाग खड़ी हुई। इसी समय नूरी नामक एक जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ समीप ही कहीं न्यौते में जा रहा था। मार्ग में इस असहाय

बच्चे को इस दशा में देख वे दोनों दयालु होकर अपने घर उठा ले गये। पुत्र की तरह पाल-पोसकर उन्होंने उसका नाम कबीर रक्खा। चौदहवीं शताब्दी के मध्य भाग में कबीर उत्पन्न हुए थे। बचपन में कपड़ा बिनना सीखकर वे अच्छी आमदनी करने लगे। उनके माता-पिता ने बचपन में ही उनका विवाह कर दिया था। किन्तु उन्होंने विवाह करवाकर और भली भाँति द्रव्योपार्जन करने में समर्थ होकर भी दुनियादारी से उदासीन रहना आरम्भ कर दिया।

जिन्होंने भविष्यत् में धर्म के सबसे ऊँचे शिखर पर चढ़कर भारत के भगवत्प्रेमियों के बीच उच्च स्थान प्राप्त किया था, उनके धर्मजीवन की सूचना पहले से ही आरम्भ हो गई थी। वे अपनी आमदनी वैष्णवों और साधु-संन्यासियों के खिलाने-पिलाने में ख़र्च कर विशेष प्रसन्न होते थे।

कबीर जब व्यवसाय किया करते थे तभी उनके प्राण भगवान् से लौ लगाये हुए थे। धीरे-धीरे उनका मन दीक्षा लेने के लिए व्याकुल हो गया। उन्होंने रामानन्द से दीक्षा लेने का विचार किया। किन्तु रामानन्द का यह नियम था कि वे ब्राह्मण अथवा उच्च वर्णवालों के अतिरिक्त और किसी को शिष्य न करते थे। कबीर को यह बात मालूम थी, इसके लिए उन्होंने एक युक्ति से काम लिया। रामानन्द प्रति दिन बड़े तड़के उठकर मणिकर्णिका घाट पर स्नान करने जाते थे। कबीर ने क्या किया कि एक बार रात को नहाने के घाट पर

मुर्दे की तरह अकड़कर लेट रहे। रामानन्द नियमित समय पर सीढ़ियों पर पैर रखते हुए नीचे उतर रहे थे कि उनकी खड़ाऊँ कबीर के माथे से टकरा गई। उन्हें मुर्दा समझकर रामानन्द के मुँह से निकला—"राम कहो।" कबीर ने सोचा, रामानन्द के मुँह से जब रामनाम हमने सुन लिया तब हम उनके शिष्य हो ही गये। आशा पूर्ण हुई जानकर वे प्रसन्नतापूर्वक उठकर अपने घर चले आये। भक्त वैष्णवों की तरह सिर मुड़ाकर उन्होंने तिलक धारण कर लिया। अब वे राम-नाम के गान और ध्यान में ही समय बिताने लगे।

कबीर के माँ-बाप लड़के का यह परिवर्तन देख बिगड़कर कहने लगे—"अपना धर्म छोड़कर तुझे हिन्दू-धर्म की दीक्षा किसने दी?" कबीर ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"गुरु रामानन्द ने मुझे दीक्षा दी है, मैं उन्हीं का सेवक हो गया हूँ।" कबीर की यह बात सुनकर उनकी माता ने रामानन्द के पास जाकर बहुत ही चिढ़कर कहा—"मेरे लड़के को दीक्षा देकर तुमने उसकी जाति-पाँति क्यों नष्ट कर दी?" रामानन्द ने उसके लड़के की दीक्षा की बात सुनकर ज़रा मुसकुराकर कहा—"वह कौन है? मैं तो जानता नहीं, मैंने किसको शिष्य कर लिया है।" कबीर की माता ने इसका कुछ भी अर्थ न समझकर कबीर से रामानन्द की बात कही।

माता से यह बात सुनकर कबीर अपने दीक्षा-गुरु रामानन्द के पास पहुँचे और उनके चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम

करके उन्होंने दीक्षा लेने का वृत्तान्त कह सुनाया; फिर उनसे आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। कबीर की बातें सुनकर रामानन्द को उस दिन की घटना का पूरा-पूरा स्मरण हो आया। रामानन्द ने देखा, हमारे मुँह से रामनाम सुनकर कबीर हमारा शिष्य हो गया और रामभक्त बन गया है। इससे कबीर पर उनका प्रेम उमड़ पड़ा। उन्होंने उसी घड़ी कबीर को प्रेमपूर्वक गले लगाया और कहा—तुम मुसलमान नहीं हो; रामनाम में जब तुम्हारी इतनी निष्ठा है तब तो तुम ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ हो।

अब रामानन्द कबीर को भागवत प्रभृति शास्त्रों के वचन उद्धृत करके भक्ति का माहात्म्य सुनाने लगे। रामानन्द के शिष्य होकर कबीर अधिकांश समय अपने आराध्यदेव के नाम-गान और उनके चिन्तन में ही लगाते थे। रोज़गार पर उनका ध्यान जैसा-तैसा ही रहता था। इसके लिए माता-पिता उनको डाँटते-डपटते थे। इच्छा न रहने पर भी कबीर, माता के अनुरोध से, कपड़ा बिनकर बाज़ार में बेचने ले जाते थे। एक दिन एक थान बिनकर उसे बेचने के लिए वे बाज़ार में हाथ में लिये खड़े थे कि एक वैष्णव ने आकर उनसे वह थान सेंतमेंत में माँगा। कबीर उसे कपड़ा देकर छूँछे हाथ घर लौट गये। उस दिन उस कपड़े की बिक्री से ही परिवार-वालों के भोजन आदि की आवश्यक व्यवस्था होने को थी। किन्तु कबीर जब मुफ़्त में कपड़ा देकर ख़ाली हाथ घर लौट

आये तब उनकी माता बेटे की इस निर्बुद्धिता के लिए उसकी भर्त्सना करने लगी। माता की बात का उत्तर न देकर कबीर एकान्त स्थल में बैठकर भक्ति से चुपचाप रामनाम जपने लगे।

कहा जाता है कि उस समय कबीर के इष्टदेव, कबीर का रूप धारण करके, बैल की पीठ पर लादकर अनेक प्रकार की खाद्य-सामग्री ले आये और घर में रख दी। उसमें से वे साधुओं और भक्तों को प्रचुर परिमाण में दान करने लगे। यह देखकर कुछ ब्राह्मणों के मन में डाह हुआ। उन्होंने कबीर साहब को गालियाँ देकर कहा—जुलाहे को देखो तो, सिर्फ़ तिलकधारी वैष्णवों को दान कर रहा है, और हम ब्राह्मणों को कुछ भी नहीं देता। तुझे हम मार डालेंगे।

कबीर ने घर आकर सब कुछ देखा-सुना। वे समझ गये कि हमारे इष्टदेव रामचन्द्रजी गुप्त वेष धारण करके यह काम कर गये हैं। किन्तु लोगों को यही विश्वास था कि कबीर की ही असाधारण शक्ति के प्रभाव से उनके घर ये विविध वस्तुएँ आ गई हैं। अतएव ये विशेष गुणवान् हैं—यह समझ हो जाने से लोगों की श्रद्धा-भक्ति उन पर और भी बढ़ने लगी। चारों ओर कहा जाने लगा कि कबीर तो पहुँचे हुए महात्मा हैं।

साधु पुरुषों का गुण-गान करने से जिस प्रकार बहुत-से लोग अपने जीवन को धन्य समझते हैं उसी प्रकार उनका अपयश फैलाने में भी बुरी तबीअत के आदमी प्रसन्न होते हैं।

साधु पुरुष के रूप में जितनी ही कबीर साहब की कीर्ति बढ़ने लगी उतना ही ब्राह्मणों का ईर्ष्यानल उन पर अधिक बढ़ने लगा। उन लोगों ने बादशाह के यहाँ कबीर की नालिश कर दी। इन लोगों ने कहा—"कबीर मुसलमान होकर अपना धर्म छोड़ हिन्दू-देवता की पूजा तो करता ही है,—इसके सिवा यह निर्लज्ज एक वाराङ्गना का हाथ पकड़कर रास्ते में घूमता फिरता है, इत्यादि।" बादशाह ने इन अनेक अभियोगों को सुनकर कर्मचारियों को आज्ञा दी कि कबीर को हमारे आगे लाकर हाज़िर करो। कबीर साहब अदालत में लाये गये। क़ाज़ी ने उनसे बादशाह को सलाम करने के लिए कहा। इस पर कबीर ने कहा कि मैं संसार में एक राम को छोड़ और किसी के आगे मस्तक झुकाने को तैयार नहीं। बादशाह का ऐसा अपमान! क़ाज़ी को यह बात सहन न हुई। उसने क्रोध से आग-बबूला होकर क़ायदे से कबीर को सज़ा देने की आज्ञा दी। कहा जाता है कि पानी में डुबा देने के लिए वे दोनों पैर बाँधकर नदी में डाल दिये गये, और जला डालने के लिए उन्हें जलती हुई आग में पटक दिया गया। किन्तु इन दोनों ही विपन्न अवस्थाओं में उनका कुछ भी न बिगड़ा।

यवन भक्त हरिदास जिस प्रकार मुसलमान शासक-द्वारा अनेक प्रकार से सताये जाने पर भी मौत से बच गये थे उसी प्रकार बादशाह के हाथों कबीर की भी परीक्षा हुई। हरिदास ने जिस प्रकार जीते-जागते धर्म-विश्वास और भक्ति के प्रभाव

से परीक्षा में विजय प्राप्त की, तथा अपनी दृढ़ता और भक्ति का परिचय दिया उसी प्रकार कबीर ने भी धर्म-विश्वास का अद्‌भुत प्रभाव प्रकट करके सबको स्तम्भित कर दिया था। अद्‌भुत शक्ति का परिचय पाकर बादशाह सिकन्दरशाह ने उनके चरणों पर गिरकर क्षमा प्रार्थना की।

इन सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर कबीर और भी अधिकता से धर्मतत्त्व की आलोचना करने लगे। रामानन्द यद्यपि उनके दीक्षा-गुरु थे तो भी कबीर आँखें मीचकर सब प्रकार से उनके धर्म-मत का अनुमोदन न करते थे। समय-समय पर उनके साथ धर्म-विषय की आलोचना में कबीर दृढ़ता से उनके मत का प्रतिवाद भी करते थे। उन्होंने जिस राममन्त्र की रामानन्द से दीक्षा ली थी उन्हीं रामचन्द्र को कबीर नरदेह-धारी कोई अवतार न मानते थे। एक बार रामानन्द के साथ धर्म-प्रसङ्ग में कबीर ने उनसे पूछा—"महाराज, जीव का देहान्त होने पर आत्मा कहाँ जाती है? संसार-बन्धन से मुक्त होने का क्या उपाय है?" रामानन्द ने उत्तर दिया—"राम नाम लो, बस उसी से सब बन्धनों से छुटकारा हो जायगा।" रामानन्द की बात सुनकर कबीर ने कहा—वशिष्ठ ऋषि ने जिन रामचन्द्र का विषय वर्णन किया है और जिन्होंने वशिष्ठ को गुरु-पद पर अभिषिक्त किया था आप क्या उन्हीं राम की बात कहते हैं? वे नरदेह-धारी राम क्या मनुष्यों के परित्राता हो सकते हैं?

धीरे-धीरे कबीर का बुढ़ापा आया। उनके तिरोभाव का समय समीप आने लगा। शरीर छोड़ने के पूर्व उन्होंने अपने हिन्दू शिष्यों से कहा कि हमारी मृत देह को भस्म कर देना और मुसलमान शिष्यों से कहा कि इसे दफ़न कर देना। बस, वे एक चादर ओढ़कर लेट रहे। उन्होंने सदा के लिए आँखे मूँद लीं। मृत्यु हो जाने पर उनकी लाश के लिए हिन्दू और मुसलमानों के बीच विवाद होने लगा। हिन्दू लोग उनकी लाश जलाने और मुसलमान लोग दफ़नाने का प्रयत्न करने लगे। तब कुछ देर में एक व्यक्ति ने सबके आगे मृत देह के ऊपर से चादर खींच ली,—सबने देखा कि चादर के नीचे मृत देह तो नहीं है, एक फूल अवश्य रक्खा है। यह देखकर सभी को विस्मय हुआ। कुछ देर पहले हिन्दू और मुसलमानों के बीच जिस झगड़े का प्रारम्भ हुआ था वह इस फूल को देखते ही हट गया। उन्होंने परस्पर एक दूसरे को गले लगा-कर उस फूल का आधा-आधा हिस्सा ले लिया। काशी के राजा ने अपनी राजधानी में इस पुष्प के आधे हिस्से का क्रिया-कर्म किया। उस स्थान को अब कबीर-चौरा कहते हैं। फूल के आधे हिस्से को मुसलमानों ने गोरखपुर के समीप मगहर नामक गाँव में दफ़नाया। यह कबीरपन्थियों का एक प्रधान तीर्थ है।

कबीर का धर्म-मत बहुत ही उदार था। उनकी साखियों के पढ़ने से पता चलता है कि वे एकमात्र निराकार परमेश्वर

के ही उपासक थे। अभ्रान्त शास्त्र-वाद, गुरु-वाद और जाति-भेद मानव-समाज के लिए कल्याणकारक नहीं है, इसका उन्होंने विशेष रूप से अनुभव किया। इनके विरुद्ध उन्होंने बहुत-सी बातें कही हैं। उनकी अमूल्य उपदेश-पूर्ण साखियों के पढ़ने से यह बात विशेष रूप से समझ पड़ती है। वे जाति-पाँति की कुछ परवा न करके सभी को अपना शिष्य कर लेते थे।

स्वर्गीय अक्षयकुमार दत्त महाशय ने कबीर के उदार धर्म-नीति-विषयक मत का उल्लेख कर लिखा है,—

"कबीर-पन्थियों का नीतिशास्त्र बहुत ही संक्षिप्त है, किन्तु सरलता-पूर्वक उसके अनुसार आचरण करने से संसार का भला होने की ही सम्भावना है। वे कहते हैं, ईश्वर ने जीवन दिया है अतएव उस जीवन का अनिष्ट करना जीवों को उचित नहीं है। इसलिए दया एक प्रधान धर्म है, और सजीव शरीर का ख़ून बहाना घोरतर कुकर्म है। भले काम और एक प्रधान धर्मनीति चाहिए, क्योंकि मूलीभूत मिथ्या से ईश्वर-स्वरूप का अज्ञान और सांसारिक दुःख उत्पन्न हुए हैं। संसार से अलग रहना ठीक है, क्योंकि गृहस्थ आश्रम में आशा, भय और कामना आदि के द्वारा चित्त की शुद्धि और शान्ति की प्राप्ति में विघ्न होते हैं तथा नर और ईश्वर-विषयक विचारों में रुकावट पड़ती है। अन्यान्य हिन्दू उपासकों की तरह मनसा, वाचा, कर्मणा गुरु-भक्ति करना इनका प्रधान धर्म है। ये लोग

खोद-विनोद कर गुरु के मतामत और गुण-दोषों का विचार किये बिना उन्हें गुरु नहीं मान लेते। शिष्य का दोष हो तो गुरु उसकी भर्त्सना आदि कर सकते हैं किन्तु शारीरिक दण्ड देने का उन्हें अधिकार नहीं। शिष्य यदि इतने पर भी कुप्रवृत्ति का पीछा न छोड़े तो फिर गुरु उसकी बन्दगी लेना छोड़ दे। इससे भी कुछ लाभ न हो तो उसे बाहर निकाल दे। कबीर ने जप, पूजा और जाति-भेद आदि की निन्दा की है और संसार के दुःखमय स्वरूप का विशेष रूप से वर्णन करके भगवत्प्रेम में चित्त लगाने के लिए बार-बार उपदेश दिया है—

रेख रूप जेहि है नहीं अधर धरी नहिं देह।
गगनमँडल के मध्य में रहता पुरुष विदेह॥

जिसका न कोई वेष है और न जिसने कोई शरीर धारण किया है वह विदेह निराकार पुरुष मेरे हृदयरूप गगनमण्डल में सदा विराजमान है।

मसि कागद तो छुवा नहिं कलम गही नहिं हाथ।
चारिहु युगन महात्म जेहि करिके जनायो नाथ॥

भगवान् सदा बिना ही क़लम, स्याही अथवा काग़ज़ के केवल अपनी सृष्टि में होकर अपनी अद्भुत महिमा बतलाते हैं।

ऊँचे गाँव पहाड़ पर औ मोटे की बाँह।
ऐसो ठाकुर सेइए उबरिय जाकी छाँह॥

ऊँचे पहाड़ पर बसे हुए गाँव में जिस प्रकार आपत्तियाँ नहीं होतीं, बलवान् मनुष्य के आश्रय में रहने से जिस प्रकार कुछ डर नहीं रहता, उसी प्रकार ऐसे प्रभु की सेवा करो जिसकी आश्रय-छाया में ज़िन्दगी भर बेखटके रह सको।

साँचा सौदा कीजिए अपने मन में जानि।
साँचे हीरा पाइए झूठे मूरी हानि॥

हृदय में जिस सत्य का अनुभव हो उसी से वाणिज्य आदि करो, क्योंकि सत्य से ही रत्न मिलते हैं, मिथ्या से तो पूँजी भी चौपट हो जाती है।

साँचे शाप न लागियो साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै साँचे माहिं समाय॥

जो व्यक्ति सत्य के भरोसे रहता है उसका तनिक भी नुक्सान नहीं होता। न उसे किसी का शाप लग सकता है और न मृत्यु ही उसका विनाश करती है।

मधुर वचन है ओषधी कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै सञ्चरै सालै सकल शरीर॥

मधुर वचन ओषधि-स्वरूप हैं और कडुवे वचन पैने तीर हैं। ये कानों में हो, घुसकर, सारे शरीर को घायल कर दुःख देते हैं।

जेहि मारग गे पण्डिता तेही गाइ अहीर।
ऊँची घाटी राम की तेहि चढ़ि रहे कबीर॥

शास्त्रकार जिस मार्ग से गये हैं उसी मार्ग से संसार के और लोग भी जाते हैं, किन्तु कबीर उस पुराने रास्ते को छोड़ चारों ओर ईश्वर से घिरी हुई ऊँची घाटी पर जा बैठे हैं।

गुरु सीढ़ी तें ऊतरे शब्द विमूखा होइ।
ता को काल घसीटि है राखि सकै नहिं कोइ॥

ब्रह्मज्ञान-रूप सीढ़ी से जो व्यक्ति उतर आता है और विवेक-वाणी की ओर दुर्लक्ष्य करता है उसे मौत अवश्य ही पकड़ ले जायगी; उसे कोई बचा न सकेगा।

पाँच तत्त्व के भीतरं गुप्त वस्तु अस्थान।
विरल मर्म कोइ पाइ है गुरु के शब्द प्रमान॥

पञ्चभूतों से बनी हुई देह में वही गुप्त वस्तु (आत्मा) मौजूद है; केवल ईश्वर के प्रकाश से ही इस अद्भुत रहस्य का उद्घाटन किया जा सकता है और थोड़े-से मनुष्य ही इस काम के करने में समर्थ होते हैं।

जैसी लागी और की तैसी निबहै थोर।
कौड़ो कौड़ी जोरि कै पूज्यो लच्छ करोर॥

पहले हृदय में जितने धर्म-भाव का विकाश हो उसी को थोड़ा-थोड़ा ज़िन्दगी भर बढ़ाते रहो; कौड़ी-कौड़ी जोड़ते जाने से अन्त में लाखों रुपये एकत्रित हो जाते हैं।

साहब साहब सब कहैं मोहिं अँदेशा और।
साहब सों परिचय नहीं बैठेगा कहि ठौर॥

मुँह से ईश्वर का नाम सभी लेते हैं किन्तु मुझे यह सन्देह होता है कि ईश्वर से जिनका परिचय नहीं है उन्हें कहाँ आश्रय मिलेगा ?

साईं नूर दिल एक है सोई नूर पहिचानि ।
जाके करते जग भया सो बेचूँ क्यों जानि ॥

तुम्हारे हृदय में ईश्वर की ज्योति से भिन्न अन्य ज्योति नहीं है। तुम उस ज्योति के जानने की चेष्टा करो। जिसका बनाया हुआ यह असीम संसार है उसे किस प्रकार अज्ञेय कहते हो ?

पूरा साहब सेइए सब विधि पूरा होइ ।
ओछे नेह लगाइए मूलौ आवै खोइ ॥

जो व्यक्ति उस पूर्ण परमेश्वर के आसरे, रहता है उसके लिए सभी दिशाएँ पूर्ण हैं, किन्तु जो मन असार वस्तु में आसक्त है उसका मूल पाण्डित्य विनष्ट हो जाता है ।

मनका फेरत युग गया गया न मन का फेर ।
कर का मनका छोड़ कर मन का मनका फेर ॥

जप की माला फेरते फेरते ज़िन्दगी बीत गई, किन्तु हृदय शुद्ध न हुआ। इसलिए हाथ की माला को छोड़कर मन के दाने को घुमाओ।

गङ्गा फेरा हरद्वार का गुदड़ी लिया मन चार का,
भटका फिरा तो क्या हुआ जिन इश्क में सिर ना दिया ।
क़ाबा गया हाजी हुआ मन का कपट मेटा नहीं,
मन का कुफर टूटा नहीं क़ाबा गया तो क्या हुआ ?
हाजी हुआ तो क्या हुआ जिन इश्क में सिर ना दिया,
बोस्ताँ-गुलिस्ताँ पढ़ गया मतलब न समझा शेख़ का ।
आलिम हुआ तो क्या हुआ, फ़ाज़िल हुआ तो क्या हुआ,
जिन इश्क में सिर ना दिया ॥

जिसने हरिद्वार-वाहिनी गंगा तक पर्यटन किया, जो दो-चार मन की कथरी ओढ़े रहा और धोखे में पड़कर अनेक तीर्थों में घूमता रहा, किन्तु जिसने भगवत्प्रेम में अपना माथा नहीं सौंपा उसने क्या किया? जो व्यक्ति क़ाबे की हज्ज कर आया, हाजी हो गया, लेकिन जिसके मन से कपट का आसन दूर नहीं हुआ या कपट कमज़ोर नहीं हुआ उसके क़ाबा जाने से क्या हुआ और हाजी हो जाने से ही क्या हुआ ? जिसने गुलिस्ताँ और बोस्ताँ को तो रट डाला किन्तु शेख़ सादी के मतलब को नहीं समझा और भगवान् के प्रेम में सिर नहीं समर्पण किया उसका पाण्डित्य और पारदर्शिता किस काम की ?

पीतम की बातें लागीं मोहिं नीकी ।
कोटि यतन से कोई समझावे सबकी लागी मोहि फीकी ।
जल की मीन पलँग पर राखी ले अमृत-रस सींची ॥

तड़प तड़प तन तजत छनक में सुधि न रहे ओहि जी की ।
हीरा की परख जौहरी जानै चोट सहै सिर घन की ।।
स्वाती को स्वाद पपीहा जानै जाको चोट विरहन की ।
कहै कबीर जहाँ भाव बसत है सुद्ध रहे हर जन की ।।

एकेश्वर-वादी भगवद्भक्त कबीर का मत भारत में ख़ूब फैला हुआ है और उससे कुछ सम्प्रदाय भी उत्पन्न हुए हैं ।

नानक

१

पञ्जाब प्रदेश के अन्तर्गत लाहौर के समीप तालबण्डी नामक एक गाँव में, १४६९ शकाब्द में, गुरु नानक एक क्षत्रिय के घर उत्पन्न हुए। इनके पिता का नाम कालू था। कालू खेती किया करते थे। नानक जब छः वर्ष के हुए तब कालू ने उन्हें एक मास्टर के यहाँ पढ़ने को बिठाया। जो लोग भविष्यत् में तत्त्वज्ञान में समुन्नत होकर नर-नारियों को धर्म के मार्ग पर परिचालित किया करते हैं वे बचपन में ही अनेक अवसरों पर उसका प्रमाण दे दिया करते हैं। कहा जाता है कि जब नानक को मास्टर ने अक्षर पहचनवाना आरम्भ किया तब नानक ने उनसे कहा—"आप मुझे ऐसी शिक्षा दीजिए जिससे मेरा माया का बन्धन टूट जाय।" विद्यार्थी की यह बात सुनकर गुरु थोड़ी देर के लिए अचम्भे में आ गये, फिर सब के आगे उन्हें ज़रा सा धमकाकर कहा—"मास्टरी करते-करते मैं बूढ़ा हो गया, अब मैं जो कुछ कहता हूँ वह सुनो। मन लगाकर लिखना-पढ़ना सीखो; हमारे आगे ऐसी ढिठाई फिर कभी मत करना।" गुरु की यह बात नानक ने सिर

लिए थाली परोस लाईं। उस समय नानक एक भाव में विमुग्ध थे, इसलिए उन्होंने भोजन न करना चाहा। इससे माँ-बाप डर गये। उन्होंने सोचा कि लड़के को कुछ न कुछ पीड़ा हुई है। उसे चङ्गा करने के लिए वे वैद्य को बुला लाये। वैद्य जब नानक की चिकित्सा करने को तैयार हुआ तब उन्होंने कहा—"आप दवा देकर मुझे तो नीरोग करना चाहते हैं किन्तु आपके भीतर जो काम-क्रोध-रूप व्याधि मौजूद है उसे हटाकर क्या आपने अपनी आत्मा को स्वस्थ कर लिया है?" वैद्य ने नानक की बात पर विशेष ध्यान न देकर कहा—लाओ, ज़रा नाड़ी तो देखने दो; तुम्हारी नब्ज़ देखकर मैं तुम्हारे रोग को पहचानूँगा और उसके अनुसार दवा दूँगा जिससे तुम तन्दुरुस्त हो जाओ और भूख बढ़े।

नानक को तो कुछ शारीरिक रोग था ही नहीं जो वैद्य की दवा का सेवन करने से क्षुधा-मान्द्य नष्ट होकर शरीर सबल हो जाता। उनके प्राण तो भगवान् के बिछोह से व्याकुल थे। वैद्य की बात सुनकर नानक ने मुसकुराकर कहा—आपकी बातें ऐसी नहीं हैं जैसी कि हितैषी की होनी चाहिएँ। मेरे प्राण तो उस परम पिता परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो रहे हैं, भला मेरे लिए आप कौन सा उपाय करेंगे?

बालक के मुँह से ये बातें सुनकर वैद्यराज को बड़ा अचम्भा हुआ। ज़रा ठहरकर उन्होंने नानक के पिता को बुलाकर

कहा—आपका लड़का साधारण व्यक्ति नहीं है, इसकी बातें सुनने से मेरा मोहान्धकार हट गया ; यह बालक सिर्फ़ हँस-खेलकर ज़िन्दगी बिताने नहीं आया है। लोगों के दुःख देखने से इसके प्राण रो रहे हैं। भविष्यत् में आपका लड़का नर-नारियों को धर्म के मार्ग पर चलावेगा। जो इसके मन में हो, करने दीजिए—इसके काम में आप कुछ रोक-टोक न कीजिए।

२

यह लिखा जा चुका है कि नानक का जन्म क्षत्रिय-ख़ानदान में हुआ था। अब उनके जनेऊ का समय आया। इस शुभ काम के लिए कालू ने मुहूर्त के दिन अनेक पण्डितों और नातेदारों को निमन्त्रण दिया। सबके आने से कालू के घर ख़ासी भीड़ हुई। जनेऊ के समय जब पण्डितजी नानक के गले में जनेऊ पहनाने को उद्यत हुए तब गुरु से नानक जनेऊ की अनावश्यकता पर विवाद करने लगे। उन्होंने कहा—"गुरुजी, जनेऊ पहनने से कुछ फ़ायदा नहीं होता। क्या सिर्फ़ जनेऊ पहन लेने से ही मनुष्य का चित्त विशुद्ध हो जाता है ? इन बाहरी आडम्बरों में मनुष्य व्यर्थ दिन गँवाते हैं और जिनके गले में जनेऊ नहीं है उन्हें कर्म-काण्ड करने का अनधिकारी बताकर समाज दूर कर देता है।" नानक की ये बातें सुनकर आचार्य ने कहा—"बेटा, इन बातों का उत्तर हम नहीं दे सकते, बहुत दिनों से यह रीति

चली आ रही है; तुम अब वृथा बातें न करके जनेऊ पहन लो।" किन्तु नानक ने इसे अस्वीकार करके कहा—प्रेम की तत्त्वरचना करके सत्य और संयम की गाँठ लगाकर उसे गले में पहन लो; इसी से मन की मलिनता दूर होगी—स्वर्ग के आलोक से मन और प्राण पूर्ण हो जायँगे—संसार के किसी आघात से वह गाँठ न खुलेगी।

इस पर आचार्य ने कहा—"तुम्हारी बातें सब ठीक हैं, परन्तु इस काम के लिए बहुत-से लोग न्यौता देकर बुलाये गये हैं। अब तुम यदि जनेऊ न पहनोगे तो ये सभी नाराज़ होंगे और खिन्न होकर अपने-अपने घर को लौट जायँगे। यह अच्छा नहीं है।" नानक समझ गये कि बात सही है, किन्तु फिर भी उन्होंने निडर होकर कहा—"कुछ भी हो, मैं जनेऊ न पहनूँगा।" आचार्य के साथ इस प्रकार वाद-विवाद हो ही रहा था कि नानक की माता ने आकर बेटे को जनेऊ पहन लेने की आज्ञा दी। ऋषियों का कथन है कि सब गुरुओं के बीच माता ही परम गुरु है। पञ्जाब के भविष्यत् धर्म-गुरु को यह बात मालूम थी। वे माता की बहुत अधिक भक्ति करते थे; इसी कारण माता की आज्ञा को न टाल सके। उन्होंने जनेऊ पहन लिया। लोग समझ गये कि जनेऊ पहनने की कुछ ज़रूरत नहीं है।

इस प्रकार प्रायः तीन वर्ष बीत गये। नानक उदासीनता से समय बिताने लगे और प्रायः स्थिर होकर उस विश्वपति

परमेश्वर के ध्यान में लगे रहते थे। पिता ने यह देखकर एक दिन उनसे कहा—"देखो नानक, हमारे खेतों को यदि तुम आबाद करो तो बहुत अच्छा हो। अब हमें इस काम में तुम्हारा ही भरोसा है। काम करने लगोगे तो लोग तुम्हें भी निठल्ला न कहेंगे और हमें भी आराम मिलेगा।" पिता की बातों को शान्ति-पूर्वक सुनकर नानक ने कहा—मैंने जो ज़मीन आबाद की है वह बहुत लम्बी-चौड़ी है। वहाँ मैंने इष्ट-मन्त्र का बीज बोया है—इसमें जो फ़सल होगी उसका भण्डार अटूट होगा। मेरी खेती में जो रत्न फलेगा उस रत्न को पाने से ही मनुष्य अनन्त शान्तिमय जीवन को प्राप्त करेगा।

ये बातें सुनकर कालू ने कहा—"अब मैंने समझ लिया कि तुम खेती नहीं करना चाहते। जो हो, तुम परदेश में कोई दूकान खोलो। इसमें मुनाफ़ा भी होगा और लोग जो तुम्हें आलसी कहते हैं सो उस निन्दा से भी तुम्हारा छुटकारा होगा। इससे हमें भी सुख होगा।" जब धन कमाने की चर्चा छिड़ती तब नानक सर्वदा इसी प्रकार आध्यात्मिक अर्थ का ही उत्तर देते थे। अब दूकान खोलने का प्रस्ताव होने पर नानक ने कहा—इस संसार में चारों ओर मेरी ही दूकानें हैं। बाज़ारू दूकानों की तरह मैंने उनमें असार चीज़ें नहीं भर रक्खी हैं; स्वर्ग की विवेक और वैराग्य प्रभृति चीज़ें मैंने अपनी दूकानों में सजाकर रख ली हैं।

जो लोग इन चीज़ों को लेंगे वे अनायास ही इस भवसागर से पार होकर शान्तिमय स्वर्ग-राज्य में जा पहुँचेंगे।

कालू ने नानक की बातों से चिढ़कर कहा—"मालूम होता है, तुम्हें दूकान में बैठना भी भला नहीं लगता—तुममें यह हिम्मत भी नहीं है।" अब और कुछ लाभजनक कामों का उल्लेख करने पर उनमें भी नानक की सम्मति न मिली। इससे प्यारे लड़के से पिता ने कुछ रुखाई के साथ कहा—"जो तुम कुछ काम-धन्धा न करोगे तो क्या घर में बैठे-बैठे समय गँवाओगे? मैंने तुमसे जिन कामों की चर्चा की है वे यदि तुम्हें भले नहीं लगते हैं तो मैं एक और काम बतलाता हूँ, शायद वह तुम्हें अच्छा लगे। मुझसे तुम कुछ पूँजी ले लो और परदेश में जाकर व्यापार करने लगो। इस बहाने अनेक देश देखने से तुम्हारा मन बहलेगा और अच्छी तरह रोज़गार करने से मुनाफ़ा भी होगा।" पिता के बार-बार अनुरोध करने पर अन्त में नानक ने उनकी बात मान ली। कालू ने प्रसन्न होकर व्यापार करने के लिए नानक को बीस रुपये दिये। पिता की आज्ञा मानकर नानक बीस रुपये ले विदेश में व्यापार करने चले। बाला नामक एक नौकर उनके साथ गया।

ये लोग अपने गाँव से चलकर कोई छः मील आगे गये होंगे कि इन्हें समीप ही घने पत्तों से ढका हुआ एक निकुञ्ज वन देख पड़ा। रास्ता चलने से ये थक गये थे इसलिए इस वन में विश्राम करने को गये। उस लता-कुञ्ज से घिरे

हुए वन में कुछ साधु-संन्यासियों के साधन-भजन करने का स्थान था। नानक ने इन साधुओं को देखकर समझा कि मानो वे मनुष्य मिल गये जिनकी हमें चाह थी। इससे प्रसन्न होकर वे उन साधुओं के समीप गये। कोई मृग-छाला पर बैठा हुआ ध्यान कर रहा था, और कोई ऊपर को हाथ उठाये भजन कर रहा था। इस प्रकार वहाँ सभी लोग भगवान् की प्राप्ति के लिए साधना कर रहे थे। नानक मन ही मन में भगवान् की आराधना के विशेष पक्षपाती थे। बाहरी साधन के प्रति वे उदासीनता प्रकट किया करते थे। उन्होंने जनेऊ के अवसर पर आचार्य को जनेऊ पहनने की अनावश्यकता बताकर जैसी निर्भीकता प्रकट की थी उसी प्रकार इन तपस्वियों के बाहरी अनुष्ठान का उल्लेख करने में भी उन्होंने कुछ कसर नहीं रक्खी। इनकी देह में भस्म लगी हुई थी, ऊपर को हाथ उठाये रहकर कोई-कोई हाथ की स्वाभाविक शक्ति को नष्ट कर रहा था;—इन बातों का उल्लेख करके नानक ने कहा—"इन कामों के द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती, भगवान् की प्राप्ति तो हृदय से होती है अर्थात् उन्हें प्राप्त करने के लिए हरदम मन में उनका ध्यान करना होता है।" तपस्वियों ने उत्तर दिया—"भीतरी दुर्दम-नीय शत्रुओं को वश में रखने के लिए शरीर को क्लेश देने की आवश्यकता है।"—इस प्रकार उनके साथ थोड़ी देर तक वार्तालाप होने पर नानक ने पिता के दिये हुए धन-द्वारा

उनकी सेवा करने की अभिलाषा प्रकट की और कुछ भोजन-सामग्री अर्पण कर देने के लिए उनकी अनुमति माँगी। इससे उन लोगों ने प्रसन्न होकर कहा कि अपनी इच्छा से यदि कोई हमें कुछ खाने-पीने की चीज़ें दे देता है तो हम लोग ले लेते हैं। नानक ने अपने साथी बाला से पूछा कि पिताजी के दिये हुए रुपयों से हम इन लोगों के खाने के लिए क्या-क्या चीज़ें लावें। बाला ने उत्तर दिया—"आप जिन चीज़ों को पसन्द करें, वही ला सकते हैं; और इच्छानुसार द्रव्य ख़र्च कर सकते हैं।" तब नानक ने बाला से बीसों रुपये लेकर उनके विनिमय में अनेक प्रकार की खाद्य-सामग्री ख़रीदी और तपस्वियों को भर-पेट भोजन कराया। उन्होंने भी नानक की स्वाभाविक भगवन्निष्ठा, सरलता और हृदय की उदारता देख विमुग्ध होकर दाता को हृदय से आशीर्वाद दिया।

अब हाथ में रुपये नहीं थे। व्यवसाय किस प्रकार हो? इसलिए बाला के साथ नानक घर को लौट गये और पिता को बतला दिया कि आपने हमें जो रुपये दिये थे उन्हें हम साधु-सेवा में ख़र्च कर आये। इससे कालू ग़ुस्से को न रोक सके। उनकी आँखें सुर्ख़ हो गईं। क्रोध के मारे वे नानक को पीटने के लिए तैयार हुए। यह देखकर नानक की बहन नानक को पकड़ ले गई। उसने पिता से शान्त होने के लिए कहा। अन्त में भाई का यह वैराग्य भाव देखकर बहन उसे अपनी ससुराल ले गई। नानक का बहनोई नवाब के

यहाँ नौकर था। कुछ दिन में उसने नानक को नवाब के परिवार का भण्डारी बनवा दिया। वह भाण्डार, जो नानक को सौंपा गया, साधारण न था। उसमें सब प्रकार की वस्तुएँ और कपड़े मौजूद रहते थे। बहनोई की सिफ़ारिश से नानक उक्त पद पर नियुक्त होकर दीन-दुखियों को भाण्डार से दाल, चावल आदि चीज़ें वितरण करने लगे। अब क्या था, सर्वत्र उनकी उदारता की चर्चा होने लगी। प्रति दिन बहुतेरे दरिद्र व्यक्ति, अन्न-वस्त्र पाने की आशा से, नवाब के महलों में आ जाते थे। नानक भी दिल खोलकर उन्हें यथायोग्य वस्तुएँ देते और यह समझकर प्रसन्न होते कि हम तो भगवान् का काम करते हैं। कुछ समय बीतने पर यह बात नवाब ने भी सुनी, तब उसने नानक को बुलवाया। नानक और अन्यान्य कर्मचारी हिसाब का बही-खाता लेकर नवाब के यहाँ पहुँचे। जाँच करने पर मालूम हुआ कि नानक के हिसाब में हज़ार रुपये की भूल है। इसलिए उनपर मुक़द्दमा चलाया गया। किन्तु नानक के हृदय की उच्चता देखकर नवाब विस्मित हो गया। उसने उनको फिर उसी पद पर बहाल करके काम करने की आज्ञा दी; किन्तु नानक ने जीवन के प्रधान काम को पूर्ण करने के लिए, हमेशा को, काम-काज से हाथ खींच लिया।

इससे पहले ही पिता ने पुत्र के मन की गति को बदलने के लिए उसका विवाह कर दिया था। श्रीचन्द और लक्ष्मी-

चन्द नामक उनके दो पुत्र हो गये थे, किन्तु नानक के प्राण इन बन्धनों के बन्दी नहीं हुए। उन्होंने जिस महान् उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए जन्म ग्रहण किया था उसके निमित्त वे अब घर-गृहस्थी छोड़कर संन्यासी की तरह चल खड़े हुए।

३

श्रीभगवान् का भजन करने के लिए नानक घर-द्वार छोड़कर संन्यासी के वेश में निकल पड़े। बाला और मर्दाना नामक दो व्यक्ति उनके साथ हो लिये। बाला उनकी सेवा करता था और सुगायक मर्दाना, मधुर भजन गा-गाकर, गुरु के मन को शीतल करता था। वे लोग चारों ओर के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखते हुए आगे बढ़ने लगे। बाबा नानक का चित्त नर-नारियों के दुःख से कातर था; इस चिन्ता से भी वे बेचैन हो जाते थे कि मनुष्य श्रीभगवान् को भूले हुए हैं। इसलिए वे जहाँ जाते वहीं, किसी की जाति और धर्म की परवा न करके, सभी से कहते—"भाइयो, उन निराकार प्रभु परमेश्वर की पूजा करो—उनके सिवा और कोई मोक्ष नहीं दे सकता।" सुना जाता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्मशास्त्र का उन्हें ख़ासा ज्ञान था। इसलिए वे हिन्दुओं के आगे हिन्दूशास्त्र से और मुसलमानों के सामने उनके धर्मशास्त्र से प्रमाण दे-देकर यह प्रतिपादन किया करते थे कि निराकार परमेश्वर की पूजा ही परम पुरुषार्थ है और उन्हीं

के गुणों का गान करने से मनुष्य के हृदय में शान्ति की वर्षा होती है। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी नानक को अलौकिक पुरुष समझकर उन पर हृदय से श्रद्धा भक्ति करते थे।

रास्ता चलते-चलते वे भर्तृहरि नामक योगी के आश्रम में पहुँचे। भर्तृहरि पहले राजा थे किन्तु पञ्जाब देश के परम-साधु और योगी गोरखनाथ के उपदेश से उन्होंने राज-पाट छोड़कर मोक्ष-मार्ग ग्रहण कर लिया था। उनके आश्रम में जब बाबा नानक पहुँचे तब उनके मुख की अपूर्व ज्योति देखकर भर्तृहरि विमुग्ध हो गये। उन्होंने बाबा नानक का परिचय जानना चाहा। बाला से गुरु का परिचय पाकर भर्तृहरि ने कहा—"इनका नाम तो मैं पहले ही सुन चुका हूँ।"—अब वे नानक के साथ धर्म की चर्चा करने लगे। भर्तृहरि ने नानक से कहा—"गुरुजी, मन को वश में करने के लिए मैं हठयोग करता हूँ, किन्तु उससे यह नहीं मालूम होता कि मैं माया के बन्धन से मुक्त हो गया हूँ। हृदय की शुष्कता भी दूर नहीं होती। अब आप मुझे सदुपदेश देकर उस परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय बता दीजिए।" गुरु नानक हठयोग आदि क्रियाओं के पक्षपाती न थे। वे कहते थे कि सरल विश्वास और भक्ति के द्वारा हमें सदानन्दमय परम सुन्दर परमेश्वर की हृदय में प्राप्ति हुई है और इन्हीं दोनों की सहायता से और लोग भी उनको प्राप्त कर सकते

हैं। योगी भर्तृहरि को उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—"मनुष्य की रक्षा करने के लिए भगवान् ने भक्तियोग का विधान किया है। आप भक्तिमार्ग पर चलकर भगवान् के नाम का कीर्तन कीजिए, इससे प्राण सरस हो जायँगे, और जीवन मधुमय होगा।" उन्होंने और भी कहा—"भक्तिमार्ग को ग्रहण करने से वह निरञ्जन पुरुष प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा ज्ञान भी ख़ूब उज्ज्वल हो जायगा; भक्ति से लिये गये श्रीभगवान् के नाम का मधुर शब्द, वीणा की ध्वनि की भाँति, कानों में प्रवेश करके जीवन को आनन्द से परिपूर्ण कर देगा। भगवान् का नाम-कीर्तन करना ही सच्ची उपासना है—भगवान् के भक्त इसकी साक्षी दे गये हैं।" बाबा नानक ने जब इस प्रकार भर्तृहरि के आगे भक्ति की मधुरता का वर्णन किया तब भर्तृहरि के प्राण शीतल हो गये। उन्होंने हाथ जोड़कर नानक की प्रशंसा की और उन्हें भक्ति के साथ प्रणाम किया। बातचीत हो चुकने पर नानक अपने साथियों-समेत अन्यत्र जाने के लिए प्रस्तुत हुए तब भर्तृहरि ने उनसे और उनके शिष्यों से और भी कुछ दिन तक वहीं रहने का आग्रह किया। किन्तु नानक ने इसे अस्वीकार करके कहा—"आपके साथ फिर भेंट होगी, अभी जाने दीजिए।" वे, दोनों शिष्यों के साथ, पर्यटन करने को चले गये।

अनेक स्थानों में घूमते-घामते हुए वे विश्वम्भरपुर नामक स्थान में पहुँचे। कहा जाता है कि नानक को यहाँ मिट्टी

खोदते समय एक हीरा मिल गया था। एक बार उन्होंने मर्दाना को यह हीरा देकर गाहक की खोज में उसे बाज़ार भेजा। वहाँ पर सालस राय नामक एक प्रसिद्ध व्यापारी था। हीरा लेकर मर्दाना उसी की दूकान में गया। सालस राय ने इस क़ीमती हीरे को देख मर्दाना को सौ रुपये पेशगी देकर उसकी ठीक-ठीक क़ीमत पूछी। मर्दाना ने कहा—"मैं इस समय इसका ठीक-ठीक मूल्य नहीं बतला सकता, अपने मालिक से पूछकर बतलाऊँगा।" वह सौ रुपये लेकर नानक के पास हीरे की क़ीमत पूछने गया। उसने सालस राय के दिये हुए सौ रुपये गुरु के आगे रख दिये। नानक ने कहा—"यह हीरा अमूल्य है; इसे सालस राय न ले सकेगा। तुम अभी जाकर उसका बयाना लौटा दो।" मर्दाना लौटकर सालस राय के पास गया और गुरु का उत्तर सुनाकर उसे बयाना लौटा दिया। सालस राय ने कहा—"तुम्हारे मालिक हीरे को बेचें चाहे न बेचें, मैंने तो नज़राने के तौर पर ये सौ रुपये दिये हैं, अब इन्हें वापिस नहीं ले सकता।" किन्तु मर्दाना उसकी बात न मानकर रुपये वहीं रखकर चला गया। मर्दाना के चले जाने पर सालस राय ने सोचा कि जिसने हमारे इतना कहने पर भी रुपये नहीं लिये वह संन्यासी मालूम होता है। इसके मालिक को एक बार देखना चाहिए कि कैसा पुरुष है। बस, वह कई प्रकार की मिठाइयाँ और फल-फूल लेकर नानक

के स्थान पर गया। वहाँ क्या देखा कि एक सुन्दर पुरुष आँखें मूँदे बैठा है, उसके मुख से एक अपूर्व ज्योति निकल रही है। और जो हीरा बेचने गया था वह उनके समीप बैठकर मधुर स्वर में श्रीभगवान् के नाम का कीर्तन कर रहा है। अब सालस राय ने समझ लिया कि इस ध्यान-निमग्न व्यक्ति ने ही बिक्री के लिए हीरा भिजवाया था। यह साधारण मनुष्य नहीं है—यह संसारी व्यापारी नहीं है; यह तो धर्म-धन का धनिक है। जब नानक ने आँखे खोलीं तब सालस राय ने माथा टेककर उन्हें प्रणाम किया। अन्त में हीरे की चर्चा छिड़ने पर नानक ने उसे समझा दिया कि एक-मात्र निराकार परमेश्वर ही जगत् के मणि-माणिक्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, और जो उसको प्राप्त कर ले वही व्यक्ति सच्चा धनवान् है; वही परम सुखी है। सालस राय आगे चल कर बाबा नानक के उपदेश से धर्म-धन का भी धनवान् हो गया था, और उन्हें गुरु बनाकर उन्हीं के सम्प्रदाय में आ गया था।

४

विश्वम्भरपुर से चलकर बाबा नानक अपने शिष्यों के साथ बहुतेरे देशों और नगरों में अपने मत की घोषणा करते-कराते मुसलमानों के तीर्थ मक्के में पहुँचे। यद्यपि हज़रत मुहम्मद साहब ने एक ईश्वर की ही घोषणा की थी, फिर भी

नानक ने देखा कि वहाँ पर बहुत-से मुसलमान मूर्त्ति-पूजा और अनेक प्रकार के कुसंस्कारों से अपना उद्धार करने में समर्थ नहीं हुए हैं। उस समय गुरु नानक के साथ वहाँ के मुसलमानों ने धर्म-सम्बन्ध में बहस की थी। मक्के से चलकर वे मदीने को गये। यहाँ पर हज़रत मुहम्मद की क़ब्र है। नानक साहब रात को उस क़ब्र की तरफ़ पैर पसारे सो रहे थे। एक कट्टर मुसलमान यह देखकर उनके समीप आया और क्रोध से उनकी लानत-मलामत करने लगा। वह उत्तेजित होकर कहने लगा—"इसे मार डालो; पीटकर निकाल दो।" नानक ने बड़ी शान्ति के साथ कहा—"तुम मेरे पैरों को उस तरफ़ कर दो जिस तरफ़ भगवान् न हों।" यह बात सुनकर वे लोग अकचकाकर रह गये। फिर भी कुछ मुसलमानों ने बाबा नानक के पैर पकड़कर दूसरी ओर को कर दिये। कहा जाता है कि इस प्रकार वे लोग जिस-जिस तरफ़ को बाबा नानक के पैर घुमाने लगे उसी-उसी ओर मुहम्मद की क़ब्र देख पड़ने लगी। अन्त में जब उन्हें निश्चय हो गया कि बाबा नानक कोई सिद्ध पुरुष हैं तब वे उत्पात करना छोड़ वहाँ से चलते हुए।

मक्के और मदीने से चलकर नानक बाबा अनेक स्थानों में प्रभु का गुणगान करते हुए अन्त में सैदपुर नामक गाँव में अपने किसी शिष्य के घर जाकर ठहरे। कहा जाता है कि उस समय मुग़ल बादशाह बाबर, भारत को जीतने के लिए,

काबुल होता हुआ बहुतों का विनाश करता और बहुतों को कारागार में डाल रहा था। दैवयोग से नानक ज्योंही अपने शिष्य के घर पहुँचे त्योंही मुग़ल-सिपाही आकर नानक, बाला, मर्दाना और घर के अन्यान्य सभी लोगों को बन्दी बनाकर ले गये। रास्ते में जाते-जाते मर्दाना रवाब बजाने लगा और बाबा नानक प्रेमोन्मत्त व्यक्ति की भाँति हरिगुण-कीर्तन करते हुए जाने लगे। जब वे गन्तव्य स्थान में पहुँच गये तब सेनापति ने सभी को बन्दी करके मज़दूरी के काम में लगा दिया। किन्तु बाबा नानक के मुखमण्डल से ईश्वरी शक्ति का परिचय पाकर बादशाह के किसी सैनिक पुरुष ने बाबर के पास जाकर बड़ी नम्रता से कहा—"जहाँपनाह, अभी-अभी जो लोग कैद किये गये हैं उनमें एक संन्यासी हैं; वे सदा प्रसन्न रहते हैं—भगवान् के नाम का जप करते हैं। मैंने दूसरी विचित्रता यह देखी है कि और सब लोग तो गेहूँ पीस रहे हैं, किन्तु उक्त बाबाजी हाथ से चक्की नहीं चलाते, वह अपने आप चलती है और गेहूँ पिसते जाते हैं।" संन्यासी की भगवद्भक्ति और अलौकिक कार्य की ख़बर पाकर बादशाह ने उन्हें अपने पास बुलवाया। अब नानक बाबा वहाँ हाज़िर किये गये। उन्होंने बादशाह को कैदियों के कष्ट का हाल सुनाकर उन्हें रिहा कर देने के लिए कहा और थोड़ी देर में स्वयं समाधिस्थ हो गये। बाबा नानक के चेहरे पर उस समय एक अपूर्व ज्योति देखकर बाबर ने उन्हें सच्चा भगवद्भक्त समझ लिया। नानक

की समाधि टूटने पर बादशाह ने उनकी बात मानकर कैदियों को छोड़ दिया।

बाबा नानक सैदपुर से काश्मीर और बग़दाद होते हुए दरबेलात नामक शहर में पहुँचे। यहाँ पर उनके प्रिय शिष्य सुगायक मर्दाना का शरीरान्त हो गया। नानक ने अन्त समय पर उसके पास रहकर उसे आशीर्वाद दिया था। उसका देहान्त होने पर नानक ने बाला से कहा—"परमेश्वर ने इस पर बड़ी दया की थी।" अन्त में जब मर्दाना की अन्त्येष्टि-क्रिया हो चुकी तब बाबा नानक बाला के साथ कर्त्तार-पुर आये। कहा जाता है कि यहाँ पर उन्हें भगवान् की आज्ञा हुई कि वैराग्य के कपड़े पहने रहकर स्त्री-पुत्र आदि के साथ रहें। लगातार अठारह वर्ष तक भारत के अनेक स्थानों में घूमने-फिरने से यद्यपि उनके पहनावे में कुछ अन्तर पड़ गया था, किन्तु उनके भीतर का वैराग्य, भगवत्प्रीति, देश-पर्यटन और धर्म-प्रचार करने की प्रबल वासना तनिक भी कम न हुई थी। कुछ दिनों तक घर-गृहस्थी में रहकर वे फिर बाला को साथ ले देश-भ्रमण करने चले। इस यात्रा के समय वे काशी, वृन्दावन प्रभृति तीर्थों का परिदर्शन करके श्रीजगन्नाथपुरी को गये। जगन्नाथजी के दर्शनों के सम्बन्ध में उनका चरित कहनेवालों ने एक घटना का उल्लेख किया है। सायङ्काल के समय जब बाजों की ध्वनि के साथ जग-न्नाथजी की आरती हो रही थी, जब सैकड़ों उपासक खड़े

होकर भक्ति से हाथ जोड़े हुए अपने उपास्य देव की ओर देख रहे थे तब नानक बाबा मन्दिर के बाहर बैठे हुए अपने उपास्य देव उसी चिन्मय परमेश्वर के ध्यान में निमग्न थे। एक पण्डा ने नानक को इस समय इस अवस्था में बैठे देखकर कहा—"अरे आरती के समय तुम यहाँ बैठे हो!" नानक ने उसे उत्तर दिया—"जो आरती बाहरी आडम्बर से की जाती है उसे मैं सच्ची आरती नहीं मानता; जो आरती हृदय से की जाती है वही सच्ची आरती है; तुम्हारे मन्दिर में जिस देवता की आरती हो रही है वे जगत् के नाथ (स्वामी) नहीं हो सकते। संसार का स्वामी (जगन्नाथ) तो वह निराकार विश्व-व्यापी परमेश्वर ही है। उसकी आरती हृदय से ही हो सकती है।" बाबा नानक का धर्मभाव और यह महान् वाक्य सुनकर पण्डा कुछ उत्तर न दे सका। उसी समय परम भगवद्भक्त नानक ने यह मनोहर उच्च भावोद्दीपक भजन बनाया था;—

राग धनासरी महला १

गगन-मय थाल रवि-चन्द दीपक बने,
तारकामण्डल जनक मोती।
धूप मलयानलो पवन चँवरो करै,
सकल बनराइ फूलन्त जोती॥
कैसी आरती होइ भव खण्डना तेरी
आरती अनहता शब्द बाजन्त भेरी॥रहाऊ॥

सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कोउ,
सहस मूरत नना एक तोही ॥
सहस पद विमल नन एक पद गन्ध बिन
सहस तव गन्ध इव चलत मोही ।
सब महँ जोति जोति है सोई ।
तिस दे चांनण सब महिं चानण होई ॥
गुर साखी जोति परगट होइ ।
जो तिसु भावै सो आरति होई ॥
हरिचरन-कमल मकरन्द लोभित मनो,
अनदिनो मोहि आहि पिआसा ।
कृपाजल देह नानक सारिङ्ग कहँ,
होइ जाते तेरे नाइ बासा ॥

पुरी में बहुतेरे मनुष्य उनके चेले होकर उनके बताये हुए मार्ग पर चलने लगे। इस प्रकार कुछ दिनों तक भ्रमण करके वे बाला के साथ फिर कर्त्तारपुर को लौट गये।

५

जिनका मन नर-नारियों को कुसंस्कार के पञ्जे से छुड़ाकर विशुद्ध धर्म की ओर लाने के लिए व्याकुल होता है वे कभी घर में आराम से नहीं बैठ सकते। नानक कुछ दिनों तक कर्त्तारपुर में स्त्री-पुत्र आदि के बीच रहकर फिर देश-भ्रमण करने निकले। पहले वे बाला के साथ दिल्ली को गये।

वहाँ मुग़ल बादशाह बाबर के हुक्म से बहुत-से लोग जेलख़ाने में क़ैद कर लिये गये थे; गुरु नानक इस बार भी बाला के साथ बन्दी हुए। जेलख़ाने के अफ़सर ने देखा कि एक नानक को छोड़ और सभी क़ैदी बड़ी उदासी से दिन बिता रहे हैं। नानक का भाव देख उसने चमत्कृत हो बादशाह के पास जाकर कहा—"एक संन्यासी क़ैद किया गया है, वह सदानन्द पुरुष है; जेलख़ाने में भगवान् का भजन और ध्यान किया करता है।" तब बादशाह ने नानक को अपने पास बुलवाया। गुरु नानक से जब बादशाह ने धर्म-चर्चा छेड़ी तब नानक ने कहा—"मनुष्य को एकमात्र परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिए, वे तो निराकार और अद्वितीय हैं।" बाबर ने पूछा—"इस संसार में तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किसके चेले हो?" नानक ने कहा—"वह जगत् का एकमात्र प्रभु परमेश्वर ही मेरा गुरु है, मैं उसी से सच्ची शिक्षा ग्रहण किया करता हूँ।" उनकी निर्भीकता और स्वाभाविक आध्यात्मिक ज्ञान का परिचय पाकर बादशाह विमुग्ध हो गया और उनको कुछ धन देने लगा। नानक ने कहा—"भगवान् परम ऐश्वर्यशाली हैं; सारे संसार में उनके धन-रत्न भरे पड़े हैं। मुझे किस चीज़ की कमी है? मैं उन्हीं का बेटा हूँ इसलिए उसी धन का अधिकारी हूँ।" अब बादशाह ने उनका विशेष आदर-सत्कार करके बाला के साथ जेलख़ाने से उन्हें छुड़वा दिया।

नानक कुछ दिनों तक बादशाह के पास रहे और फिर सिन्ध प्रभृति देशों में भ्रमण करके कर्त्तारपुर को लौट आये। बाला ही रास्ते में उनका साथी था। कर्तारपुर में बहुत-से लोग जब बाबा नानक के दर्शनार्थ आते थे तब वे सबसे निराकार अद्वितीय परमेश्वर की उपासना करने के लिए कहते थे। भक्त लोग सदा हृदय में श्रीभगवान् की वाणी सुना करते हैं। कहा जाता है कि नानक भी कभी-कभी दैव की आज्ञा पाकर उसके अनुसार काम करते थे। जिस समय चित्त शान्त होता है उस समय मनुष्यमात्र जीवन के कर्तव्य को अच्छी तरह समझ सकता है और भक्त उस कर्त्तव्य को भगवान् की ही आज्ञा समझकर उसका साधन करने के लिए कमर कस लेते हैं। महात्मा नानक एक दिन ब्रह्म के ध्यान में निमग्न थे, इसी समय मानो उन्हें भगवान् की आज्ञा हुई—"नानक, मैं तुम्हारी स्तुति से बहुत ही सन्तुष्ट हूँ, तुम निरन्तर मेरे नाम की घोषणा करके नर-नारियों को मुक्ति-मार्ग पर आरूढ़ करते हो—तुम्हारे इस गीत को जो व्यक्ति सुनेगा और तुम्हारे मत को मानेगा उसे मुक्ति मिलेगी।" भगवान् की यह वाणी सुनकर नानक ने अपना अहोभाग्य समझा। उस समय उन्होंने भगवान् की जो स्तुति की थी उसे उनके शिष्य अङ्गद ने लिख लिया था। इसे "जपजी" अथवा "आदि ग्रन्थ" कहते हैं। यह सिक्खों का विशेष श्रेष्ठ धर्मग्रन्थ है, सदा पूज्य है। इस अलौकिक पुरुष के जीवन की अपूर्व शक्ति के प्रभाव से हज़ारों

मनुष्यों का जीवन उस निराकार अद्वितीय परमेश्वर की महिमा का बखान करने से मधुमय होता है—मनुष्य पाप-ताप से मुक्त होने में समर्थ होता है। बहुत-से मनुष्य नानक को ईश्वर का भेजा हुआ महापुरुष समझने लगे। गुरु नानक का विशुद्ध धर्म-मत नर-नारियों के हृदय में प्रतिष्ठित होने लगा।

प्रकृति के अलंघ्य नियमों के अनुसार धीरे-धीरे नानक का शरीर दुबला होने लगा। जीवन के गिने-चुने दिन समाप्त होने को हुए। ज्योंही उन्हें मालूम हुआ कि अब हमारा समय पूरा होने पर है त्योंही उन्होंने अङ्गद को अपनी गद्दी पर बिठाकर अपना मत चलाते रहने की आज्ञा दी। अङ्गद ने गुरु की आज्ञा मानकर द्वितीय गुरु का पद ग्रहण किया। इससे सभी को आनन्द हुआ। हाय! इस मृत्युलोक में गुरु नानक के जीवन का कार्य समाप्त होने को हुआ।

१५३९ ईसवी के क्वार महीने की सप्तमी को उनके देहान्त में विलम्ब न देख उनके पुत्र अपनी माता के साथ नानक के समीप आकर खड़े हुए। वहाँ पर उनके सेवक भी एकत्र होने लगे। आज परलोकगामी परम भक्त गुरु नानक को देखने के लिए चारों ओर से हिन्दू और मुसलमानों के झुण्ड आने लगे। नानक सभी को आशीर्वाद देने लगे। वहाँ पर जो भक्त-मण्डली उपस्थित थी वह परमेश्वर का नाम-कीर्तन करने लगी। कीर्त्तन की ध्वनि से चारों दिशाएँ पूर्ण हो गईं। नानक ने अपने प्रियतम आराध्य देव का नाम श्रवण

करते-करते सदा के लिए आँखें मूँद लीं। इस महापुरुष का वियोग होने से सभी लोग रोने लगे।

हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के लोग गुरु की भक्ति करते थे। उनका देहान्त होने पर दोनों ही जातियों के लोग अपनी-अपनी प्रथा के अनुसार गुरु की अन्त्येष्टि करने के लिए झगड़ने लगे। नानक की मृत देह पर एक चादर पड़ी हुई थी। कहा जाता है कि जब चादर हटाई गई तब उनकी देह नहीं मिली। सभी ने समझा कि उनके गुरु सदेह स्वर्ग को गये हैं। सारा झगड़ा मिट गया। अब दोनों दलों ने परमेश्वर के नाम-कीर्त्तन से चारों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए उस चादर के दो टुकड़े कर लिये। हिन्दुओं ने अपने हिस्से की चादर का दाह किया और मुसलमानों ने अपने हिस्से की चादर को क़ब्र में दफ़ना दिया।

तुलसीदास

कलि कुटिल जीव-निस्तार-हित बालमीकि तुलसी भयो ।
त्रेता काव्य-निबन्ध करी सत कोटि रमायन
इक अच्छर उद्धरे ब्रह्महत्यादि-परायन ।।
अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी ।
रामचरन-रस-मत्त रटत निसि दिन व्रतधारी ।।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो ।
कलि कुटिल जीव-निस्तार-हित बालमीकि तुलसी भयो ।।

—भक्तमाल

गोस्वामी तुलसीदासजी बहुत ही प्रसिद्ध भक्त और कवि थे। आपके वंश, जन्म-स्थान, जन्म-समय, विद्याध्ययन आदि का ब्योरेवार कहीं वर्णन नहीं मिलता। आपने अपने ग्रन्थों में भी इन बातों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। इसलिए आपके चरित-लेखकों ने स्वयं पता लगाकर और गोस्वामी जी के ग्रन्थों में जो उनके सम्बन्ध में यत्र-तत्र कुछ लिखा मिल गया है उसके आधार पर उनका जीवन-चरित लिखा है। गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५८९ के लगभग या तो बाँदा ज़िले के राजापुर गाँव में हुआ था या उससे पाँच-छः कोस के

अन्तर पर अवस्थित तारी गाँव में। इनका जन्म हुआ तो निस्सन्देह ब्राह्मण-वंश में था पर ये सरयूपारी थे या कान्य-कुब्ज, इसका निर्णय अभी तक नहीं हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे, माता का हुलसी और स्वयं इनका नाम रामबोला था, जो विरक्त होने पर तुलसीदास हो गया। अस्तु, इनका जन्म चाहे जहाँ और चाहे जिसके यहाँ हुआ हो और इनका नाम चाहे जो रहा हो, परन्तु प्रसिद्ध ये तुलसीदास नाम से ही हुए। और, इसी नाम से हमारा काम भी है।

कहते हैं कि विवाह होने पर स्त्री से इनका घनिष्ठ प्रेम हो गया। यह घनिष्ठता यहाँ तक बढ़ गई कि ये उसे मायके नहीं जाने देते थे। मायकेवालों को कई बार ख़ाली लौट जाना पड़ा। एक बार तुलसीदासजी कहीं गये हुए थे कि इसी बीच इनके साले आये और अपनी बहन की विदा करा ले गये। थोड़ी देर में तुलसीदास जब घर आये तब अपनी प्राणप्रिया को वहाँ न पाकर सीधे उससे मिलने को ससुराल पहुँचे।

एक दिन का भी वियोग गोस्वामीजी न सह सके। यह देखकर इनकी स्त्री अपने मायके में बहुत झेंपी। उसने एकान्त में अपने पति को मीठी फटकार बतलाई कि भला यह कैसा प्रेम है! मेरे क्षणभङ्गुर शरीर को आप जितना चाहते हैं उतना प्रेम यदि भगवान् पर करते तो कैसा अच्छा होता। मानव-जन्म सफल हो जाता।

होनहार की बात तो देखिए। स्त्री की यह बात गोस्वामीजी को लग गई। कहाँ तो वे लोकलाज छोड़कर स्त्री से मिलने ससुराल दौड़े आये थे और कहाँ उस सुन्दरी से सदा के लिए नाता तोड़ बैठे। असल में स्त्री के कहने का यह आशय न रहा होगा कि गोस्वामीजी घर-द्वार छोड़-कर विरक्त हो जायँ; उसका तो यही आशय जान पड़ता है कि मेरे अस्थि-चर्ममय शरीर पर इतना बेहद प्रेम न करो कि मेरे पीछे-पीछे दौड़ते फिरो जिससे मुझे झेपना पड़े। इतना प्रेम तो श्रीरघुनाथजी से करो और मैं तो तुम्हारी दासी हूँ ही। परन्तु यहाँ तो कुछ और ही होना था। यह घटना तो निमित्त थी। जिस महान् कार्य को सिद्ध करने के लिए गोस्वामीजी का जन्म हुआ था उसका श्रीगणेश यहीं से हुआ।

गोस्वामीजी ससुराल से रूठकर जो चले सो फिर घर को नहीं गये; सचमुच श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्त होकर विरक्त हो गये। और सिर्फ़ भजन करके ही शान्त नहीं हुए प्रत्युत आनन्द में मग्न होकर ऐसे-ऐसे ग्रन्थों की रचना की कि उनके कारण आप अजर और अमर हो गये हैं। ऊपर नाभादासजी का जो छप्पय उद्धृत किया गया है उसमें वे गोस्वामीजी को कलियुगी लोगों के उद्धारार्थ वाल्मीकिजी का अवतार मानते हैं। बात है भी ठीक। आपने कविता-बद्ध कई ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें रामचरित-मानस और विनय-पत्रिका

का अत्यधिक प्रचार है। इन दोनों ग्रन्थों से लाभ उठानेवाले लाखों करोड़ों आदमी हैं। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में ऐसा विरला ही घर होगा जहाँ रामायण की एक-आध प्रति न हो। साधु, गृहस्थ, पण्डित, और मुसलमानों तक में रामायण का आदर है। यह ग्रन्थ ऐसा ही है। कवि तो सैकड़ों-हज़ारों हुए हैं पर जो मान रामायण के कारण तुलसी-दासजी को प्राप्त हुआ है, अन्य किसी को प्राप्त नहीं हुआ। जैसी मधुर इस ग्रन्थ की भाषा है, वैसा ही दिव्य कथानक है। छन्द भी आपने बड़ा ही अच्छा पसन्द किया है। आपने यद्यपि हरिगीतिका, चामर, भुजङ्गप्रयात, दण्डक, सोरठा आदि से भी काम लिया है परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ दोहा-चौपाई-मय है। आप अपनी बात को ऐसे अच्छे ढङ्ग से कहते हैं कि प्रशंसा करते ही बनती है।

जान पड़ता है कि आरम्भ में गोस्वामीजी ने कुछ छोटी-छोटी सी पुस्तकें लिखी थीं और उनके लिखने पर जब आपको अपनी कृति का भरोसा हो गया, इस काम में अपने को आपने तौल-ता लिया तब रामायण के लिखने का आरम्भ किया। इस अमर काव्य की रचना आपने श्रीअयोध्याजी में संवत् १६३१ में, चैत्र सुदी ९ मङ्गलवार को, आरम्भ की और काशी में उसकी पूर्ति की। आपका यह ग्रन्थ किसी विशेष ग्रन्थ का अनुवाद नहीं है। यह आपकी मौलिक रचना है। इस पुस्तक में काव्य के सभी गुण हैं।

गुणानुवाद कर सुखी हुए। यहाँ से घूमते-घामते हुए तुलसीदासजी काशी को चले गये।

गोस्वामीजी यद्यपि मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयागराज, चित्रकूट, जगन्नाथपुरी और शूकरक्षेत्र (सोरें) आदि स्थानें में जाया-आया करते थे और अयोध्या में अधिक रहते थे परन्तु इनका मुख्य निवासस्थान काशी था। वहाँ इनके स्मारक बहुत-से स्थानें में अब तक वर्तमान हैं।

असल में गोस्वामीजी के जीवन का प्रधान कार्य था रामायण-प्रणयन। सो जब वह कार्य सुसम्पन्न हो गया और गोस्वामीजी के जीवनकाल में ही उस ग्रन्थ का सादर पठन-पाठन होने लगा तब, वृद्धावस्था आ जाने पर, इस मृत्युलोक से उनके तिरोहित होने का समय आया*। गोस्वामीजी की निधन-तिथि आदि के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत् सोरह सै असी, असी गङ्ग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

---

* राम-नाम-जस बरनिकै भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबहीं तुलसी सोन॥

सब कोई ।" से ये तो असाधारण भक्त थे। इसका प्रमाण उनके अलौकिक कवि होने के अतिरिक्त उनके चमत्कार-पूर्ण काम भी हैं। उनमें से यहाँ पर एक-आध का उल्लेख किया जाता है।

एक बार पति के मर जाने पर एक ब्राह्मणी सब शृंगारों से भूषित हो पति की सहगामिनी होने जा रही थी। रास्ते में गोसाईंजी के दर्शन पा उसने हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। गोसाईंजी ने उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। इस पर उसके साथियों ने गोसाईंजी से उसके पति की मृत्यु की बात कही, साथ ही यह भी कहा— "आपका आशीर्वाद भी तो व्यर्थ नहीं जा सकता।" तब गोस्वामीजी ने अपने करुणामय स्वामी को स्मरण कर कहा— "जब तक मैं लौटकर न आऊँ, इसके स्वामी का दाह-कर्म न किया जाय।" बस, आप गङ्गा-स्नान करने चल दिये और वहाँ भगवान् की स्तुति में मग्न हो रहे। तीन घण्टे के अनन्तर वह मृतक ब्राह्मण, नींद से जागकर उठे हुए व्यक्ति की भाँति, उठ बैठा और वहाँ अपने लाये जाने का कारण लोगों से पूछने लगा। फिर सब वृत्तान्त जानकर प्रभु का और गोस्वामीजी का सपरिवार भक्त हो रामभजन में लग गया। इसके सिवा और भी कुछ मृत व्यक्तियों को उन्होंने सजीव कर दिया था।

* * * *

कहते हैं कि गोस्वामीजी की मुर्दे को ज़िन्दा कर देने की बात फैलते-फैलते जब दिल्लीश्वर (जहाँगीर) के कानों तक पहुँची तब सम्राट् ने इन्हें अपने दरबार में बुला भेजा। इनके बड़े-बड़े भक्त तथा सहायक इनके दिल्ली जाने में सहमत नहीं थे। वे तो इनके लिए मरने-मारने तक को उद्यत थे कि वहाँ जाने के लिए कोई इनसे ज़ोर-ज़बर्दस्ती न करे। परन्तु सुविख्यात धर्म-शिक्षक तथा नीतिज्ञ गोस्वामीजी यह कहकर, कि राजाज्ञा का उल्लङ्घन करना उचित नहीं, नाव पर सवार होकर दिल्ली जा पहुँचे। वहाँ दिल्लीश्वर ने सादर स्वागत कर इन्हें एक उच्चासन पर बिठाया और कुछ करामात दिखाने की प्रार्थना की*। तब इन्होंने स्पष्ट कह दिया कि हम तो केवल श्रीसीताराम को जानते हैं, भला करामात से हमारा क्या सरोकार? गोस्वामीजी के इस यथार्थ उत्तर को करामात न दिखलाने का बहाना समझकर बादशाह ने इन्हें क़ैद करने की आज्ञा दी और कहा कि करामात दिखाये बिना छुटकारा न होगा। तब कारागार में गोस्वामीजी ने श्रीरघुनायक के प्रधान सेवक हनुमान्‌जी की स्तुति की—

कानन भूधर बारि बयारि दवा बिष ज्वाल महा अरि घेरे।
सङ्कट कोटि परो तुलसी तहँ मातु पिता सुत बन्धु न नेरे॥

---

* गुञ्जाइशे ख़याल तिलिस्मे जहाँ कहाँ?
आँखों में जिसके जिल्वा हक़ है बसा हुआ।

राखहिं राम कृपा करिकै हनुमान से पायक हैं जिन केरे ।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे ॥

... ...

तोहि न ऐसी बूझिए हनुमान हठीले ।
साहेब काहु न राम से तुम से न वसीले ॥
तेरे देखत सिंह के सुत मेढुक लीले ।
जानत हूँ कलि तेरेऊ मनो गुनगन कीले ॥...इत्यादि

कहते हैं, इस पर प्रभु की वानरी सेना दिल्ली के कोट में घुसकर उत्पात मचाने और उसे तहस-नहस करने लगी। मरकटों का उपद्रव देख सम्राट् की आँखें खुलीं और एक महात्मा को अकारण क्लेश देना इसका कारण मानकर वे घबराये हुए आकर गोस्वामीजी के शरणापन्न हुए। जब उन्होंने क्षमा माँगी तब गोस्वामीजी के दुबारा बन्दना करने पर श्रीहनुमान्जी ने वानरी सेना का निवारण किया।

यह घटना ही एक करामात हो गई। किन्तु इससे तुलसीदासजी को हर्ष-विषाद कुछ भी न हुआ। क्योंकि महात्मा लोग तो सुख-दुःख की सीमा को पार कर जाते हैं। उन पर उल्लिखित दोनों अवस्थाओं का कुछ भी असर नहीं होता। गोस्वामीजी बादशाह को आशीर्वाद देकर अपने स्थान पर लौट आये।

यहाँ से तुलसीदासजी ने श्रीवृन्दावन जाकर "भक्त-माल-" प्रणेता श्रीनाभादासजी से भेट की। दोनों भक्त सीताराम का

गुणानुवाद कर सुखी हुए। यहाँ से घूमते-घामते हुए तुलसीदासजी काशी को चले गये।

गोस्वामीजी यद्यपि मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयागराज, चित्रकूट, जगन्नाथपुरी और शूकरक्षेत्र (सोरों) आदि स्थानों में जाया-आया करते थे और अयोध्या में अधिक रहते थे परन्तु इनका मुख्य निवासस्थान काशी था। वहाँ इनके स्मारक बहुत-से स्थानों में अब तक वर्तमान हैं।

असल में गोस्वामीजी के जीवन का प्रधान कार्य था रामायण-प्रणयन। सो जब वह कार्य सुसम्पन्न हो गया और गोस्वामीजी के जीवनकाल में ही उस ग्रन्थ का सादर पठन-पाठन होने लगा तब, वृद्धावस्था आ जाने पर, इस मृत्युलोक से उनके तिरोहित होने का समय आया*। गोस्वामीजी की निधन-तिथि आदि के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत् सोरह सै असी, असी गङ्ग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

---

* राम-नाम-जस बरनिकै भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबहीं तुलसी सोन॥